मक्सिम गोर्की

मेरा बचपन

मक्सिम गोर्की लिखित आत्मकथात्मक उपन्यास-त्रयी का पहला उपन्यास

मेरा बचपन

यह उपन्यास परिकल्पना प्रकाशन द्वारा प्रकाशित किया गया है व प्रगतिशील साहित्य के वितरक जनचेतना द्वारा कम से कम दामों में जनता तक पहुँचाया जा रहा है। अगर आप पीडीएफ की बजाय प्रिण्ट कॉपी से पढ़ना चाहते हैं तो जनचेतना से सम्पर्क कर सकते हैं।

जनचेतना सम्पर्क : D-68, Niralanagar, Lucknow-226020
0522-4108495; 09721481546
janchetna.books@gmail.com
Website - http://janchetnabooks.org

इस पीडीएफ फाइल के अंत में जनचेतना द्वारा वितरित किये जा रहे प्रगतिशील, मानवतावादी व क्रान्तिकारी साहित्य की सूची भी दी गयी है।

हर दिन प्रगतिशील, मानवतावादी साहित्य पाने के लिए

- सुबह-सुबह प्रगतिशील कविताएं, कहानियां, उपन्यास, गीत-संगीत
- देश के महान क्रान्तिकारियों भगतसिंह, राहुल, गणेश शंकर विद्यार्थी आदि का साहित्य पीडीएफ में
- देश-दुनिया की हर महत्वपूर्ण घटना पर मजदूर वर्गीय दृष्टिकोण से लेख
- हर रविवार किसी महत्वपूर्ण पुस्तक की पीडीएफ

बिगुल

मजदूर बिगुल व्हाटसएप्प चैनल से जुड़ने के लिए इस लिंक का इस्तेमाल करें

www.mazdoorbigul.net/whatsapp

जुड़ने में समस्या आने पर अपना नाम और जिला लिखकर इस नम्बर पर भेज दें – 9892808704

वैकल्पिक नम्बर : 9619039793

फेसबुक पेज : fb.com/unitingworkingclass

टेलीग्राम चैनल : www.t.me/mazdoorbigul

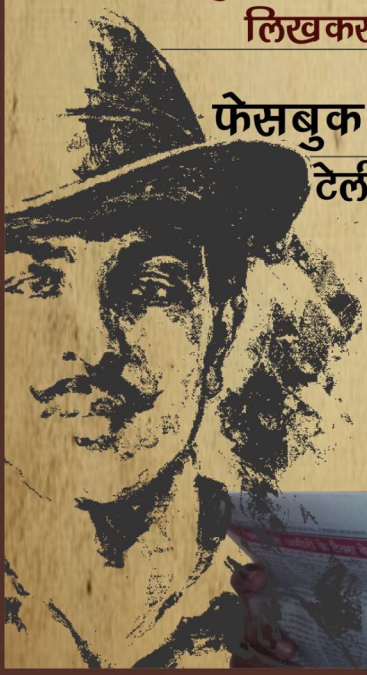

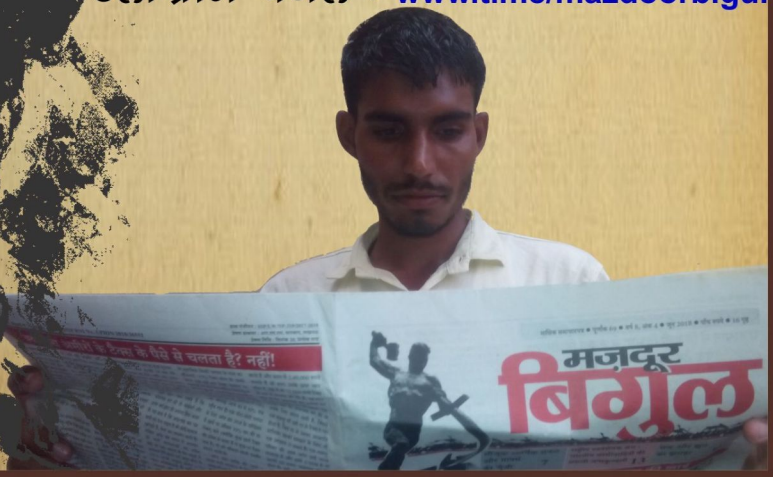

मेरा बचपन

(उपन्यास)

मेरा बचपन

(उपन्यास)

मक्सिम गोर्की

परिकल्पना प्रकाशन
लखनऊ

अनुवाद : नरोत्तम नागर

ISBN: 81-87425-87-3

मूल्य : रु. 70.00

पहला संस्करण : **जनवरी, 2006**

परिकल्पना प्रकाशन
द्वारा, जनचेतना, डी-68, निरालानगर,
लखनऊ-226 020 द्वारा प्रकाशित

क्रिएटिव प्रिन्टर्स, 628/S-28, शक्तिनगर, लखनऊ द्वारा मुद्रित

आवरण : **रामबाबू**

MERA BACHPAN *by* ***Maxim Gorky***

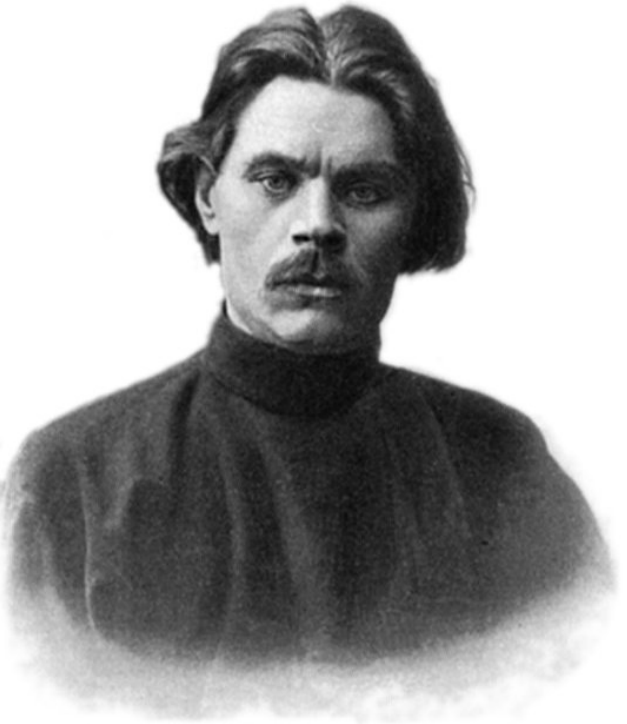

मक्सिम गोर्की

अपने

प्रिय पुत्र को

प्रेम-भेंट

1

पिताजी कुछ-कुछ अँधेरे छोटे-से कमरे के फ़र्श पर खिड़की के नीचे लेटे हुए थे... सफेद वस्त्र पहने और बहुत ही लम्बे-से प्रतीत होते हुए तथा उनके नंगे पैरों की उँगलियाँ बड़े अटपटे ढँग से फैली हुई थीं। दोनों प्यारे हाथ छाती पर बँधे हुए थे, निश्चल थे। उनकी भी उँगलियाँ विकृत थीं। सदा हँसती आँखों पर ताँबे के सिक्के रखे हुए थे; दयालु मुखड़ा विवर्ण था और दाँत दिखाई दे रहे थे, जिनसे मुझे डर लग रहा था।

लाल घाघरा पहने अधनंगी माँ उनकी बगल में घुटनों के बल बैठी हुई काली कँघी से उनके लम्बे मुलायम केशों को सँवार रही थी। यह वही कँघी थी, जिससे मैं तरबूज के छिलके काटा करता था। उसका गला बैठ गया था। माँ भारी और खरखरी आवाज़ में लगातार कुछ कहती जा रही थी, उसकी भूरी आँखें सूजी हुई थीं और आँसुओं की मोटी-मोटी बूँदें गिराती हुई मानो पिघली जा रही थीं।

मेरी नानी मेरा हाथ पकड़े हुए थी। वह गोल-मटोल औरत थी, चौड़ा मस्तक, बड़ी-बड़ी आँखें और हास्यप्रद पिलपिली नाक वाली। वह सिर से पैर तक काली पोशाक पहने कोमल और अत्यधिक आकर्षक दिखायी दे रही थी। वह भी रो रही थी, किन्तु विचित्र ढँग से और माँ के साथ खूब सुर मिलाती हुई। उसका पूरा शरीर रह-रहकर सिसकियों से काँप उठता था। वह मुझे बार-बार पिताजी की ओर बढ़ाने की कोशिश कर रही थी, पर मैं उससे चिपका रहता, पीछे छिप जाता। मुझे डर लग रहा था, घबराहट-सी हो रही थी।

बड़े लोगों को मैंने आज तक रोते नहीं देखा था और नानी द्वारा बार-बार कहे जाने वाले शब्द भी मेरी समझ में नहीं आ रहे थे। वह कह रही थी :

"तेरे पिताजी चल बसे, बेटे! जा नज़र भर कर देख ले। अब तू उन्हें कभी नहीं देख पायेगा। तेरे पिताजी मर गये, मेरे लाल, अकाल, असमय..."

हाल ही में मैं सख्त बीमारी से उठा था। मुझे अच्छी तरह याद है कि पिताजी मेरे साथ खेलते-हँसते थे, लेकिन अचानक वह गायब हो गये और उनकी जगह यह विचित्र औरत आ गयी, जो मेरी नानी थी।

नानी आयी, तो मैंने उससे पूछा :

"तुम कहाँ से चलकर आयी हो?"

"ऊपर से, नीज़्नी* से आयी हूँ, लेकिन चलकर नहीं, सवारी से। पानी में पैदल नहीं चला जाता, बौने!"

नानी की बात मुझे बेतुकी मालूम हुई और मेरी समझ में भी नहीं आयी। ऊपर तो घर में कुछ रँगी दाढ़ी वाले पारसी रहा करते थे और मकान के निचले भाग में पीली चमड़ीवाला एक बूढ़ा कलमीक** रहता था, जो भेड़ की खालों का व्यापार करता था। ऊपरवाले जीने से रेलिंग पर फिसलते हुये उतरा जा सकता था। नीचे आने पर कलाबाजियाँ खायी जा सकती थीं। मैं अच्छी तरह यह जानता था, लेकिन ऊपर पानी कहाँ था? नानी की सारी बात अटपटी और उलझी-उलझायी थी।

"मुझको तुम बौना क्यों कहती हो?"

"क्योंकि तू बित्ते भर का है," उसने हँसकर जवाब दिया।

नानी बहुत मधुर, दिलचस्प और लयबद्ध ढँग से बोलती थी। पहले ही दिन मैं उससे हिलमिल गया। मैं बेचैन हो रहा था कि किसी तरह हम दोनों उस कमरे से बाहर निकल चलें।

माँ को देखकर मैं बहुत परेशान हो रहा था। उसके आँसुओं और चीखने-चिल्लाने से मेरे हृदय में एक नयी और भयानक आशंका की आँधी-सी उठ रही थी। इस रूप में मैंने उसे पहले कभी नहीं देखा था। उसकी मुद्रा हमेशा ही बहुत गम्भीर रहती थी। वह इने-गिने शब्द बोलती थी, साफ-सुथरी, सँवरी-निखरी रहती थी, घोड़े की तरह विशालकाय तथा मजबूत काठी वाली थी और उसके हाथ आश्चर्यजनक रूप से कड़े थे, लेकिन आज उसका यह क्या हाल था? चेहरा सूजा हुआ, बाल खुले और अस्त-व्यस्त। कपड़े फटे हुए। उसके सुनहरे केश, जो सदा बड़े जूड़े के रूप में बँधे रहते थे, नंगे कन्धे और आँखों पर बिखरे हुए थे। एक लट पिताजी के सुप्त मुखमण्डल पर लोट रही थी। इतनी देर से मैं कमरे में खड़ा था, पर एक बार भी उसने मेरी ओर नहीं देखा था। वह पिताजी के बालों में लगातार कँघी कर रही थी और आँसुओं की झड़ी लगाते हुए फूट-फूट कर रो रही थी।

कुछ मामूली देहातियों और पुलिस के एक सिपाही ने झाँककर अन्दर देखा।

पुलिस के सिपाही ने चिल्लाकर कहा :

"अब जल्दी से कफ़न-दफ़न की तैयारी करो!"

खिड़की पर काले रंग का एक दुशाला लटक रहा था। हवा से वह नाव के पाल की तरह फड़फड़ा उठता था। एक बार पिताजी मुझे पालवाली नाव में घुमाने ले गये

*वोल्गा नदी के तट पर स्थित शहर नीज़्नी नोवगोरोद को कभी आस-पास के लोग नीज्नी कहकर पुकारते थे। अब उसका नाम गोर्की है।

**कलमीक-एक एशियाई जाति, जो रूस में रहती है।

थे। अचानक बड़े ज़ोर से बिजली कड़क उठी थी। पिताजी ने हँसकर मुझे अपनी जाँघों के साथ चिपका लिया था और कहा था :

"कुछ नहीं, कुछ नहीं! डरो मत, बेटे!"

यक़ायक़ माँ लड़खड़ाती हुई उठी और दूसरे ही क्षण फ़र्श पर चित गिर पड़ी। उसकी केश-राशि फ़र्श पर बिखर गयी, उसका सफेद चेहरा नीला हो गया और दाँत पिताजी के दाँतों की तरह नज़र आने लगे।

"कमरा बन्द करो और अलेक्सेई को बाहर ले जाओ," उसने भयानक स्वर में कहा।

नानी मुझे ढकेलकर दरवाज़े की ओर दौड़ी और ऊँची आवाज़ में वहाँ खड़े लोगों से बोली :

"घबराने की बात नहीं है! ईसा के लिए बाहर चले जाओ! यह हैजा नहीं है! उसे प्रसव-वेदना हो रही है। रहम करो!"

मैं अँधेरे कोने में एक बड़े संदूक के पीछे छिप गया, जहाँ से माँ दिखायी पड़ रही थी। वह फ़र्श पर छटपटा रही थी-कभी दाँत पीसती थी और कभी ज़ोर से कराह उठती थी। नानी कभी इधर तो कभी उधर बैठती। उसके स्वर में दुलार और खुशी थी।

"हिम्मत से काम ले, वर्वारा, हिम्मत से! भगवान के लिए इस पीड़ा को बर्दाश्त कर! ओ मरियम, तू ही पार लगा..."

मैं बहुत डर गया। पिताजी के पास ही माँ प्रसव-पीड़ा से तड़प रही थी और नानी इधर-उधर दौड़-धूप कर रही थी। वे दोनों कभी-कभी उनके बदन से टकरा भी जाती थीं, कराहती और चिल्लाती थीं। पर वह निश्चल पड़े थे, मानो उन पर हँस रहे हों। बड़ी देर तक यही सब कुछ चलता रहा। कई बार माँ ज़ोर लगाकर उठी, पर फौरन गिर पड़ी। नानी बड़ी-सी काली मुलायम गेंद की तरह लुढ़ककर कमरे से बाहर गयी। कुछ देर के बाद यक़ायक़ अँधेरे को चीरकर बच्चा चिल्ला उठा।

"धन्य भगवान," नानी ने लम्बी साँस छोड़कर कहा, "बेटा है!" और मोमबत्ती जलायी।

आगे की बात याद नहीं है... शायद मुझे कोने में ही नींद आ गयी होगी।

मेरी स्मृति में इसके बाद का दृश्य क़ब्रिस्तान से सम्बन्धित है। पानी बरस रहा था और हमलोग क़ब्रगाह के एक सूने कोने में खड़े थे। मैं फिसलनी मिट्टी के एक छोटे-से टीले पर खड़ा हुआ उस गढ़े में झाँक रहा था, जहाँ ताबूत में बन्द मेरे पिताजी की लाश उतारी जा रही थी। गड्ढे के तल में पानी भरा हुआ था, जिसमें बहुत-से मेढक छपछप कर रहे थे। मैं एकटक उन्हें ही देख रहा था। दो मेढक कूदकर काठ के पीले ताबूत पर चढ़ गये।

क़ब्र के पास कुल पाँच-छः आदमी थे-पुलिस का सिपाही, जिसके भीगे लबादे

से पानी टपक रहा था; दो देहाती, जिनके हाथों में फावड़े थे और जो न जाने क्यों नाक-भौं चढ़ाये हुए थे; इसके अलावा मेरी नानी और मैं। वर्षा की हल्की फुहार से सभी भीग रहे थे।

"मिट्टी डाल दो," कहते हुए सिपाही वहाँ से हट गया।

अपने दुशाले के दोनों कोरों से आँखें दबाकर नानी रोने लगी। दोनों देहातियों ने झुककर गड्ढे में मिट्टी डालनी शुरू की। मिट्टी गिरने से पानी में छपाक शब्द हो रहा था। मेढक ताबूत से कूदकर गड्ढे की दीवारों पर चढ़ने लगे, लेकिन मिट्टी के ढेलों ने उन्हें नीचे ढकेल दिया।

"अलेक्सेई, हट जा यहाँ से," मेरी नानी ने कहा और मेरे कन्धे पकड़कर खींच ले चली, लेकिन मैंने कन्धे छुड़ा लिये। मैं जाना नहीं चाहता था।

"ओ, भगवान!" उसने आह भरते हुए कहा। मालूम नहीं उसने इस शिकायती लहजे में मुझे सम्बोधित किया था या भगवान को। देर तक वह सिर झुकाये निश्चल खड़ी रही। कब्र बिल्कुल भर गयी, फिर भी वह खड़ी ही रही।

दोनों देहातियों ने फावड़ों से ज़मीन को समतल कर दिया। ज़ोर से हवा बहने लगी और बादल छँट गये। नानी मेरा हाथ पकड़कर दूर के गिरजाघर में ले गयी, जिसके चारों ओर क़ब्रों का जाल बिछा हुआ था और हर क़ब्र पर लकड़ी की सलीब लगी थी।

क़ब्रिस्तान के बाहर आने पर नानी ने पूछा :

"तू क्यों नहीं रोता! तुझे भी रोना चाहिए!"

"मुझे रुलाई नहीं आती," मैंने जवाब दिया।

"नहीं आती, तो रोने की ज़रूरत नहीं," उसने शान्त स्वर में कहा।

मेरे लिए यह सब कुछ बहुत अजीब था-मैं शायद ही कभी रोता था और वह भी तब, जब हृदय को ठेस लगती थी। देह की चोट से मुझे कभी रोना नहीं आता था। पिताजी मुझे रोते देखकर हमेशा हँसने लगते थे, पर माँ ज़ोर से डाँटती थी :

"खबरदार, रोया तो!"

वहाँ से हमलोग घोड़ागाड़ी में सवार होकर चले। सड़क चौड़ी और कीचड़ से भरी हुई थी। दोनों तरफ गहरे लाल घरों की कतार थी।

मैंने नानी से पूछा :

"मेढक क्या अब बाहर नहीं निकलेंगे?"

नानी ने जवाब दिया :

"नहीं! भगवान भला करे उनका!"

पिताजी या माँ इस तरह बार-बार और इतने अपनेपन के साथ कभी भगवान का नाम नहीं लिया करते थे।

इसके कुछ दिनों बाद माँ, नानी और मैं स्टीमर के एक छोटे-से केबिन में बैठे

कहीं चले जा रहे थे। मेरा नवजात भाई मक्सिम मर गया था। केबिन के एक कोने में मेज पर सफेद कपड़े में लिपटी और लाल फीते से बँधी उसकी लाश रखी थी।

हमारा सामान एक ओर रखा था। मैं बक्सों और गठरियों के एक ढेर पर बैठा खिड़की से बाहर झाँक रहा था। गोल खिड़की बाहर की ओर यों उभरी हुई थी, जैसे घोड़े की आँख। खिड़की के गीले शीशे के उस पार मटमैला फेनिल पानी बह रहा था, कभी-कभी पानी उछलकर शीशे तक आ जाता। तब मैं घबराकर नीचे कूद पड़ता।

"डरो नहीं," नानी ने कहा और अपनी मुलायम गर्म गोद में लेकर मुझे फिर गठरियों के ऊपर बैठा दिया।

नदी के ऊपर हलके मटियाले रंग का नम कुहासा छाया हुआ था। कुहासे को चीरकर कभी-कभी कहीं दूरी पर काली ज़मीन का टुकड़ा दिखाई देता और दूसरे ही क्षण कुहासे तथा पानी में आँखों से ओझल हो जाता। तमाम चीज़ें हिल रही थीं। केवल माँ दीवार के सहारे निश्चल, निश्चेष्ट खड़ी थी-आँखें बन्द, दोनों हाथ सर के पीछे टिके हुए और भावशून्य, कठोर चेहरे पर दुःख की काली रेखाएँ। वह मौन थी, मानो कोई और ही प्राणी हो। उसका फ्राक भी मेरे लिए अनजाना-सा था।

बीच-बीच में नानी दुलारकर कहती थी :

"कुछ खा ले, वर्वारा! एक कौर तो मुँह में डाल ले!"

पर माँ मौन और निश्चल थी, जैसे पत्थर की मूरत।

नानी मुझसे फुसफुसाकर बातें कर रही थी। माँ से वह थोड़ा ऊँचे स्वर में बोल रही थी, लेकिन बहुत ही सावधानी से, कम और सहमते हुए। मुझे ऐसा लग रहा था कि नानी माँ से डरती है। मैं भी तो माँ से डरता था, अतः नानी के साथ अपनापन और गाढ़ा हो गया।

"सरातोव आ गया। मल्लाह कहाँ है?" माँ सहसा ज़ोर से और झल्लाकर बोल उठी।

ये शब्द भी मुझे नये और अजनबी मालूम हुए-सरातोव, मल्लाह...

नीली पोशाक पहने पके बालों और चौड़ी छाती वाला एक आदमी छोटा-सा बक्स लिए केबिन में आया। नानी ने उसके हाथ से बक्स ले लिया और मेरे भाई की लाश उसमें टिका दी। बक्स बन्द करने के बाद उसे दोनों हाथों पर रखकर वह दरवाज़े की ओर गयी, लेकिन मोटापे के कारण उसके लिए तिरछा हुए बिना दरवाज़ा पार करना असम्भव था। किंकर्त्तव्यविमूढ़ होकर वह ठिठक गयी। उसकी विवशता पर हँसी आ रही थी।

"ओह माँ!" कहकर माँ ने झट ताबूत उसके हाथ से ले लिया और दोनों बाहर हो गयीं। केबिन में मैं और नीली पोशाकवाला आदमी रह गये।

मेरी ओर झुककर उसने कहा :

"तो, तुम्हारा भाई तुम्हें छोड़ गया।"

"तुम कौन हो?"

"मैं मल्लाह हूँ!"

"और सरातोव कौन है?"

"सरातोव शहर का नाम है। खिड़की से बाहर देखो-वही है सरातोव।"

खिड़की से बाहर ज़मीन तेज़ी से भाग रही थी-काली और ढालू तथा जिसके ऊपर कुहासे का धुआँ-सा उठ रहा था, जिसे देखकर मुझे डबलरोटी का ताजा कटा टुकड़ा याद आ रहा था।

"नानी कहाँ गयी?"

"अपने नाती को दफनाने।"

"उसे भी ज़मीन में गाड़ा जायेगा?"

"और क्या?"

मैंने मल्लाह को बताया कि पिताजी को दफ़नाते वक़्त कैसे जिन्दा मेढकों को भी गाड़ दिया गया था। उसने मुझे गोद में उठाकर छाती से लगाया और चूमाँ

"अभी यह सब बातें तुम नहीं समझते, बेटे! मेढकों पर रहम करने की ज़रूरत नहीं है। दरअसल भाग्य तो तुम्हारी माँ के फूट गये। देखते नहीं हो, शोक से उसका कैसा हाल हो गया है।"

यक़ायक़ ऊपर बड़े ज़ोरों का हल्ला-गुल्ला हुआ। मैं जानता था, स्टीमर में ऐसा होता है, इसलिए डरा नहीं। मल्लाह ने जल्दी से मुझे गोद से उतार दिया और "मुझे भागना चाहिए," कहकर तेज़ी से बाहर चला गया।

मेरा भी बाहर भागने का मन हुआ और मैं केबिन से निकल आया। तंग, अध-अँधेरे रास्ते में कोई नहीं था। दरवाज़े से थोड़ी ही दूर पर सीढ़ियों की पीतल की किनारी चमक रही थी। ऊपर बहुत-से लोग बक्स और बिस्तर लिये खड़े थे। स्पष्ट था, लोग स्टीमर से उतर रहे हैं और मुझे भी उतरना चाहिए।

जब मैं डेक पर पहुँचा, जहाँ बहुत-से देहाती भीड़ लगाकर खड़े थे, तो लोग मुझे देखकर चिल्लाने लगे :

"यह किसका लड़का है? किसका है तू?"

"मालूम नहीं।"

बड़ी देर तक भीड़ में मैं धकियाया जाता रहा, इधर से उधर होता रहा और कभी कोई मेरे कन्धे पर हाथ रख देता। आखिरकार पके बालों वाला वही मल्लाह दिखाई पड़ा। उसने कहा :

"यह आस्त्राखान का है, केबिन से निकल आया है..."

उसने मुझे गोद में उठा लिया और केबिन में ले आया। गठरियों के ऊपर बैठाकर बोला :

"ख़बरदार, फिर ऐसी हरक़त की तो..."

धीरे-धीरे ऊपर का शोर-गुल बन्द हो गया। स्टीमर का हिलना-डुलना और पानी की छपछपाहट भी खत्म हो गयी। एक भीगी-सी दीवार खिड़की के सामने आ गयी, जिसकी वजह से अब कुछ दिखाई नहीं दे रहा था। भीतर अँधेरा छा गया। मेरा दम घुटने लगा। चारों ओर बिखरी गठरियाँ मानो और बड़ी होकर मुझे घेरने लगीं। मैं डर गया-कहीं मुझे इस खाली स्टीमर में इसी तरह तो नहीं छोड़ दिया जायेगा?

मैं दरवाज़े पर गया। वह बाहर से बन्द था। मैंने उसका पीतल का मुट्ठा घुमाने की कोशिश की, पर वह हिला नहीं। दूध की एक बोतल उठाकर मैंने भरपूर ताक़त से मुट्ठे पर दे मारी। बोतल चूर-चूर हो गयी और दूध मेरे पैरों और जूतों के अन्दर फैल गया।

परास्त और निराश होकर मैं गठरियों के ढेर पर पड़ गया। रोते-रोते मुझे नींद आ गयी।

जब आँख खुली, तो स्टीमर फिर से पानी को छपछपाता हुआ डोल रहा था और केबिन की खिड़की सूरज की तरह चमक रही थी। मेरी बगल में बैठी हुई नानी अपने बालों में कंघा कर रही थी। ज़ोर लगाने से उसके माथे पर बल पड़ गया था। साथ ही वह अपने आप कुछ बोल रही थी। नीली झलक लिए हुए उसके काले लम्बे घने केशों के भारी गुच्छे बादल की तरह कन्धे, छाती और घुटनों पर होते हुए नीचे फ़र्श तक लटक रहे थे। एक हाथ से उसने उन्हें धूल में लोटने से सँभाल रखा था और दूसरे से मोटी-मोटी लटों में लकड़ी का टूटे दाँतोंवाला कँघा फेर रही थी। दर्द के कारण उसका चेहरा विकृत हो गया था। काली आँखें नाराज़गी से चमक रही थीं और बालों के सघन कुंज में छोटा-सा मुँह अज़ीब लग रहा था।

आज वह झल्लायी हुई सी लग रही थी। लेकिन जब मैंने पूछा कि तुम्हारे बाल इतने लम्बे क्यों हैं, तो उसका स्वर पिछले दिन की तरह मीठा और दुलार भरा था। उसने कहाः

"शायद भगवान ने मुझे सजा के रूप में ही ऐसे केश दिये हैं, उन्होंने कहा, 'लो ये लम्बे बाल और इन्हीं में उलझी रहो!' जवानी में मैं इन्हीं बालों पर नाज़ करती थी लेकिन बुढ़ापे में ये अभिशाप बन गये हैं।"

फिर बोली : "तू सो जा, बेटे। अभी अच्छी तरह सवेरा नहीं हुआ है।"

"मन नहीं करता।"

"मन नहीं करता, तो मत सो," बालों को बाँधते हुए शान्त स्वर में उसने कहा। कोच पर माँ लम्बी पड़ी थी। नानी ने उसकी ओर देखा और फिर मुझसे पूछा :

"कल तूने बोतल क्यों फोड़ डाली थी? बता, मगर धीरे से।"

नानी का एक-एक शब्द मिठास से सना होता था : हर शब्द फूल की तरह ख़ुशनुमा और रसीला; सीधे दिमाग में गड़ जाता था। जब वह मुस्कराती, तो काली आँखों की पुतलियाँ फैल जातीं और उनके अन्दर एक अवर्णनीय चमक दिखाई देती।

मुस्कराते समय उजले दाँतों की मजबूत पाँत झलक उठती। उसके गालों का रंग काला पड़ गया था, जिनके ऊपर अनगिनत झुर्रियाँ थीं। तो भी कुल मिलाकर चेहरे पर ताज़गी और चमक थी। उसकी सुन्दरता को बिगाड़ती थी उसकी पिलपिली नाक, जिसका सिरा लाल था और नथुने फूले हुए। चाँदी की बनी कामदार काली डिबिया से वह नास लिया करती थी। वह काली पोशाक में थी, लेकिन आँखों से उसका आन्तरिक प्रकाश छनता था, प्यारभरी खुशमिजाजी का प्याला छलका करता था। वह झुकी हुई लगभग कुबड़ी-सी लगनेवाली बहुत मोटी औरत थी, लेकिन उसकी गतिविधि में बड़ी बिल्ली जैसी चुस्ती और फुर्ती थी। व्यक्तित्व भी उसका बिल्ली की तरह गुदगुदा और प्यारभरा था।

मुझे लगा कि उसके आने के पहले मैं किसी अँधेरे कोने में नींद में पड़ा था; उसने मुझे जगाकर प्रकाश में पहुँचा दिया, मेरे इर्द-गिर्द की हर चीज़ को एक धागे में पिरो दिया, मेरे गिर्द रंगबिरँगा ताना-बाना-सा बुन दिया। आते ही उसके साथ मेरा अपनापन हो गया-अभिन्न और अटूट। वह जीवन भर के लिए मेरी मित्र, मेरे हृदय के बहुत ही निकट, सुबोध और सब से अधिक प्रिय व्यक्ति हो गयी। जीवन के प्रति उसके निःस्वार्थ मोह ने मेरे जीवन को नवीन प्रेरणा से ओतप्रोत कर दिया और मुझे वह शक्ति प्रदान की, जिससे मैं अपने कठिन भविष्य का सामना कर सका।

चालीस साल पहले के स्टीमरों की चाल बहुत धीमी हुआ करती थी। नीज़्नी नोवगोरोद पहुँचने में हमें कई दिन लग गये, पर वे सौंदर्यस्नात दिन मेरे स्मृति-पटल पर ताज़ा हैं।

मौसम सुहाना था। नानी और मैं स्टीमर के खुले डेक पर सारा दिन बिताते थे। ऊपर नीला आसमान, दोनों ओर पतझड़ के सुनहरे तारों में मढ़े हुए वोल्गा नदी के तट, और उनके बीच से गुजरते हुए हम। नदी की छाती पर हल्के कत्थई रंग का स्टीमर मन्द गति से छप-छप की आवाज़ करता हुआ उजली नीली जलराशि को चीरता बढ़ता जाता। उसके पीछे सलेटी रंग का एक बज़रा बँधा हुआ था। उसकी शक्ल मुझे बड़े-से गोजर की याद दिलाती थी। सूरज न जाने कब ऊँचे जा वोल्गा के ऊपर आसमान में टँग जाता। ज्यों-ज्यों हम आगे बढ़ते थे, पट-परिवर्तन होता जाता था। सामने हरियाली से लदी पहाड़ियाँ धरती के घाघरे की सिलवटों जैसी लगती थीं। तटों पर गाँव, कस्बे और शहर आते और ओझल हो जाते। दूर से मुझे वे छोटे-छोटे प्यारे खिलौनों से लगते, वोल्गा के वक्ष पर पतझड़ के सुनहले पत्ते तैरते रहते थे।

नानी डेक पर कभी इस किनारे और कभी उस किनारे जा खड़ी होती। वह इस दृश्य की मनोरमता में तल्लीन हो गयी थी। चेहरे पर आनन्दातिरेक की अनोखी चमक, आँखें उल्लास से फैली हुईं। रह-रहकर उसके मुँह से निकल जाता था :

"देख तो कितना सुन्दर है यह!"

अक्सर वह इतनी विभोर हो जाती कि उसे मेरे बगल में होने का भी ध्यान न रहता। दोनों हाथ सीने पर बाँधे और होंठों पर मुस्कान लिये वह तटवर्ती दृश्यों को एकटक देखती जाती, आँखें सजल हो उठतीं। उस वक़्त मैं उसके बूटेदार काले घाघरे को पकड़कर खींचता।

चौंककर वह कहती :

"अरे, मैं तो मानो नींद में सपना देख रही थी।"

"तुम रो क्यों रही हो?" मैं पूछता।

"खुशी से, अपनी बुढ़ाई से, मेरे लाल!" वह मुस्कराकर जवाब देती। "मैं बूढ़ी हो गयी हूँ-साठ से भी ऊपर!"

इसके बाद नास की एक चुटकी लेकर वह मुझे साधु-महात्माओं, जानवरों, नेकदिल डाकुओं या भूत-प्रेतों की अद्‌भुत कहानियाँ सुनाने लगती।

कहानी कहते समय उसका स्वर शान्त होता, उसमें सरसता और रहस्य का भाव आ जाता था। मुँह मेरे मुँह के पास होता और फैली हुई पुतलियाँ मेरी आँखों में टक लगाये रहतीं, और ऐसे वह मानो आँखों की राह मेरे हृदय में शक्तिदायक आसव उड़ेलती। वह बोलती नहीं मानो गाती हो और ज्यों-ज्यों कहानी आगे बढ़ती, उसकी बोली और भी लययुक्त हो जाती। उसकी कहानियों में अपार आनन्द आता। जब कहानी खत्म होती, तो मैं विभोर होकर कह उठता :

"और सुनाओ, नानी!"

और कहानी फिर चलने लगती :

"इसके बाद बौना भूत अलावघर* के नीचे दुबका रहा। बेचारा अपने नाखूनदार पंजे में सेवईं की फाँस लिये देह हिलाता और रो-रोकर कहता जा रहा था : 'चुहियो, री चुहियो! मुझे बहुत दर्द हो रहा है, अब मैं नहीं बचूँगा, री चुहियो!'"

यह कहते हुए वह अपने घुटने को बाँहों में कस लेती और खुद भी हिलती-डुलती हुई इस तरह अपना मुँह सिकोड़ लेती, मानो खुद ही तकलीफ़ में हो।

स्टीमर के खुशमिज़ाज और लम्बी दाढ़ियोंवाले मल्लाह उसके चारों ओर इकट्ठे हो जाते और लगते हँसी के फव्वारे छूटने। सभी नानी की कहानियों की तारीफ़ करते और कहानियाँ सुनाने का आग्रह करते :

"एक और कहो, नानी!"

बाद मे वे कहते :

"नानी, चलो आज हम लोगों के साथ ही खाना खाओ!"

खाने के वक़्त वे वोद्‌का से नानी की तथा खरबूजे और तरबूज से मेरी खातिर

---

* चारों ओर से बन्द ईंटों के अलावघर कमरे को गर्म करने के लिए ठण्डे देशों में हर घर में इस्तेमाल किये जाते हैं। इसके ऊपर चबूतरा होता है जहाँ लोग सो भी सकते हैं।

करते, लेकिन चुपके से, क्योंकि स्टीमर पर एक आदमी था, जो लोगों को फल खाने से मना करता था। किसी के हाथ में फल देखते ही वह छीनकर पानी में फेंक देता। उसकी पोशाक पुलिस के सिपाही जैसी थी, जिसमें ऊपर से नीचे तक पीतल के बटन लगे थे। वह सदा नशे में चूर रहता था। लोग उसे देखते ही छिप जाते थे।

माँ शायद ही कभी डेक पर आती। वह ज्यादातर हम लोगों से अलग ही रहना पसन्द करती थी और हमेशा की तरह प्रायः मौन ही रहती। उसका लम्बा सुघड़ शरीर, साँवला कठोर चेहरा, सुनहरे बालों की चोटियों का भारी जूड़ा-शक्ति और दृढ़ता की वह मूर्ति आज भी हल्के कुहासे या चमकीले बादल की ओट से झाँकती हुई सी मेरी स्मृति में अंकित है। भूरी, नानी की आँखों की तरह बड़ी-बड़ी और तनी हुई आँखें रुखाई से उसके चेहरे से ताक़ती रहतीं।

एक दिन नाराज़गी से उसने कहा था :

"तुम क्या खिलवाड़ किया करती हो, माँ? सब तुम पर हँसते रहते हैं!"

"अगर इससे उनका जी खुश होता है, तो हँसने दो।" नानी ने सरलता से जवाब दिया था।

स्टीमर नीज्नी पहुँचा, तो नानी बच्चों की तरह किलकने लगी। वह किलकारी मुझे याद है। बोल उठी :

"देख तो, देख तो, कितना सुन्दर है!"

यह कहते हुए उसने मेरा हाथ खींचकर स्टीमर के रेलिंग के पास खड़ा कर दिया और बोली :

"वह देख! वही नीज्नी है। कितना मनोहर दृश्य है! गिरजाघरों के गुम्बदों को देख, मानो पंख लगाकर आकाश में उड़ रहे हों।"

नानी की आँखें सजल हो उठीं। माँ की ओर मुड़कर उसने कहा :

"देख, देख, वर्वारा। तू भूल गयी होगी नीज्नी को। आज पी ले इस छलकते प्याले को!"

माँ के चेहरे पर रूखी-सी मुस्कान खेल गयी।

इस सुन्दर नगर के सामने दरिया के बीच स्टीमर रुक गया। चारों ओर जहाज खड़े थे-जिधर देखो, मस्तूलों का जंगल! एक बड़ी-सी नाव, जिसपर कई आदमी लदे हुए थे, स्टीमर के पास आयी और नीचे लटकायी गयी सीढ़ी के साथ हुक द्वारा संलग्न हो गयी। आगन्तुक डेक पर चढ़ आये। सबसे आगे एक दुबला-पतला, नाटा बूढ़ा था, जिसने काला कोट पहन रखा था। उसकी आँखें हरी, नाक चिड़िया की चोंच की तरह नुकीली और दाढ़ी सुनहली लाल थी।

"बाबूजी!" चिल्लाकर माँ उधर दौड़ी और उस बूढ़े से चिमट गयी। उसने अपने छोटे-छोटे लाल हाथों में माँ का माथा थाम लिया और गालों को थपथपाते हुए भर्राये गले से कहा : "मेरी बुद्धू बिटिया? अरे! वही तो है... अह-अह..."

नानी लट्टू की तरह चारों ओर घूम रही थी-कभी इसको और कभी उसको चूमती-चिपटाती हुई। फिर वह मुझे उन लोगों के पास ले जाकर बोली :

"यह तेरा मिख़ाईल मामा है। यह याकोव है। यह है नताल्या मामी। और ये दोनों लड़के तेरे ममेरे भाई हैं, दोनों का नाम साशा है। और यह तेरी ममेरी बहन कतेरीना है। यही है हम लोगों का कुनबा-देख, कितने लोग हैं!"

नाना ने नानी की ओर मुड़कर पूछा :

"और तुम कैसी हो, वर्वारा की माँ?"

उन्होंने तीन बार एक दूसरे को चूमा।

इसके बाद नाना ने यक़ायक़ इस भीड़ में से मुझे खींच निकाला और मेरे सिर पर हाथ रखकर चिल्लाये :

"अरे, यह कौन है?"

"मैं आस्त्राखान का हूँ, केबिन से..."

माँ की ओर घूमकर नाना ने पूछा :

"क्या कह रहा है यह?" और जवाब का इंतजार किये बिना ही बोले :

"हू-ब-हू बाप पर गया है," और फिर सबको नाव में चलने के लिए कहा।

नाव पर से हम लोग किनारे आये। एक ओर के ऊँचे तट पर बनाये गये रास्ते के साथ-साथ पीली मुरझायी घास उगी हुई थी। बीच में पत्थर की सड़क थी, जिससे हमलोग ऊपर चढ़े।

सब से आगे मेरे नाना और उनकी बगल में माँ थी। नाना माँ के कन्धों तक ही आते थे और तेज़ तथा छोटे-छोटे कदम बढ़ा रहे थे। माँ सिर झुकाकर उन्हें ऐसे देख रही थी, मानो हवा में तैर रही हो। उनके पीछे दोनों मामा चुपचाप चल रहे थे। एक ओर थे मिख़ाईल मामा-उनके केश काले और सीधे थे और देह नाना की तरह दुबली, दूसरी ओर याकोव मामा थे-घुँघराले, चमकीले भूरे बालों वाले। उनके पीछे कुछ मोटी औरतें थीं, जो रंग-बिरंगे कपड़े पहने हुए थीं। उनके साथ छः लड़के-लड़कियों का झुण्ड था। सभी मुझसे उम्र में बड़े और सबके सब गुम-सुम थे। मैं नानी और छोटी नताल्या मामी के साथ चल रहा था। मामी का चेहरा पीला और आँखें नीली थीं। उसका पेट बेतरह निकला हुआ था। वह हाँफ रही थी और हर दो कदम पर दम लेने के लिए ठहरकर कह रही थी :

"ओफ, अब मुझसे एक डग भी नहीं चला जायेगा!"

नानी ने कहा :

"ये लोग तुम्हें अपने साथ लाये ही क्यों हैं? कैसा बेअक़्ल है यह कुनबा!"

मुझे यह सब लोग पसन्द नहीं आये-न बच्चे, न बड़े। उनके बीच मैं अपने को पराया-सा अनुभव कर रहा था। मुझे ऐसा लग रहा था कि नानी ने भी अपना विशिष्ट व्यक्तित्व खो दिया है और मुझसे दूर हो गयी है।

नाना मुझे खास तौर से नहीं रुचे। मेरे अन्तस्तल से आवाज़ उठी : यह शख्स दोस्त नहीं, दुश्मन है। उनके प्रति मेरे हृदय में चौकन्नापन और कुतूहल का एक विचित्र भाव उत्पन्न हो गया। मैं उनकी गतिविधि पर विशेष ध्यान रखने लगा।

चढ़ाई खत्म हो गयी। दाहिने घाट के ठीक ऊपर एकमंजिला मकान था, नीचा-सा। उससे सटकर गली निकलती थी। मकान गन्दे गुलाबी रंग से रंगा हुआ था। उसकी खिड़कियाँ बाहर की ओर उभरी हुई थीं और छत बहुत नीचे तक झुकी हुई थी। बाहर से मकान बड़ा दिखाई पड़ता था, पर भीतर कमरे छोटे-छोटे, अँधियारे और सामान से खचाखच भरे थे। उन्हीं तंग कोठरियों में कुनबे के लोग घाट पर स्टीमर के झल्लाये हुए मुसाफिरों की भाँति एक दूसरे से रेल-पेल करते हुए रहा करते थे। बच्चे अनचाही गौरैया की तरह उन कोठरियों में इधर से उधर फुदका करते थे। पूरे मकान में एक अजीब और अप्रिय-सी गन्ध बसी हुई थी।

आँगन कोठरियों की तरह बेढँगा था। ऊपर तारों पर कपड़ों के बड़े थान सूख रहे थे। चारों ओर गाढ़े रंगीन पानी से भरे बड़े-बड़े कढ़ाहे रखे थे। इनमें भी कपड़ों के थान पड़े हुए थे। आँगन के एक कोने में एक छोटा-सा नीचा ओसारा टूटी-फूटी हालत में खड़ा था। उसके अन्दर बने चूल्हे में से आग की रोशनी दिखायी दे रही थी और इसपर रखी चीज़ उबल रही थी, जिसमें से बुद-बुद की आवाज़ आ रही थी। आड़ से कोई आदमी बड़े ज़ोर से कुछ विचित्र शब्द बोल रहा था :

"संदल, सिन्दूरी रंग, तूतिया..."

2

इस तरह मेरा नया जीवन शुरू हुआ-घटनापूर्ण और अवर्णनीय रूप से अनोखा-जिसमें तेज़ी से उतार-चढ़ाव आये। मुझे उसका हर पन्ना याद है, मानो वह किसी प्रतिभाशाली गल्पकार की कही हुई सच्ची कसकभरी कहानी हो। उन बीते दिनों पर नज़र दौड़ाता हूँ, तो यह विश्वास ही नहीं होता है कि वे घटनाएँ सचमुच घटी थीं। बहुत-सी चीज़ों को न मानने और अविश्वास से अस्वीकार कर देने को जी होता है। ऐसा था मलिन और हृदयहीन इस "बेअक़्ल कुनबे" का वास्तविक जीवन।

पर सत्य दया से अधिक महत्व रखता है। और आज मैं अपनी नहीं, वरन् दम घोंटनेवाले उस भयंकर वातावरण की कहानी लिखने बैठा हूँ, जिसमें साधारण रूसी जनता रहा करती थी और आज भी रहती है।

मेरे नाना का मकान बैर और वैमनस्य के विषैले धुएँ से भरा हुआ था। हर आदमी के दिल में दूसरे के प्रति वैमनस्य तथा घृणा का भाव था। बड़े लोगों का दिमाग तो इस धुएँ से बिल्कुल बिषाक्त हो ही चुका था, बच्चे भी उसके असर से

अछूते न थे। नानी की कहानियों से मुझे बाद में ज्ञात हुआ कि मेरी माँ ऐसे वक़्त इस घर में रहने आयी थी, जब मेरे मामा लोग नाना से जायदाद का बँटवारा कर देने की माँग कर रहे थे। माँ के अप्रत्याशित आगमन से यह माँग और भी तेज़ हो गयी। मामा लोगों को डर था कि वह अपने दहेज की माँग करेगी, जो "अपनी मनपसन्द" शादी करने के कारण नाना ने विवाह के वक़्त उसे नहीं दिया था। उन लोगों का कहना था कि दहेज की रकम भी उन्हीं लोगों के बीच बाँट दी जाये। दोनों भाइयों के बीच इस बात को लेकर बहुत दिनों से झगड़ा चल रहा था कि कौन शहर में कारख़ाना खोलेगा और कौन ओका नदी पार की कुनाविनो बस्ती में।

हम लोगों को आये हुए थोड़े ही दिन हुए थे कि एक रोज़ खाने के समय रसोई में बड़े ज़ोर से झगड़ा हो गया। यक़ायक़ दोनों मामा खड़े हो गये और लगे मेज की दूसरी तरफ बैठे नाना की ओर उँगलियाँ नचाकर बड़े ज़ोर से गरजने-कड़कने। वे कुत्तों की तरह दाँत किटकिटा रहे थे। नाना ने ज़ोर से मेज पर अपने हाथ का चमचा दे मारा; उनका चेहरा तमतमा उठा और गूँजती आवाज़ में चिल्लाये :

"मैं दोनों को घर से निकाल दूँगा। दर-दर भीख न माँगी तुम लोगों ने, तो कहना!"

पर नानी वेदनाविकृत चेहरे से बोली :

"बाबू, जो कुछ है, बाँट दो इन लोगों को, हटाओ! तुम्हारी परेशानी दूर हो जायेगी।"

नाना ने लाल आँखें निकाल उसकी ओर देखा और गरजकर बोले :

"चुप रह! तू ही इन्हें बिगाड़ती है।"

मुझे बड़ा अजीब लगा-इतना छोटा-सा आदमी और इतने ज़ोर से चिल्ला सकता है कि कानों के पर्दे फट जायें!

माँ मेज से उठकर खिड़की के पास चली गयी। उसने इधर पीठ कर ली।

मिख़ाईल मामा ने अचानक अपने भाई के मुँह पर एक तमाचा जड़ दिया। दूसरे मामा ज़ोर से गुर्राकर उनसे गुँथ गये। दोनों में फ़र्श पर पटका-पटकी शुरू हो गयी। वे एक दूसरे का पीट रहे थे, गुर्रा रहे थे, गालियाँ दे रहे थे और हांफ रहे थे।

बच्चे यह दृश्य देखकर सिसकने लगे। गर्भवती नताल्या मामी गला फाड़कर रो उठी। माँ उसे पकड़कर बाहर ले गयी। बच्चों की धाई-खुशमिजाज, चेचकरू येव्गेनिया ने उन्हें रसोईघर से बाहर खदेड़ दिया। इधर कुर्सियाँ गिर रही थीं। आखिर कारख़ाने का नौजवान और चौड़े, मजबूत कन्धों वाला अप्रेंटिस इवान मिख़ाईल मामा की पीठ पर चढ़ बैठा और गंजे दाढ़ीवाले मिस्तरी ग्रिगोरी इवानोविच ने, जिसकी नाक पर धुँधली-सी ऐनक होती थी, एक तौलिया लेकर उनके हाथ बाँध दिये।

मामा अपनी काली खसखशी दाढ़ी को ज़मीन पर रगड़ रहे थे, अजीब खरखरी-सी आवाज़ें निकाल रहे थे और नाना मेज के चारों ओर इधर से उधर भागते हुए चिल्ला रहे थे :

"छिः, यह सगे भाई हैं-शर्म नहीं आती है इन्हें!"

झगड़ा आरम्भ होते ही मैं डर के मारे अलावघर पर चढ़ गया था। मैं आश्चर्यचकित होकर वहीं से नीचे का दृश्य देख रहा था। नानी याकोव मामा के चेहरे का ख़ून साफ कर रही थी और मामा रो-रोकर ज़ोरों से पैर पटक रहे थे। नानी हताश स्वर में कह रही थीः

"कब अक़्ल आयेगी तुम नालायकों को? आदमी हो या जंगली जानवर!"

नाना अपनी फटी कमीज को ठीक कर रहे थे और नानी पर बरस रहे थे :

"बुड्ढी डायन! तेरे ही पेट की औलाद हैं ये वनमानुस!"

याकोव मामा बाहर चले गये, तो नानी कमरे के देव-प्रतिमावाले कोने में झुककर खड़ी हो गयी और रोकर बोली :

"हे प्रभु, हे माँ मरियम! मेरे बच्चों को सद्बुद्धि दो!"

नाना खड़े मेज को देख रहे थे, जहाँ हर चीज़ बिखरी पड़ी थी। उन्होंने शान्त स्वर में नानी से कहा :

"अपने लाड़लों पर कड़ी नज़र रखो, नहीं तो वे किसी दिन वर्वारा को नोच खायेंगे..."

"ईश्वर जाने तुम कैसी बातें कर रहे हो!... अपनी कमीज उतारो टाँके लगा दूँ!" नानी बोली और दोनों हथेलियों में उनका चेहरा लेकर माथा चूम लिया। नाना ने, जो उसके आगे बच्चे से लग रहे थे, उसकी छाती में अपना सिर छिपा लिया।

"लगता है, जायदाद बाँट देनी चाहिए।"

"हाँ, ज़रूर बाँट देनी चाहिए।"

दोनों बड़ी देर तक आपस में बातें करते रहे। शुरू में मेल-मिलाप से, पर शीघ्र ही नाना पैरों से फ़र्श कुरेदने लगे, जैसे मुर्गे लड़ने के पहले करते हैं और उँगली नचाकर नानी को धमकाने लगे। वह फुफकारते हुए बोले :

"मैं तुम्हें खूब समझता हूँ। तुम्हें वे दोनों हमसे ज्यादा प्यारे हैं। लेकिन याद रखो, तुम्हारा मिख़ाईल एक नम्बर का पाखण्डी है और याकोव है परले सिरे का नास्तिक। वे बात की बात में हमारी सारी जायदाद उड़ा डालेंगे, कानी-कौड़ी भी बच जाये तो कहना!"

अलावघर पर असावधानी से हिलने-डुलने के कारण इस्तरी पैड़ियों पर झनझनाती हुई नीचे गिर पड़ी। जूठा डालने की बाल्टी में ज़ोरों का छपाका हुआ। नाना उछलकर पैड़ी पर चढ़ गये, झटके से मुझे नीचे खींच लिया और इस तरह ताकने लगे, मानो पहली बार मुझे देख रहे हों। बोले :

"अलावघर में तुझे किसने छिपाया? तेरी माँ ने?"

"मैं खुद चढ़ा था।"

"झूठ बोलता है।"

"मैं झूठ नहीं बोल रहा। मुझे डर लगा, इसलिए अलावघर पर चढ़ गया।"

मुझे ढकेलकर सर पर एक हल्की-सी चपत देते हुए बोले :

"बिल्कुल बाप जैसा है! भाग बाहर यहाँ से।"

मैं तो खुद भी यही चाहता था।

मैंने यह अनुभव किया कि नाना अपनी पैनी हरी आँखें मुझपर जमाये रहते हैं। यह मैं साफ महसूस करता था और उनसे डरता था। मुझे याद है कि मैं हमेशा उन झुलसनेवाली आँखों से बचने की कोशिश किया करता था। मुझे लगता कि नाना क्षुद्र प्रकृति के आदमी हैं। वह सभी से टेढ़ी बात करते हैं और लोगों को चिढ़ाने और तंग करने में उन्हें मजा आता है। उनका तकिया-कलाम था :

"ऊँह! तुम भी क्या आदमी हो!"

और उनकी वह लम्बी "ऊँह" मेरा ख़ून सर्द कर देती। ऐसे लगता, मानो अथाह जल में असहाय गिर पड़ा हूँ।

शाम की चाय के समय फिर सारा परिवार एक जगह जमा होता। नाना, मामा लोग और कर्मशाला के कारीगर रसोईघर में आते, थके-हारे और उनके हाथ रंगों से रंगे और तेज़ाब से जले तथा बाल फीते से बँधे होते। उस वक़्त उनकी शक्लें रसोईघर में रखी देव-प्रतिमाओं जैसी लगतीं। इस खतरनाक अवसर पर नाना मेरे ठीक सामने बैठते और सब से ज्यादा मुझी से बोलते। उनके पोते और पोतियाँ इसी कारण मुझसे डाह किया करते थे। नाना की हर हरकत बड़ी चुस्त और दुरुस्त होती थी। उनकी साटन की कामदार वास्कट पुरानी और घिसी हुई थी; सूती कमीज में शिकनों की भरमार थी और पतलून में घुटनों पर पैबन्द लगे थे। फिर भी वे अपने बेटों से अधिक साफ-सुथरे नज़र आते थे, यद्यपि मामा का पहनावा कहीं अधिक रईसाना था-सूट, कलफ़दार कमीज़ और गले में रेशमी रुमाल।

मेरे आने के थोड़े ही दिनों बाद उन्होंने मुझे प्रार्थना याद कराने का काम शुरू कर दिया। दूसरे बच्चे मुझसे उम्र में बड़े थे। वे हमारे घर की खिड़की से दिखाई देनेवाले उस्पेंस्की गिरजाघर के पादरी से लिखना-पढ़ना सीखते थे।

मेरी सीधी और भीरू नताल्या मामी मुझे पढ़ाती थी। उसका चेहरा बच्चों की तरह भोला-भाला था और आँखें ऐसी स्वच्छ थीं कि चाहो तो आर-पार देख लो।

नजदीक बैठकर उसे एकटक निहारना मुझे बहुत अच्छा लगता था। पर मेरी टकटकी से वह झेंपने लगती थी। आँखें नीची और गर्दन तिरछी करके वह अस्फुट स्वर में कहती :

"हाँ, इसको पढ़ो-'प्रभु, तैने'..."

"'तैने' माने?"

"सवाल मत पूछो," वह नीची नज़र से इधर ताक़ती हुई जवाब देती। "सवाल

पूछने से कठिनाई बढ़ जाती है। बस जैसे मैं बोलती जाती हूँ, वैसे ही दुहराते जाओ। कहो : 'प्रभु तैने'..."

मेरी समझ में नहीं आया कि पूछने से कठिनाई बढ़ क्यों जाती है। 'तैने' शब्द ने मेरे लिए रहस्यमय अर्थ धारण कर लिया और दुहराते वक़्त मैंने उसे जान-बूझकर विकृत कर दिया :

"प्रभु, तिसने..."

पर मेरी गोरी-चिट्टी मामी, जो मालूम होता था कि मोम की तरह गली जा रही है, धैर्य न खोती। सुधारकर कहती :

"कहो, 'तैने'..."

मगर मुझे न मामी सरल मालूम हुई, न उसका सिखाया पाठ। मैं धीरज खो बैठा, जिसका परिणाम यह हुआ कि प्रार्थना याद करना दुष्कर हो गया।

एक दिन नाना ने मुझसे पूछा :

"अलेक्सी, अच्छा आज दिनभर तू कहाँ था? यह तो तेरे माथे का गुमटा ही बता रहा है। भोंड़े लड़कों को खेल में सिर टकराते देर नहीं लगती। प्रभुवाली प्रार्थना याद हो गयी?"

मामी अपनी मन्द आवाज़ में बोली :

"उसे जल्दी याद नहीं होता।"

नाना अपनी लाल भौंहों पर बल डालकर व्यंग्यपूर्वक हँसे और बोले :

"ऐसी बात है तो एक दिन इसकी मरम्मत करनी होगी।"

मेरी ओर घूमकर उन्होंने पूछा :

"पिताजी ने कभी तेरी मरम्मत की थी?"

मैं उनका मतलब नहीं समझा, इसलिए चुप रहा। मेरी माँ ने कहा :

"मक्सिम कभी बच्चे को मारते नहीं थे और मुझे भी उसे छूने को मना कर दिया था।"

"क्यों?"

"वे कहते थे कि मार-पीटकर कभी कुछ नहीं सिखाया जा सकता।"

नाना ने चिढ़कर कहा :

"यह मक्सिम हर बात में मूर्ख था। ईश्वर उसकी आत्मा को शांति दे।"

उनकी बात मुझे बुरी लगी। इसे उन्होंने ताड़ लिया।

"तू क्यों मुँह बना रहा है?" अपने लाल, चमकीले बालों पर हाथ फेरते हुए बोले :

"सनीचर के दिन साशा का बखिया उधेड़ा जायेगा, क्योंकि उसने अंगुश्ताना आग में डाल दिया था।"

"कैसे बखिया उधेड़ा जायेगा?" मैंने पूछा।

सब लोग हँस पड़े और नाना ने जवाब दिया :

"घबरा मत। दो दिन में तुझे भी मालूम हो जायेगा कि बखिया कैसे उधेड़ा जाता है।"

मैं कोने में छिप गया और सोचने लगा : "बखिया तो रँगाई के लिए आये कपड़ों का उधेड़ते हैं। मगर लगता है मरम्मत करना, मारना और बखिया उधेड़ना एक ही चीज़ को कहते हैं। लोग मारते तो घोड़ों, कुत्तों और बिल्लियों को हैं। इसके अलावा आस्त्राखान में पुलिस के सिपाही पारसियों को मारते थे। यह मैंने अपनी आँखों से देखा था, लेकिन छोटे बच्चों को मारते मैंने किसी को नहीं देखा था। हाँ, मेरे मामा लोग कभी-कभी अपने बच्चों को एकाध चपत या थप्पड़ लगा दिया करते थे, लेकिन बच्चे इसकी परवाह नहीं करते थे। माथा सहलाकर थोड़ी देर बाद वे फिर खेल में मगन हो जाते थे। कभी-कभी मैं उनसे पूछता था कि चपत लगने से दर्द तो नहीं होता। वे हमेशा बहादुरी से यही जवाब देते :

"बिल्कुल नहीं।"

अंगुस्ताने का किस्सा मुझे मालूम था। बात यह थी कि चाय के बाद रात के भोजन का समय होने तक मिस्तरी और मेरे मामा रँगे हुए कपड़ों को जोड़कर सीते थे। सिलाई के बाद उनमें दफ्ती के लेबुल टाँग दिये जाते थे। मिस्तरी ग्रिगोरी को कम सूझता था। उससे मज़ाक करने के लिए मिख़ाईल मामा ने अपने नौ साल के भतीजे को चुपके से सिखाया कि मोमबत्ती की आग में मिस्तरी का अंगुस्ताना गर्म कर दें। साशा ने चिमटी से अंगुस्ताने को आग में लाल कर ग्रिगोरी की बगल में रख दिया। खुद वह अलावघर की आड़ में छिप गया। उसी वक़्त इत्तफाक से नाना वहाँ आ गये और सिलाई करने के लिए अंगुस्ताना उठा लिया।

यक़ायक़ बड़े ज़ोर का हल्ला उठा। मैं रसोईघर की ओर दौड़ा। नाना वहाँ हास्यप्रद ढँग से उछलते-कूदते और जली हुई उँगलियों को कान पर रखकर ज़ोर से चिल्ला रहे थे :

"यह किस काफ़िर की करतूत है?"

मिख़ाईल मामा अंगुस्ताने को मेज पर ढुलकाकर फूँक रहे थे। ग्रिगोरी मिस्तरी अपनी सिलाई में लीन थे, जैसे कुछ हुआ ही न हो। मोमबत्ती की फड़फड़ाती लौ उनके गंजे सिर पर छाया डाल रही थी। याकोव मामा भी दौड़े आये। यहाँ का दृश्य देखकर वह हँसी न रोक सके और अलावघर की आड़ में छिप गये। नानी जली उँगलियों पर लेप करने के लिए कच्चा आलू कद्दूकश करने लगीं।

मिख़ाईल मामा बोले :

"यह याकोव के बेटे की कारस्तानी है।"

"तुम झूठ बोलते हो," कहते हुए याकोव मामा कूदकर अलावघर की बग़ल से निकले।

एक कोने से उनके बेटे ने चिंघाड़कर कहा :

"ठीक, झूठ बोल रहे हैं। उन्होंने खुद मुझे ऐसा करने को कहा था।"

दोनों मामाओं के बीच तू-तू-मैं-मैं होने लगी। मामा फौरन शान्त हो गये। उँगलियों पर कद्दूकश किये हुए आलू का लेप करने के बाद बिना एक शब्द बोले वह मुझे लेकर बाहर निकल गये।

सभी ने कहा कि बदमाशी दरअसल मिख़ाईल मामा की है। स्वभावतः, चाय के समय मैंने सवाल किया-क्या मामा का भी बखिया उधेड़ा जायेगा?

नाना ने तिरछी नज़र से मुझे देखा और बड़बड़ाये :

"हाँ, यह करना अच्छा रहता।"

मिख़ाईल मामा मेज पर मुट्ठी पटककर मेरी माँ से बोले :

"वर्वारा! अपने पिल्ले को सँभालो! नहीं तो किसी दिन इसकी गर्दन मरोड़ दूँगा!"

माँ बोली :

"है हिम्मत, तो छूकर देख लो किसी दिन!"

सब लोग चुप हो गये।

माँ बहुत कम बोलती, पर उसका जवाब मुँहतोड़ होता। किसी की हिम्मत न पड़ती कि फिर उसके मुँह लगता।

मैं जानता था कि सभी मेरी माँ से डरते हैं। नाना भी उससे भिन्न स्वर में बात करते थे। औरों के मुकाबले माँ से बात करते समय उनकी आवाज़ मद्धिम हो जाती थी। इससे मुझे बड़ा सन्तोष होता था। अपने ममेरे भाईयों से मैं गर्व से कहता था :

"मेरी माँ के आगे कोई नहीं टिक सकता।"

वे भी इसे क़बूल करते थे।

लेकिन अगले सनीचर को एक ऐसी घटना घटी, जिसने माँ के बारे में मेरा यह विश्वास डिगा दिया।

हुआ यह कि सनीचर आने से पहले मैं भी बुरी तरह फँस गया। कपड़ों की रँगाई मुझे बड़ी अच्छी लगती थी और मैं बड़े लोगों को टक लगाकर यह काम करते देखा करता था। पीले कपड़े को काले पानी में डाल दिया और वह जम्बूकी-गहरा नीला हो गया। भूरे कपड़े को लाल पानी में डालकर निकाल लिया और वह गहरा लाल हो गया-शहतूती। लगता था यह सब कुछ बहुत साधारण, पर इसका रहस्य समझ में नहीं आता।

कुछ न कुछ रँगने को मेरा बड़ा मन हुआ। एक दिन याकोव मामा-वाले साशा से मैंने अपनी हार्दिक इच्छा प्रकट की। साशा बड़ा नम्र और गम्भीर लड़का था। उसका काम था सदा बड़े लोगों की दुम बने रहना और उनका कोई न कोई काम करते रहना। नाना को छोड़, सभी कहते थे कि याकोव का बेटा साशा बड़ा फुर्तीला

और नेक है, पर बूढ़े नाना उसे हिकारत से देखते थे। कहते थे :

"बड़ा खुशामदी टट्टू है। ऊँह..."

याकोव मामा का साशा साँवला और दुबला था। उसकी आँखें केकड़े की तरह बाहर निकली हुई थी। वह जीभ दबाकर बड़ी जल्दी-जल्दी बोलता था, जिससे बात आधी उसके मुँह में ही रह जाती थी। बोलते समय वह गर्दन नीची और नज़र तिरछी रखता था, मानो छिप जाने के लिए कोई कोना ढूँढ रहा हो। साधारणतः उसकी भूरी आँखें स्थिर रहती थीं, लेकिन उत्तेजित होने पर आँखों की सफेदी सहित डोलने लगती थी।

मुझे वह अच्छा नहीं लगता था। मिख़ाईल मामा वाला साशा मुझे उससे कहीं अधिक पसन्द था, यद्यपि वह ढीला-ढाला और ऐसा लड़का था जिसकी तरफ दूसरों का ध्यान नहीं जाता था। शान्त प्रकृति और अपनी विनम्र माँ की तरह उदास आँखों और सुखद मुस्कान वाला था वह। उसके दाँत बड़े भद्दे थे। ऊपर के जबड़े में उगकर वे दोहरी कतार में मुँह से बाहर निकल आये थे। साशा की उँगलियाँ सदा पिछली कतार के दाँतों में उलझी रहती थीं। कोई साथी उन्हें छूकर देखना चाहता, तो बेचारा साशा कभी आपत्ति नहीं करता था। मगर दाँतों को छोड़ मुझे उसमें कोई आकर्षण नहीं मालूम होता था। लोगों से भरे इस घर में साशा सदा एकाकी रहता था। किसी अँधेरे कोने में या शाम को खिड़की के दासे पर वह चुपचाप बैठा रहता-एकदम अकेला। जब हम दोनों साथ होते, तो न मैं बोलता न वह। दोनों सटकर खिड़की के दासे पर बैठे हुए यह देखा करते कि कैसे संध्या के लाल आकाश के नीचे उस्पेंस्की के बड़े गिरजे के सुनहले गुम्बद के चारों ओर डोम कौवे मँडराते हैं। वे उड़ते और आकाश को बेधते ऊपर चले जाते हैं और फिर पंख समेटकर हवा में डुबकी मारते हैं। जब आसमान में कालिमा छाने लगती तो वे सभी एकसाथ पंख फैलाकर उड़ जाते और अपने पीछे छोड़ जाते सूनापन। ऐसे दृश्यों में तन्मय होने पर भला कौन निस्तब्धता भंग करना चाहता? दोनों ही मौन रहते, हृदय उस समय एक टीसभरे आनन्द से सराबोर होता।

इसके विपरीत, याकोव मामा का साशा हर चीज़ के विषय में बुज़ुर्गों की तरह बहुत-सी बातें कर सकता था। उसे जब मालूम हुआ कि मैं भी रंगरेजी करना चाहता हूँ, तो झट बोला कि इतवार के दिन बिछाया जानेवाला सफेद मेजपोश आलमारी से निकालकर उसे गहरे नीले रंग में रंग डालो!

"जानते हो, उजले कपड़े पर रंग बड़ा बढ़िया चढ़ता है," उसने बड़ी संजीदगी से कहा।

मैंने वह भारी मेजपोश आलमारी से निकाल लिया। लेकिन जैसे ही मैंने उसका एक कोना "जम्बूकी" वाले कड़ाहे में डाला कि इवान ने दौड़कर मुझे ढकेल दिया और हाथ से मेजपोश छीन लिया। भीगे कोने को अपनी मजबूत हथेलियों से निचोड़ते

हुए उसने मेरे ममेरे भाई को, जो ओसारे में खड़ा होकर सारा तमाशा देख रहा था, पुकारा :

"जल्दी से दादी को बुला लाओ।"

फिर अपना रूखे, काले बालों वाला सिर मेरी तरफ हिलाते हुए बोला :

"देखना, अब तुम्हारी कैसी दुर्गति होगी!"

नानी फौरन दौड़ी आयी, यह काण्ड देखकर अवाक् रह गयी और हास्यस्पद ढँग से मुझे डाँटते हुए रो पड़ी :

"अरे मेमने के बच्चे! आफत की दुम! यह क्या किया तूने?"

इसके बाद वह इवान से अनुनय करने लगी :

"इवान! देख, इसके नाना को खबर न होने पाये। मैं मामले पर पर्दा डाल दूँगी। कुछ दिनों बाद बात आयी गयी हो जायेगी।"

इवान स्वयं उद्विग्न था। उसने रंग-बिरंगे धब्बों वाले पेशबन्द से अपना हाथ पोंछते हुए कहा :

"मुझे क्या पड़ी है ऐसा करने की? पर तुम्हारा साशा भण्डाफोड़ कर देगा।"

"उसे मैं कुछ पैंसे दे दूँगी," नानी ने मुझे घर के भीतर ले जाते हुए कहा।

सनीचर को शाम की प्रार्थना के ठीक पहले कोई मुझे रसोईघर में लिवा ले गया। वहाँ अँधेरा और चारों ओर चुप्पी थी। बरामदे और कमरों के दरवाज़े कसकर बन्द कर दिये गये थे। खिड़की के बाहर पतझड़ की शाम का सफेद कुहासा छाया था और बूँदाबूँदी हो रही थी। अलावघर के काले मुँह के पास बेंच पर इवान परेशान-सा बैठा था। उसके चेहरे पर असाधारण उद्विग्नता थी। नाना कोने में पानी से भरे टब के पास खड़े थे और उसमें से चिकने, छिले बेंत निकालकर उन्हें "सर्रर्रर्र" की आवाज़ के साथ हवा में घुमाकर देख रहे थे। नानी एक ओर अँधेरे में खड़ी ज़ोर-ज़ोर से सुँघनी सूँघती हुई बड़बड़ा रही थी :

"निर्दयी कहीं के! इसमें आनन्द आता है इनको..."

याकोव का साशा रसोईघर के बीचों-बीच एक स्टूल पर बैठा मुट्ठियों से आँखें मल रहा था और परायी, किसी बूढ़े भिखमंगे की सी आवाज़ में ज़ोर-ज़ोर से रोकर कह रहा था :

"प्रभु ईसा के नाम पर माफ़ कर दीजिए..."

मिख़ाईल मामा का साशा और उसकी बहन उसी के पीछे एक दूसरे से सटे यों खड़े थे, मानो लकड़ी के दो खम्भे हों।

नाना हथेली पर लम्बा भींगा बेंत सटकारते हुए बोले :

"पहले अपनी करनी का मजा चख ले, फिर माफ कर दूँगा। उतार पतलून!"

उनका स्वर शान्त था। न तो उनकी आवाज़, न चरमराती कुर्सी पर हिलते-डुलते साशा के रुदन और न ही अँधेरे कोने में नानी के पाँवों की रगड़ ही नीची, कालिख

पुती छतवाले इस अँधियारे रसोईघर की उस अविस्मरणीय निस्तब्धा को बेध पा रही थी।

साशा उठा, पतलून की पेटी खोलकर उसे घुटनों तक खिसका दिया और इसके बाद लड़खड़ाते पाँवों से बेंच पर पर लेट गया। वह भयानक दृश्य था। मेरे पाँव भय से काँपने लगे। लेकिन उससे भी भयानक दृश्य तब उपस्थित हुआ, जब इवान ने एक लम्बे तौलिये को उसकी गर्दन पर और काँखों के नीचे से गुजारकर उसे बेंच से बाँध दिया और उसके दोनों पैर दबाकर खड़ा हो गया।

नाना ने कहा :

"अलेक्सेई, इधर आ! तुझी को पुकार रहा हूँ! देख, बखिया उधेड़ना इसे कहते हैं। एक..."

कहकर उन्होंने एक बेंत साशा की नंगी देह पर मारा। वह चीख उठा।

"ढोंग न कर," नाना बोले, "अभी कहाँ चोट लगी है? इस बार देखना!"

इस बार बेंत का दाग त्वचा पर साफ उभर आया-एक भद्दा, लम्बा, लाल निशान। साशा हठात "ऊई माँ" कर उठा।

नाना ने दनादन बेंत चलाना शुरू किया :

"यह ले! यह बढ़िया लगा? नहीं? अच्छा तो यह ले, यह है अंगुस्ताना!"

जब उनका हाथ ऊपर उठता, मेरे कलेजे में एक कसक-सी उठती और जब हाथ नीचे आता, तो मुझे लगता कि मैं भी धम से नीचे गिर पड़ा।

साशा की मर्मबेधी चिल्लाहट असह्य थी।

"अब कभी नहीं करुँगा। मेजपोश के बारे में मैंने ही तो बताया था आपको। मैंने ही तो बताया था आपको! मैंने ही तो..."

नाना ने बहुत शान्त भाव से, मानो भजनावली पढ़ते हुए कहा :

"चुगली खाने से तेरी जान नहीं बच सकती। चुगलखोर की ही पहले मरम्मत की जाती है... लो, यह मेजपोश की चुगली के लिए!"

नानी ने दौड़कर मुझे अपने पीछे छिपा लिया। बोली :

"खबरदार, जो अलेक्सेई को हाथ लगाया। मैं तुम्हारे जैसे निर्दयी को उसे छूने भी न दूँगी!"

वह दरवाज़े को लातों से पीटने लगी और चिल्लायी :

"वर्वारा! वर्वारा!"

नाना ने झपटकर नानी को ढकेल दिया और मुझे घसीटकर बेंच के पास ले गये। मैं छूटने के लिए छटपटाने लगा, उनकी लाल दाढ़ी खींच ली तथा उँगलियों को दाँतों से काट लिया। गुस्से से गरजते हुए उन्होंने मुझे कसकर पकड़ लिया और मुँह के बल ज़ोर से बेंच पर दे मारा। उनकी पागलों जैसी चिंघाड़ मुझे याद है :

"बाँधो इसे! वरना जान से मार दूँगा।"

और याद है माँ का सफेद चेहरा और विशाल आँखें। वह बेचैनी से बेंच के चारों ओर दौड़ रही थी और खरखरी-सी आवाज़ में कह रही थी :

"पिताजी! नहीं मारो! छोड़ दो इसे!"

नाना ने पीटते-पीटते मुझे अधमरा कर दिया। मैं बेहोश हो गया। उसके बाद मैंने खाट पकड़ ली। मुझे उन दिनों की स्पष्ट याद है। एक छोटे-से कमरे में, जिसमें सिर्फ एक खिड़की थी, मैं एक चौड़े गर्म पलँग पर पेट के बल पड़ा हुआ था। कमरे के कोने में, जहाँ बहुत-सी देव-प्रतिमाएँ रखी थीं, एक छोटा-सा लाल दीपक रात-दिन जला करता था।

बीमारी के वे दिन मेरी ज़िन्दगी के महत्वपूर्ण दिन थे। मुझे ऐसा लगा कि उन थोड़े-से दिनों में मैं बरबस बड़ा हो गया और मेरे चरित्र में एक नयी विशेषता आ गयी। हृदय दूसरों के प्रति गहरी संवेदना से परिपूर्ण हो गया। ऐसा मालूम हुआ कि किसी ने कलेजे पर की खाल छील दी है। अब अपने या दूसरों के दुःख और हृदय को लगने वाली ठेस से ऐसा जान पड़ता, मानो किसी ने ताजे घाव को छू दिया हो।

सबसे अधिक हैरानी तो मुझे नानी और माँ की बातचीत सुनकर हुई। लम्बी-चौड़ी साँवली नानी उस छोटे-से कमरे में माँ के ऊपर बाज की तरह झपटी, उसे देव-प्रतिमाओं वाले कमरे में ले जाकर घेरा और फुफकारकर बोली :

"तूने उसे जबरदस्ती क्यों नहीं छुड़ा लिया?"

"मैं डर गयी थी," माँ ने उत्तर दिया।

"छि, वर्वारा! शर्म आती है तुझे! ऐसी लम्बी-चौड़ी औरत होकर तुझे डर लगता था? मैं बूढ़ी हूँ, फिर भी नहीं डरती!"

"बस करो, माँ! मुझे खुद ही बहुत बुरा लग रहा है!"

"तेरे मन में उसके लिए ज़रा ममता नहीं है। उस अनाथ पर तुझे दया नहीं आती!"

"मैं खुद जीवन भर के लिए अनाथ हूँ, माँ!" माँ मर्मस्पर्शी स्वर में बोली।

इसके बाद दोनों कोने में पड़े सन्दूक पर बैठकर रोने लगीं...

मेरी माँ ने कहा :

"अलेक्सेई के ही कारण मैं यहाँ ठहरी हूँ। वह न होता, तो मैं इस घर की हवा भी पास न फटकने देती। इस नरक का जीवन अब मुझसे नहीं बर्दास्त नहीं होता, माँ। मुझमें शक्ति नहीं है..."

"मेरी बिटिया! मेरे दिल के टुकड़े... ओफ!" नानी तरल स्वर में बोली।

अब मुझे मालूम हो गया। माँ को मैंने गलत ही शक्तिमयी समझा था। औरों की तरह वह भी नाना से डरती थी। और इस मकान में, जहाँ का जीवन उसकी बरदाश्त के बाहर था, वह मेरे ही कारण रह रही थी। यह सोच मेरा जी बैठ गया। उसके थोड़े ही दिनों बाद माँ कहीं, किसी के यहाँ मिलने-मिलाने चली गयी।

एक दिन अचानक मानो छत से टपक पड़े हों, मेरे नाना मुझे देखने आये। वह पलँग के सिरे पर बैठकर बर्फ़ जैसी सर्द उँगलियों से मेरा माथा छूने लगे।

"कैसी तबीयत है, जनाब?... बोल न! गुस्सा नहीं रखते मन में!"

मेरे जी में आया कि बुड्ढे को एक लात दूँ, लेकिन हिलने-डुलने से दर्द होता था। उनके बाल पहले से अधिक लाल लग रहे थे। वह पलँग पर बैठकर सिर हिला रहे थे और दीवारों की ओर इधर से उधर देख रहे थे, मानो नज़र मिलाते हुए झेंपते हों। कुछ मिनटों के बाद उन्होंने जेब से मीठे आटे का बना एक बकरा, दो मीठी रोटियाँ, एक सेब और कुछ मुनक्का निकाला और इन सभी चीज़ों को मेरे मुँह के पास तकिये पर रखकर बोले :

"देख, मैं तेरे लिए उपहार लाया हूँ।"

इसके बाद झुककर उन्होंने मेरा माथा चूम लिया और लगे बातें करने। बात करते समय वह अपने छोटे, खुरदरे और पीले रंग से रँगे हुए हाथ से, जो उनके पंछियों जैसे टेढ़े, नुकीले नाखूनों में खास तौर पर दिखाई दे रहा था, मेरे बालों को सहलाने लगे।

"तुझे ज्यादा मार पड़ गयी। असल में तेरे दाँत काटने और नाखून गड़ाने से मैं आपे से बाहर हो गया। खैर, इस बार ज्यादा पड़ गयी, तो अगली बार उसका अवश्य ख्याल रखा जायेगा। एक बात याद कर ले। घर के लोगों की मार का बुरा नहीं मानना चाहिए। वे भले के लिए मारते हैं। मगर बाहर के आदमी को कभी हाथ न लगाने देना चाहिए। घर के लोगों की बात और है। छुटपन में मैंने कम मार नहीं खायी है। तू भयानक सपने में भी नहीं सोच सकता, अलेक्सेई, कि मेरी कैसी ठुकाई हुआ करती थी। वह मार देखकर भगवान भी रो देता होगा, लेकिन उसी मार ने मुझे आदमी बना दिया। जानता है, मैं बिना बाप का था और मेरी माँ भीख माँगकर गुजर करती थी। लेकिन देख आज मैं क्या हूँ-कारखाने का मालिक और इतने आदमी मेरे हुक्म पर चलते हैं।"

अपने दुबले-पतले गठे शरीर को मुझसे सटाकर वह आसानी और फुर्ती से वजनी और ज़ोरदार शब्दों को एक दूसरे से जोड़ते हुए अपने बचपन की कहानी कहने लगे।

उनकी हरी आँखों में चमक थी। केश उत्तेजना से खड़े थे। वह ज़ोर-ज़ोर से कह रहे थे :

"तू यहाँ भाप से चलनेवाले स्टीमर में आया था। पर अपनी जवानी में हमने अपनी भुजा की शक्ति से वोल्गा के प्रवाह के विरुद्ध बज़रों को चलाया है, बज़रा रहता पानी की धार में और हम होते किनारे पर। नंगे पैर, तट के नुकीले रोड़ों और चट्टानों पर बजरे को खींचते हुए। भोर से रात तक यही क्रम चलता। सूरज की किरणों से माथा तप जाता। ऐसा मालूम होने लगता कि लोहे का खौलता कड़ाह है।

देह धनुष की तरह तन जाती। हड्डी-हड्डी चरमरा उठती। लेकिन चलना था कि चलते ही चले जा रहे हैं। रास्ता दिखाई नहीं दे रहा था, माथे का पसीना आँखों में भर आता; लगता कलेजा अब फटा तब फटा। मुँह से बार-बार अस्फुट कराह निकल जाती। ओह, अलेक्सेई, तुम लोगों ने तकलीफ नाम की चीज़ देखी ही नहीं ! चलते-चलते कन्धे की रस्सी यक़ायक़ ढीली पड़ती और हम, थकान से चूर, गिर पड़ते मुँह के बल ज़मीन पर। लेकिन गिर पड़ने में आनन्द था, राहत थी, क्योंकि उसका अर्थ था शक्ति की आखिरी बूँद का निकल जाना। बेशक दम लो, बेशक दम तोड़ दो। यही थी हमारी ज़िन्दगी। प्रभु ईसा आँखें खोलकर देख रहे थे और हम बिता रहे थे ऐसा ही जीवन। तीन बार बज़रा टानते हुए मैं वोल्गा के एक छोर से दूसरे छोर तक हो आया-सिम्बीर्स्क से रीबिंस्क तक, सारातोव से यहाँ तक और आस्त्राखान से मकार्येव के मेले तक-हज़ारों कोस! लेकिन चौथे साल मालिक ने मुझे तरक्की दे दी। उसने मेरी असाधारण क्षमता को चीन्हा और मुझे बजरे के मज़दूरों का मुखिया बना दिया।"

कहानी आगे बढ़ रही थी और साथ ही नाना का आकार मेरी आँखों में मेघ की तरह फैलता जा रहा था। वह दुबला-पतला, नाटा बुड्ढा किसी पुरानी कहानी का अतुलनीय बलशाली नायक बन गया, ऐसा नायक, जिसने अकेले अपनी भुज-शक्ति से नदी के प्रवाह पर मटमैले रंग का विशाल बज़रा टानकर चढ़ा दिया था...

कहानी कहते-कहते नाना पलँग से नीचे उतरकर प्रदर्शन भी करने लगते-बुर्लाक* लोग किस तरह रस्सी टानते हैं या बजरे से पम्प द्वारा पानी निकालते हैं। बीच में मद्धिम लय में वह कोई अपरिचित गीत गाने लगते। फिर उछलकर पलँग पर आ बैठते, मानो जवानी की उमंग लौट आयी हो। उस वक़्त वह मुझे अद्भुत जीव मालूम होते। उनका स्वर अधिकाधिक गम्भीर और विश्वासप्रद होता जाता। कहानी चलती जा रही थी :

"लेकिन उस अकथनीय कष्ट में भी जीवन का उल्लास हमारा साथ न छोड़ता। गर्मियों की शाम को बज़रा जिगुली पहाड़ियों के करीब रात के लिए ठहर जाता और हम लोग हरियाली से लदी एक पहाड़ी के नीचे डेरा डाल देते। उस वक़्त मौज की अवर्चनीय घड़ी आरम्भ हो जाती। अलाव लगाकर हम लोग उसके गिर्द बैठ जाते। आँच पर दलिये की देगची चढ़ा दी जाती और तब कोई बुर्लाक बिरहा की हूक भरी तान छेड़ देता। फिर क्या था? गाने की तान में हम सभी शामिल हो जाते। उस वक़्त वहाँ ऐसा समाँ बँधता कि सुननेवाले का रोम-रोम पुलकित हो उठता। खुद वोल्गा झूम उठती। मतवाले घोड़े की तरह उसकी धार उफनने और लरजने लगती। ऐसा मालूम पड़ता कि वह उमंग में भरकर आकाश को छूना चाहती है। हम सभी तन्मय हो यह तक भूल जाते कि चिन्ता और उद्विग्नता किस चिड़िया का नाम है।

* बुर्लाक-बजरा खींचने वाला।

खाना पकानेवाला आग पर चढ़े दलिये को भी भूल जाता। वह उफनकर गिरने लगता, तब पकानेवाले के सिर पर धौल जमाकर कोई बोल उठता, 'अबे, गीत में मस्त, चूल्हे का भी ख्याल कर।'"

कई बार लोग दरवाज़े पर आकर नाना को पुकार गये, लेकिन मैंने आग्रह किया :

"अभी मत जाओ!"

नाना हँसते हुए कहते :

"कह दो प्रतीक्षा करें, आता हूँ।"

शाम तक वह मुझे कहानियाँ सुनाते रहे और जब प्यार से विदा लेकर चले गये, तो मुझे एहसास हुआ कि वह क्षुद्र या भयानक नहीं हैं। इसी आदमी ने मुझे इतनी बेरहमी से पीटा था, यह याद आने पर मुझे बहुत दुःख होता। लेकिन मैं मार को भूल नहीं सका।

नाना के आने से दूसरों का रास्ता भी खुल गया। अब सबेरे से शाम तक कोई न कोई मेरी चारपाई पर बैठा रहता और वे सभी तरह-तरह से मेरा मन बहलाने की कोशिश करते। मुझे याद है उनके प्रयत्न सदा सफल नहीं होते। नानी सबसे ज्यादा आती थी; वही रात को मेरे साथ सोती थी। आने वालों में जिस आदमी ने मेरे दिल को सबसे ज्यादा मोह लिया, वह था इवान। वह शाम को आया-हट्टा-कट्टा, गठा हुआ शरीर और चौड़ी छाती, काले घुँघराले बालोंवाला बड़ा-सा सिर। वह छुट्टी के दिनवाली खास पोशाक पहने हुए था-सुनहरे रंग की रेशमी क़मीज़, मुलायम सूती पतलून और चरमर करते हुए चमड़े के जूते। उसके बाल मुलायम और चमकदार थे। घनी भौंहों के नीचे धनुषाकार आँखों में ज्योति थी। होठों के ऊपर भींगती मसें, जिनकी छाँह में सफेद दाँत झलक रहे थे। देव-प्रतिमाओं के नीचे सदा जलनेवाले लाल दीये की मन्द ज्योति में उसकी रेशमी क़मीज़ आभा दे रही थी।

आस्तीन उठाकर उसने अपनी बाँह दिखाई। उसपर बेंत की मार के अनगिनत लाल निशान पड़े हुए थे। बोला :

"देखो तो, कैसे सूजी हुई हैं। अब तो यह काफी अच्छी हो गयी हैं। उस वक़्त इसे देखते तो! असल में तुम्हारे नाना आपे से बाहर हो रहे थे। उस वक़्त शायद वह तुम्हें खत्म ही कर देते, इसलिए मैं बेंत के नीचे अपनी बाँहे रखने से बेंत के टूटने का इंतजार करने लगा। सोचा कि जब तक वह दूसरा लायेंगे, तब तक तुम्हारी नानी या माँ को तुम्हें वहाँ से हटा देने का मौका मिल जायेगा। मगर देर से भिगोकर रखा गया बेंत लचीला था और टूटा नहीं। फिर भी कई बेंत तुम्हें नहीं लगे; तुम मेरी बाँह पर उनकी संख्या गिन सकते हो। आखिर मैं भी तो चलता पुरजा हूँ।"

उसने प्यारी और रेशमी हँसी का ठहाका लगाया। एक बार फिर अपनी सूजी हुई बाँह की ओर देखकर बोला :

"मुझको तुम्हारी हालत पर इतना तरस आ रहा था कि लगा, दम ही घुट जायेगा।

मैं समझ गया कि तुम्हारी जान की खैर नहीं, मगर बुड्ढा गुस्से में पागल होकर बेंत चलाता ही चला जा रहा था।"

यह कहकर उसने घोड़े की तरह अपने नथुने फुलाये और सिर पीछे तानकर मेरे नाना के बारे में तरह-तरह की बातें कहने लगा। उसकी बातों में ऐसी बालोचित सरलता थी कि मैं लट्टू हो गया। मैंने कहा कि तुम मुझे बहुत प्यारे लगते हो। उसने भी उसी अविस्मरणीय सरलता के साथ जवाब दिया :

"मैं भी तुम्हें प्यार करता हूँ, इसी लिए तो बेंत की मार मैंने अपने ऊपर झेल ली। कोई दूसरा होता, तो क्या उसके लिए भी ऐसा करता? हरगिज नहीं..."

इसके बाद वह मुझे गुप्त सीख देने लगा। ऐसा करते समय उसकी सशंक दृष्टि लगातार दरवाज़े की ओर लगी हुई थी। बोला :

"दूसरी बार मार खाने की नौबत आये, तो एक काम करना। बदन को हरगिज अकड़ाये मत रखना। बदन को अकड़ाये रखने से दुगनी चोट लगती है। देह उस वक़्त बिल्कुल ढीली कर देनी चाहिए ताकि बेंत पड़ते वक़्त रूई के गाले की तरह मुलायम रहे। इसके अलावा साँस नहीं रोकनी चाहिए। खूब ज़ोर से साँस चलने देनी चाहिए और कलेजे की पूरी ताक़त लगाकर चिल्लाना चाहिए। इतनी बातें याद रखना।"

"तो क्या मेरी फिर पिटाई होगी?" मैंने पूछा।

इवान ने शान्त स्वर में जवाब दिया :

"और क्या? एक ही बार में बस नहीं हो गया। अभी न जाने कितनी बार पिटाई होगी..."

"मगर मेरा कसूर क्या है?"

"वह तुम्हारे नाना कसूर ढूँढ लेंगे..."

इसके बाद फिर उसने आग्रहपूर्वक सीख देनी शुरू की :

"अगर चोट सीधी पड़े, तो चुपचाप बदन को ढीला करके पड़े रहो और हिलो-डुलो मत। अगर मारनेवाला चमड़ी उधेड़ने के ख्याल से बेंत सरकाकर देह पर उसे खींचे, तो तुम भी झट उसकी ओर सरक जाओ। जिस तरफ बेंत खींचा जाए, उसी ओर देह सरका दो। समझ गये न? तब कम चोट आती है।"

फिर कनखी से आँख मारकर उसने कहा :

"इस मामले में मैं पुलिस वालों की भी नाक काट सकता हूँ। मेरे बदन पर इतने बेंत बरस चुके हैं कि छिली हुई चमड़ी से दस्ताना तैयार हो जाये!"

उस वक़्त उसके हँसोड़ चेहरे को देखकर मुझे बरबस शाहजादा इवान और घोंघाबसन्त इवानुश्का वाली कहानियाँ याद आ गयीं, जो मुझे नानी ने सुनायी थीं।

3

चंगा होने के बाद मैं अच्छी तरह समझ गया कि इवान का हमारे घर में खास स्थान है। नाना जैसे अपने बेटों पर अक्सर बिगड़ते रहते थे, उस तरह इवान पर नहीं। उसकी अनुपस्थिति में जब भी उसकी चर्चा चलती, तो वह सर हिलाकर और आँखें मटकाकर कहते :

"इवान पूरा शैतान का बच्चा है, लेकिन उसकी उँगलियों में कमाल है। वह बेजोड़ है।"

मेरे मामा लोग भी इवान के साथ मेल से रहते थे। ग्रिगोरी मिस्तरी की तरह उससे कभी मज़ाक नहीं करते थे। बेचारे मिस्तरी को लगभग हर रोज़ उनके बेहूदा मज़ाकों का शिकार होना पड़ता था। कभी वे उसकी कैंची की बेंट चुपके से गरम कर देते, कभी कुर्सी में काँटी खोंस देते, या कभी गलत रंग के कपड़े सटाकर रख देते। कम सूझने की वजह से बेचारा सब को एक ही में सी देता था और उसे नाना की डाँट सहनी पड़ती थी।

एक दिन भोजन के बाद मिस्तरी रसोईघर की बेंच पर सो रहा था। उन लोगों ने चुपके से उसके चेहरे पर गहरा लाल रंग पोत दिया। कई दिन तक उसका चेहरा बन्दर जैसा बना रहा : उजली दाढ़ी की पृष्ठभूमि में उसके चश्मे के काले शीशे धुँधली-सी आभा दिया करते थे, बीच में रंगी हुई लाल नाक ऐसी लगती, जैसे जीभ लटक रही हो।

बुड्ढे को छकाने के लिए मेरे मामा लोग हर रोज़ कोई न कोई नयी बात ढूँढ निकालते, लेकिन वह कुछ भी न बोलता। केवल अपने आप बुदबुदाता रहता और कैंची, इस्तरी, अंगुस्ताना या चिमटा उठाने के पहले उँगलियों को थूक से अच्छी तरह तर कर लेता। यह ऐसी आदत बन गई कि भोजन के वक़्त भी काँटा या छुरी उठाने के पहले वह उँगलियों को थूक से भिगो लेता। लड़के इसपर खूब हँसते। हाथ जलने पर उसके चौड़े चेहरे पर पानी की लहर की तरह सिकुड़नों का गोल घेरा फैल जाता और भौंहों को धनुषाकार बनाता हुआ गंजी खोपड़ी के ऊपर गायब हो जाता।

नाना का अपने बेटों के ऐसे "मज़ाक" के बारे में क्या ख्याल था, यह मुझे याद नहीं, लेकिन नानी मुक्का तानकर उन्हें खूब डाँटती थी :

"बेहया, बदमाश कहीं के!"

इवान के पीठ पीछे मेरे मामा लोग उसकी खूब शिकायत करते और उसे चोट्टा और कामचोर आदि बताते।

मैंने नानी से एक दिन इसका कारण पूछा। वह बोली :

"दोनों इस ताक में हैं कि रंगरेजी के उनके अलग-अलग कारखाने बनने पर इवान उन्हीं के यहाँ नौकरी करे, इसलिए वे एक दूसरे को यह जताने की कोशिश

करते हैं कि वह किसी काम का नहीं है। दोनों बड़े धूर्त हैं। साथ ही उन्हें यह भी डर है कि इवान उनके पास जाने के बजाय, यहीं, तेरे नाना के साथ रहना पसन्द करेगा। तेरे नाना के मन में कुछ और ही चालाकी है। वह इवान को लेकर तीसरा कारखाना खोल सकते हैं। अगर ऐसा हुआ, तो तेरे मामाओं के लिए तो अच्छा नहीं होगा।"

हँसते हुए उसने फिर कहा :

"इन सबों की धूर्त्तता देखकर भगवान को भी हँसी आती होगी। तेरे नाना उन्हें चिढ़ाने के लिए एक और शिगूफा छोड़ देते हैं। वह कहते हैं कि मैं तो इवान को रँगरूटी से मुक्ति का प्रमाणपत्र खरीद दूँगा, जिससे उसे फौज में न जाना पड़े, क्योंकि मुझे तो खुद उसकी बड़ी ज़रूरत है। इसपर तेरे मामा और जल-भुनकर खाक हो जाते हैं, क्योंकि प्रमाणपत्र खरीदने में ढेर-सा रुपया लग जायेगा, जो वे अपनी गाँठ से निकालना नहीं चाहते।"

स्टीमर-यात्रा के दिनों की तरह अब मैं फिर नानी के साथ रहने लगा था। हर रोज़ रात को वह मुझे कहानियाँ सुनाया करती। ये कहानियाँ या तो परियों की होती या खुद नानी के जीवन की। वे भी परियों की कहानियों से कम दिलचस्प न थीं। पर जब वह घर के झँझटों का, जैसे नाना की जायदाद के बँटवारे या नया मकान खरीदने के नाना के इरादे का जिक्र छेड़ देती, तो उसका स्वर व्यंग्यात्मक और निरपेक्ष हो जाता, मानो वह गृहस्थी की मालकिन नहीं कोई पड़ोसिन हो।

उसी से मुझे मालूम हुआ कि इवान के माँ-बाप का पता नहीं है। वसन्त ऋतु की एक रात को पानी बरस रहा था, उसी दिन वह फाटक के पास की बेंच पर पड़ा मिला था। नानी ने रहस्यभरे स्वर में कहा :

"चादर में लिपटा वह बेंच पर यों ही पड़ा था-पाले से ऐसा सर्द कि आँख भी नहीं खोल सकता था।"

"लोग बच्चों को इस तरह फेंक क्यों देते हैं?" मैने सवाल किया।

नानी ने जवाब दिया :

"बाज़-बाज़ माँओं को दूध नहीं उतरता और न बच्चे को खिलाने के लिए और कुछ होता है, तो वे पता लगाती हैं कि किस घर में बच्चा होकर मर गया है। वहीं वे अपने बच्चे को ले जाकर छोड़ आती हैं।"

केशों में कँघा फेरते हुए वह एक क्षण को रुक गयी और फिर छत ताक़ते हुए विषादपूर्ण स्वर में बोली :

"यह सब गरीबी के कारण होता है, बेटे! कुछ लोग इतने गरीब होते हैं कि उनकी दुर्दशा का वर्णन करना सम्भव नहीं। इसके अलावा शादी के बिना बच्चा होना कलंक समझा जाता है। तेरे नाना का कहना था कि बच्चे को पुलिस में दे दिया जाये, मगर मैंने कहा, नहीं, भगवान ने इसे हमारे मरे हुए बच्चों की जगह भेजा है...

मैंने अपने गर्भ से अठारह सन्तानों को जन्म दिया। अगर वे बचते, तो आज अठारह घरों का कुनबा होता हमारा-पूरा एक मुहल्ला... चौदह ही वर्ष की उम्र में मेरी शादी हुई थी। पन्द्रहवाँ पूरा होने के पहले ही मेरी पहली सन्तान पैदा हुई, लेकिन भगवान को मेरी गोद के बच्चे बहुत प्यारे थे। एक-एक कर वह उन्हें उठाता गया। सब फरिस्ते बन गये। मुझे दुःख भी होता और खुशी भी।"

कुछ दिन पहले एक देहाती सेर्गाच के जंगल से एक भालू पकड़कर हमारे आँगन में लाया था। रात की पोशाक में खुले लम्बे केशों में लिपटी नानी मुझे उसी भालू जैसी लग रही थी।

"भगवान ने चुनकर अच्छों-अच्छों को उठा लिया। जो सब से नालायक थे, उन्हें ही छोड़ दिया," उसने हँसते हुए कहा और बर्फ़ जैसे गोरे खुले सीने पर सलीब का निशान बनाया। "इवान को पाकर मुझे बड़ी खुशी हुई, क्योंकि तेरे जैसे निर्बल, असहाय बच्चों पर मुझे बड़ी ममता होती है। मैंने उसे पाल लिया और बकायदा बपतिस्मा भी करा दिया। वही बालक आज बढ़कर गबरू जवान हो गया। बचपन में मैं उसे गुबरैला कहा करती थी, क्योंकि वह गुबरैले की तरह ज़मीन पर रेंगता और भन-भन किया करता था। तू उसके साथ मेल से रहा कर और उसे प्यार किया कर, क्योंकि वह दिल का बड़ा अच्छा है।"

यह कहने की ज़रूरत न थी, क्योंकि मैं इवान को पहले से ही प्यार करने लगा था। उसके आश्चर्यजनक करतबों पर मैं सदा मुग्ध रहता था।

शनिवार की शाम को नाना बच्चों को हफ़्ते भर के दौरान की गयी शरारतों की सजा देकर प्रार्थना के लिए गिरजाघर चले जाते, तो रसोईघर में जश्न का ऐसा समाँ छा जाता कि बयान से बाहर। इवान अलावघर के पीछे से बहुत से तिलचट्टे पकड़ लाता और उन्हें तागे की लगाम डालकर कागज़ की स्लेज में बाँध देता। फिर "घोड़ों" की वह चौकड़ी खाने की मेज पर, जिसे रगड़-रगड़कर बहुत अच्छी तरह साफ किया गया होता था, दौड़ने लगती थी।

छोटी-सी लकड़ी से तिलचट्टों को हाँकते हुए इवान उत्तेजित आवाज़ में कहता : "यह बड़े पादरी साहब की चौकड़ी है। उन्हीं को लाने जा रही है।"

इसके बाद एक तिलचट्टे की पीठ पर कागज चिपकाकर उसे गाड़ी के पीछे दौड़ा देता और कहता :

"पादरी साहब का थैला घर पर ही छूट गया था। बेचारे चेले को वही लाने के लिए दौड़ाया गया है।"

इसके बाद एक और तिलचट्टे को लेकर वह उसके पैर बाँध देता, जिसकी वजह से वह सिर के बल घिसटकर चलने लगता था। खुशी से तालियाँ पीटकर वह घोषणा करता :

"और यह हैं छोटे पादरी साहब। बेचारे शाम की प्रार्थना के लिए शराबखाने से

चले जा रहे हैं।"

इवान को चूहे पालने का बड़ा शौक था। उन्हें वह तरह-तरह की कसरतें और खेल सिखाता था। तिलचट्टों के बाद अक्सर चूहों की कसरत शुरू हो जाती। एक चूहा पिछली टाँग पर खड़ा होकर आदमी की तरह चलने लगता, उसकी लम्बी दुम पीछे लोटती और गोल आँखें मसखरों की तरह मटमटाती होतीं। अपने चूहों को वह बहुत प्यार करता था। उन्हें अपनी छाती से चिपकाये रखता, अपने मुँह से उन्हें चीनी फँकाता और चूमकर बड़े इतमीनान से हम लोगों को समझाता था :

"चूहा बड़ा बुद्धिमान और नेक होता है। घर में जो बौने भूत रहते हैं, वे चूहों को बड़ा प्यार करते हैं। जो उनके चूहों को खाना देता है, उसे वे किसी तरह की तकलीफ नहीं देते..."

इवान ताश और पैसों के बहुत-से खेल जानता था। बच्चों के बीच वह बच्चों की तरह हिलमिल जाता था। उसकी किलकारी बेजोड़ थी। एक दिन ताश में उसे लगातार 'चोर' बनना पड़ा। आखिर में वह रोनी सूरत बनाकर भाग खड़ा हुआ। बाद में उसने नाक सुड़कते हुए मुझसे कहा :

"मैं सब कुछ जानता हूँ। वे लोग ईशारेबाजी कर रहे थे और मेज के नीचे चुपके से एक दूसरे को पत्ता थमा देते थे। ऐसा भी कहीं खेल होता है? धोखेबाजी में मैं खुद भी किसी से कम नहीं हूँ..."

उसकी उम्र 19 साल की थी, लेकिन उसका शरीर हम चारों भाइयों को मिलाकर भी इक्कीस पड़ता था।

छुट्टियों के दिन शाम को जब नाना और मिख़ाईल मामा लोगों से मिलने-मिलाने चले जाते थे, तब इवान का जौहर देखने को मिलता। घुँघराले, बिखरे बालों वाले याकोव मामा गिटार लेकर रसोईघर में आ जाते। नानी नाश्ते-पानी का इंतजाम कर देती। खाने के सामानों की कमी न होती। हरी बोतल में, जिसपर लाल फूल बने हुए थे, वोद्का ढाली जाती। इवान अपनी इतवारवाली पोशाक में लट्टू की तरह थिरकना शुरू कर देता। मिस्तरी ग्रिगोरी भी चुपके से कमरे में आ जाता। उसके काले चश्मे में रोशनी प्रतिबिम्बित होती रहती। हम लोगों की धाई येव्गेनिया भी आ धमकती। लाल चेचकरू चेहरे वाली येव्गेनिया घड़े की तरह गोल-मटोल थी, उसकी छोटी-छोटी आँखों में चालाकी झलकती थी और गले का स्वर गम्भीर मद्धिम था। कभी-कभी उस्पेंस्की गिरजाघर के अत्यधिक बालों वाले छोटे पादरी भी आ जाया करते थे। उनके अलावा कुछ और अजनबी लोग, जिन्हें देखकर मुझे न जाने क्यों तरह-तरह की मछलियों की याद आया करती थी, इस महफिल में शरीक हुआ करते थे।

हर आदमी खूब खाता, खूब पीता और रह-रहकर लम्बी साँसे छोड़ता। बच्चों को उपहार और हल्की मीठी शराब का एक-एक जाम भी दिया जाता। धीरे-धीरे पूरे मजमे पर उल्लास का रंग छा जाता। रसोईघर में हँसी-खुशी का हुड़दंग मच जाता।

याकोव मामा बड़े प्यार से अपने गिटार के कान ऐंठते और सुर ठीक हो जाने पर हमेशा यही कहते :

"अच्छा तो अब शुरू करता हूँ।"

गर्दन झटकाकर वह घुँघराले पट्टों को पेशानी के पीछे फेंक देते, गिटार पर झुकते और कलहंस की तरह गर्दन आगे बढ़ाकर तारों पर उँगलियाँ फेरने लगते। उनके गोल चेहरे पर उस वक़्त ग़म और फ़िक्र का नाम-निशान न रहता। उसकी जगह पूरी मुखाकृति पर एक स्वप्निल भाव फैल जाता। चंचल, सजीव आँखों पर कुहासा-सा छा जाता। तारों को धीरे-धीरे झनझनाते हुए वह कुछ ऐसी भावपूर्ण धुन बजाते, जिसे सुन हर कोई मगन हो शान्त खड़ा हो जाता।

उनका संगीत पूर्ण निस्तब्धता की पृष्ठभूमि में ऊँचाई से गिरनेवाले झरने की तरह प्रवाहित होता। वह फ़र्श और दीवारों को प्लावित कर देता। सब का दिल उदासी और बेचैनी से भर जाता। कलेजे में एक हूक-सी उठती-अपने लिए, सारी दुनिया के लिए। बड़े लोग भी मानो बच्चे हो जाते-निश्चल, निस्तब्ध, गहरी उदासी में डूबे, संगीत में तन्मय।

मिख़ाईल मामा का साशा ऐसे अवसरों पर खास तौर पर तल्लीन हो जाता। वह सुध-बुध खो देता, गिटार की ओर उसकी टकटकी बँध जाती, पूरी देह चाचा की ओर झुक जाती, मुँह खुल जाता और होठों के कोनों से लार की धारा बहने लगती। तन्मयता के आलम में वह कभी-कभी कुर्सी से भहरा पड़ता। मगर गिरने के बाद भी वह सँभल न पाता-उसी तरह फ़र्श पर मुँह बाये और आँखें खोले बैठा रह जाता।

सभी जादू में बँधे-से छककर संगीत-सुधा का पान करते। केवल मेज पर रखा समोवार ही गिटार की दर्दीली तानों में खलल डाले बिना सम स्वर से खद-बद करता रहता। रसोईघर की दोनों खिड़कियाँ पतझड़ की नीरव रात्रि के अँधेरे को एकटक निहारती होतीं। कभी-कभी कोई शीशे को धीरे-से थपथपा देता। मेज पर बरछी की अनी की तरह नुकीले सिरेवाली चर्बी की दो बत्तियाँ अपनी पीली लौ फेंक रही होतीं।

याकोव मामा अपने ही संगीत की सुधा में डूब जाते। ऐसा लगता कि उनके दाँत बैठ गये और गहरी नींद सो गये। केवल उँगलियाँ ही अपना जीवन जीती होतीं। दाहिने हाथ की उँगलियाँ तारों को झनझनातीं और बाँये हाथ की उँगलियाँ चिड़ियों की तरह गिटार की खूँटियों पर फुदकतीं।

दो-एक प्याली शराब पी लेने के बाद उनके मुँह से अप्रिय रुदन की लम्बी तान की तरह गीत फूट पड़ते थे;

जो कहीं याकोव नन्हा-सा पिल्ला
नींद हराम करता सबकी भौं भौं भौं चिल्ला
ओ मेरे देवता!

जी मेरा ऊबता!
भक्तिन कोई चली आती गली में पाँव-पाँव
कौआ कदम-कदम पर करता काँव-काँव,
जी मेरा ऊबता!
चूल्हे के पीछे झिल्ली झनकारे झी-झी,
तिलचट्टों के मारे प्राण हैं दुखी,
जी मेरा ऊबता!
पतलून सूखने डालकर ऊँघा कोई भिखमँगा
हुआ दूसरा लेकर चंपत!-क्या करे बिचारा नंगा!
जी मेरा ऊबता!
ओ प्यारे देवता!

मामा के गीत मेरे कलेजे को चीर देते! खासकर जब उन्होंने भिखमँगेवाली पँक्ति गायी, तो मेरी आँखों से झर-झर आँसू बहने लगे।

इवान भी संगीत में तल्लीन हो जाता। उसकी उँगलियाँ अपनी काली घुँघराली लटों में उलझी रहतीं, नज़र कमरे के किसी कोने में टिकी रहती और साँस ज़ोर-ज़ोर से चलती। कभी-कभी वेदनापूर्ण स्वर में वह चिल्ला उठता :

"ओफ़, अगर मैंने भी गला पाया होता, तो इसी तरह गाता!"

ऐसे वक़्त नानी निःश्वास छोड़कर कहती :

"याकोव, अब बस कर! कलेजा मथकर रख दिया तूने! इवान, अब तू नाच!"

नानी के कहते ही गाना रुक जाता हो, ऐसी बात न थी। मगर ऐसा भी होता कि गायक हथेली रखकर तारों की झँकार शान्त कर देता और फिर मुट्ठी बाँधकर एक बार ऐसे हाथ फेंकता, मानो कोई निःशब्द और निराकार वस्तु भूमि पर डाल दी हो और ज़ोर से चिल्ला उठता :

"बहुत हो चुका दर्दभरा गाना। अब ज़रा इवान का नाच हो जाये।"

इवान उठ खड़ा होता। एक बार नजाकत से अपने कपड़ों और काले बालों को सँवारता और तब अपनी पीली कमीज सीधी करके लचकीली चाल से कमरे के बीच आता। वह संकुचित स्वर में याकोव से कहता :

"भैया, ज़रा बाजा और तेज़ रखना।"

और यह कहकर लाज से लाल हो जाता।

इसके बाद नृत्य आरम्भ हो जाता। गिटार के तार ज़ोरों से झनझना उठते, एड़ियों की थिरकन आरम्भ हो जाती, मेज और आलमारियों में रखी रक़ाबियाँ खनखना उठतीं, और इवान कमरे के बीच बाजे की लय पर पंछी की तरह फुदकने लगता। उसकी बाँहें बाज़ के डैने की तरह डोलतीं और पाँव ऐसे थिरकते कि उनपर नज़र न टिक

पाती। घूमते-घूमते वह सहसा घुटनों के बल बैठ जाता और उसी आसन में एक बार लट्टू की तरह चारों ओर घूम जाता। रेशमी कमीज़ छतरी की तरह फूल जाती और तालमय नृत्य-प्रवाह से सारा कमरा थिरक उठता।

इवान अथक और आत्मविभोर होकर नाचता। ऐसा लगता था कि कमरे का दरवाज़ा खुल जाये, तो वह उसी तरह सड़क और पूरे शहर में नाचता हुआ न जाने कहाँ चला जायेगा...

"और!!" याकोव मामा अपने पैंरों से ताल देते हुए ज़ोर से चिल्लाते!

वह ज़ोर से सीटी बजाते और अपनी कर्कश आवाज़ में यह छन्द अलापने लगते :

घिस न जायें जूते कहीं, मैं इस डर से मौन
भगवान, मैं इस डर से मौन,
ऐसी जोरू छोड़के, भाग न जाये कौन?

सभी लोग इस गाने की लय-ताल के साथ झूमने और कुछ तो ऐसे चीखने-चिल्लाने भी लगते, मानो उन्हें चिनगारी छू गयी हो। दाढ़ीवाला मिस्तरी भी गंजे सिर पर उँगलियों से ताल देना शुरू कर देता। एक बार ऐसी ही अवस्था में उसने मुँह के पास मुँह लगाकर, दाढ़ी से मेरे कन्धों को बुहारते हुए अदब से कहा, मानो मैं बच्चा नहीं बड़ा आदमी हूँ :

"अलेक्सेई मक्सिमोविच! अगर इस वक़्त तुम्हारा बाप मौजूद होता, तो इस मजलिस में और जान डाल देता। बड़ी मस्त तबियत का आदमी था वह। उसकी याद है तुम्हें?"

"नहीं।"

"वह और तुम्हारी नानी, ये दोनों मिलकर मजलिस चमका दिया करते थे। अच्छा एक मिनट ठहरो..."

यह कहकर ग्रिगोरी खड़ा हो गया। लम्बा, दुबला-पतला वह देव-प्रतिमा की याद दिलाता था। आदरपूर्वक नानी के सामने झुककर उसने असाधारण रूप से गम्भीर आवाज़ में कहा :

"अकुलीना इवानोव्ना! हमपर कृपा करो, अब तुम्हारा एक नाच हो जाये! याद है, मक्सिम साव्वातेयेविच के साथ तुम किस तरह नाचा करती थीं? आज एक बार हम लोगों की खातिर भी!"

नानी उसका आवेदन सुनकर शरमा गयी। हँसते हुए बोली :

"ग्रिगोरी इवानोविच, तुम्हें भी क्या सूझी है? मेरा नाच? सब लोग हँसी उड़ायेंगे..."

सभी आग्रह करने लगे। यक़ायक़ वह युवती की तरह उछलकर खड़ी हो गयी, घाघरे का बल दुरुस्त कर उसने रीढ़ सीधी की और अपने बड़े-से सिर को पीछे की ओर तानकर चंचल जलधार की तरह कमरे में थिरक उठी। बोली :

"हाँ, तो याकोव! शुरू करो कोई धुन! हँसने दो हँसनेवालों को!"

याकोव मामा ने पीठ सीधी की और कुछ-कुछ आँखें मूँदकर बाजे पर एक धीमी धुन छेड़ दी। इवान एक क्षण के लिए रुका और फिर बाजे की ताल पर नानी के चारों ओर फुदकने लगा। नानी के पैर थिरक रहे थे, मानो हवा में उड़ रहे हों। फैली बाँहें अदा से घूम रही थीं, भौंहें तनी हुई थीं और काली-काली आँखें दूर किसी अज्ञात वस्तु पर टिकी हुई थीं। मुझे वह हास्यास्पद लगी और हँसी आ गयी। हँसी सुनकर सभी के लाल नेत्र एक क्षण के लिए मुझपर गड़ गये। ग्रिगोरी ने उँगली दिखाकर मुझे चेतावनी दी।

"इवान, एड़ियाँ बजाना बन्द करो।" मिस्तरी ने मुस्कुराते हुए इवान से बैठ जाने को कहा और वह फौरन दहलीज पर जा बैठा। अब धाई येव्गेनिया की बारी थी। वह मन्द, मधुर स्वर में गा उठी :

बाँकुरियाँ बुनती रही ललन हफ़्ते भर
जाना भी ना, कैसे आ गया सनीचर
कनगुरिया कम छँगना कँगना हो आया,
कुम्हलाया मुखड़ा, हा! कितना मुरझाया!

नानी नाच क्या रही थी, मानो कहानी कह रही थी। लीजिये, वह धीरे-धीरे बढ़ रही है, सोच में डूबी, डोलती और बगल से चारों ओर देखती हुई। उसका समूचा बड़ा शरीर अनिश्चय से झिझक रहा है, वह फूँक फूँककर क़दम रख रही है। यक़ायक़ कोई चीज़ सामने आ गयी और वह रुक गयी-चकित और भय-कम्पित। दूसरे ही क्षण मुद्रा बदल गयी-चेहरे पर प्यार भरी मुस्कान की आभा बिखर गयी और फुदककर वह एक ओर हो गयी, मानो किसी के लिए रास्ता छोड़ दिया हो। फिर नयी मुद्रा-मस्तक झुका हुआ, मानो कान लगाकर किसी का स्वर सुन रही है, मुखड़े पर आनन्द की ज्योति, इसके बाद थिरकना फिर आरम्भ, लट्टू की तरह। शरीर सीधा, मानो चपल यौवन फिर लौट आया हो और इतनी मनमोहक कि आँख हटाना असम्भव हो गया।

येव्गेनिया धाई का गीत सप्तम सुर में जारी था :

इतवार!-बजा गिरजे का घण्टा टन-टन!
पौ फटी!-नाचने लगे झूम छुम-छन-छन!
दिन भर दोनों थिरके, नाचे रजनी भर-
कितनी जल्दी आ गया सोम का वासर!

नाच खत्म हुआ और नानी समोवार की बगल में आ बैठी। सभी 'वाह','वाह' कर रहे थे और नानी संकोच से गड़ी जा रही थी। उलझे केशों को सँभालते हुए उसने कहा :

"बस बस, रहने दो! नाच वास्तव में किसे कहते हैं, यह तुम लोगों ने अभी देखा नहीं है। बालाख्ना में, जहाँ मेरा नैहर था, एक लड़की थी। मैं उसका और उसके माँ-बाप का नाम भूल गयी हूँ। लेकिन वह इतना बढ़िया नाचती थी कि दर्शकों के नयनों में खुशी के आँसू छलक आते थे। उसे नाचते देख लिया कि जश्न की खुशी मिल गयी, दिल में कोई चाह बाक़ी नहीं रह जाती थी। मैं पापिन उसका नाचना देखकर डाह से जल मरती थी।"

येव्गेनिया धाई ने बड़ी संजीदगी से टीका की :

"गाने और नाचनेवालों का दुनिया में सब से ऊँचा स्थान है!" और लगी राजा दाऊद का एक गीत गाने।

याकोव मामा ने इवान के कन्धों पर हाथ रखते हुए कहा :

"अगर तुम किसी मधुशाला में नाचते, तो लोगों को अपनी सुध-बुध न रहती!"

इवान ने शिकायत की :

"काश, मैं गा सकता! भगवान गला दे दे, तो मैं दस-साल बिना रुके गाता चला जाऊँगा, उसके बाद चाहे मठ में जाकर संन्यासी बन जाऊँ!"

हर आदमी वोद्का के दौर चलाता जा रहा था-खासकर ग्रिगोरी। नानी उसे जाम पर जाम देते हुए साथ ही चेताती भी जा रही थी :

"सँभलकर ग्रिगोरी, नहीं तो आँख बिल्कुल जाती रहेगी।"

ग्रिगोरी ने जवाब दिया :

"कोई हर्ज नहीं! दुनिया में सब कुछ देख चुका हूँ। अब आँखों की ज़रूरत ही क्या रह गयी है?"

वह नशे में धुत नहीं होता था, लेकिन ज़बान खुल जाती थी और मुझसे लगभग हमेशा मेरे पिता के बारे में ही बातें किया करता था।

"मेरे दोस्त बड़ा ही समझदार आदमी था मक्सिम साव्वातेयेविच..."

नानी ने भी सिर हिलाकर समर्थन करते हुए कहा :

"भगवान ने उसे अपने हाथों से गढ़ा था..."

मुझे यह सभी कुछ बड़ा दिलचस्प मालूम होता, मैं सभी कुछ जानने को बहुत उत्सुक रहता और इस पूरे वातावरण से हृदय पर एक प्रकार की शान्त और अमिट उदासी छा जाती। वास्तव में उदासी और उल्लास अभिन्न पड़ोसी की भाँति सबों के हृदय में निवास करते थे। कभी उदासी के बादल हठात् छँट जाते और आनन्द का सूरज चमकने लगता और कभी अचानक आनन्द छिप जाता और उसकी जगह उदासी भर जाती। यह विलक्षण क्रम रहस्यमय ढँग से चलता रहता था।

एक दिन याकोव मामा, जो बहुत नशे में नहीं थे, अपनी कमीज फाड़ने और अपने घुंघराले बालों, बदरंग मूँछों तथा नाक और लटकते होंठों को नोचने लगे।

आँखों से आँसुओं की अविरल धारा बह चली और लगे चिल्ला-चिल्लाकर कहने :

"यह भोग मुझी को भोगना बदा था क्या, भगवान!!"

सिसकियाँ भरते हुए वह अपने गाल, माथा और छाती पीटने और बोलने लगे :

"मैं पापी हूँ, नालायक़ हूँ, मेरे लिए नर्क में भी जगह नहीं है!"

ग्रिगोरी ने चिल्लाकर कहा :

"बिल्कुल ठीक! अब सूझी है!"

नानी ने, जो खुद भी थोड़े-से नशे में थी, बेटे का हाथ थामते हुए कहा :

"बस याकोव, बस! भगवान बड़ा ही दयालु है। वह सभी को सद्‌बुद्धि देता है।"

थोड़ी शराब पी लेने के बाद नानी और भी नेक हो जाती थी-हँसती हुई काली आँखों से प्यार की सुधा बरसने लगती, जो सभी को शराबोर कर देती। उष्णता से लाल हुए अपने चेहरे पर रुमाल से हवा करती हुई पतली, संगीतमय आवाज़ में वह कहने लगती :

"हे भगवान, सब कुछ कितना अच्छा है! देखो तो, यह सब कितना मनोहर है।"

यही थी नानी के अन्तस्तल की पुकार। यही था उसके जीवन का नारा।

अपने मस्त मामा का रोना-धोना देख मैं आश्चर्यचकित हो गया। नानी से मैंने उनके रोने और छाती पीटने का कारण पूछा।

"सभी कुछ जानना चाहता है तू तो! अभी कुछ दिन और सब्र कर। सभी चीज़ों में नाक घुसड़ने लायक अभी तेरी उम्र नहीं हुई है..." वह अन्यमनस्क-सी होकर बोली।

पर मेरा कुतूहल और भी बढ़ गया। मैंने कारखाने में जाकर इवान से भी यही सवाल किया। उसने भी हँसकर और मिस्तरी की ओर कनखियों से देखकर मेरा सवाल टाल दिया और गुस्से का दिखावा करके बोला :

"भागो यहाँ से, नहीं तो कड़ाहे में डालकर रँग दूँगा।"

मिस्तरी एक नीचे चूल्हे के पास खड़ा था, जिसपर तीन कड़ाहे चढ़ हुए थे। लम्बी-सी काली लकड़ी लेकर वह एक कड़ाहे में कुछ चला रहा था। बीच-बीच में रंग में डूबे एक कपड़े को वह उसी लकड़ी से ऊपर उठा रहा था और धीरे-धीरे उसमें से रंग निचुड़ जाने दे रहा था। चूल्हे की तेज़ आग का अक्स चमड़े के उसके पेशबन्द पर पड़ रहा था, जो तरह-तरह के रंगों से तर होने के कारण पादरियों के ज़रीदार चोंगे की तरह चमक रहा था। कड़ाहों में रंग का पानी बुद-बुद कर रहा था। उनसे कड़ुवा, गन्धयुक्त धुआँ दरवाज़े के बाहर होता हुआ आँगन में फैल रहा था, जहाँ जाड़े का रंग छाया हुआ था।

मिस्तरी ने चश्मे के नीचे से अपने लाल, जाला पड़े नेत्रों से मेरी ओर देखा। इवान की ओर मुड़कर वह रुखाई से बोला :

"देख रहा है, चूल्हे में लकड़ी नहीं है!"

इवान लकड़ी लाने चला गया, तो ग्रिगोरी ने चन्दन से भरे एक बोरे पर बैठकर कहा :

"यहाँ आओ।"

मुझे गोद में बैठाकर, अपनी मुलायम और गरम दाढ़ी मेरे गालों पर फेरते हुए उसने जो बातें बतायीं, उन्हें मैं कभी नहीं भूल सकूँगा। बोला :

"तुम्हारे मामा ने अपनी पत्नी को पीटते-पीटते मार डाला था। उसकी आत्मा अब उसे चैन नहीं लेने देती। समझ गये न? तुम्हें यह बातें जान लेनी चाहिए और होशियार रहना चाहिए, वरना अनर्थ हो सकता है।"

नानी की तरह ग्रिगोरी से बात करना आसान था, पर उसकी बातें बड़ी डरावनी होती थीं। ऐसा लगता कि उसे दिव्य-दृष्टि प्राप्त है-जब वह चश्मे के पीछे से अपनी आँखें घुमाता है, तो उससे कुछ भी छिपा नहीं रहता।

उसकी कहानी जारी रही।

"जानते हो, वह उसे मारता कैसे था? चारपाई पर उसे सिर से पाँव तक रज़ाई से ढँककर मुक्के, घूँसे और घुटनों से मारना शुरू करता था। हर रात यही होता था। एक दिन इसी में वह खत्म हो गयी। वह ऐसा क्यों करता था? यह तो शायद वह खुद भी नहीं जानता।"

इवान लकड़ी का गट्ठा लेकर आ गया और आग के पास हाथ सेंकने लगा, लेकिन ग्रिगोरी ने उधर ध्यान दिये बिना कहानी जारी रखी :

"सम्भवतः वह उससे ईर्ष्या करता था। वह बड़ी गुणवती स्त्री थी, इसी लिए उसने उसे मार डाला। काशीरिन ख़ानदानवालों की यही खुसूसियत है-वे किसी की अच्छाई बर्दाश्त नहीं कर सकते। वे उसके गुण से डाह करेंगे, पर यह नहीं होगा कि उसका अनुकरण करें। इसलिए वे उसे मिटा ही डालते हैं। अपनी नानी से पूछना कि किस तरह इन लोगों ने तुम्हारे बाप की जान ले ही ली थी। वह तुम्हें सारी बात बता देगी, क्योंकि वह झूठ बर्दास्त नहीं कर सकती और न इन लोगों के साथ है। तुम्हारी नानी, सच पूछो तो, महात्मा है, चाहे शराब भी पीती है और नसवार भी सूँघती है। फिर भी देवी जैसी है। तुम कसकर उसका दामन थामे रहना, बेटे..."

उसने मुझे गोद से उतार दिया। इस भयानक कहानी से मेरा खून सर्द हो गया और मैं चुपके से आँगन में निकल गया। ड्योढ़ी में दाखिल होने से पहले इवान मेरे पास आया और मेरे सिर पर हाथ रखकर फुसफुसाया :

"डरने की ज़रूरत नहीं है उससे। वह बड़ा भला आदमी है। आँख मिलाकर बातें किया करो उससे, क्योंकि उसे ऐसा करने वाले पसन्द हैं।"

यह सब कुछ बहुत अज़ीब था और मैं परेशान हो उठा। किसी दूसरे ढँग की ज़िन्दगी से अपरिचित था, पर मुझे धुँधली याद थी कि मेरे माँ-बाप का जीवन और किस तरह का था। उनकी बातचीत और उनके दिल-बहलाव का रवैया ही दूसरा

था। दोनों सदा साथ उठते-बैठते और साथ टहलने जाते थे, मानो कबूतरों का जोड़ा हों। शाम को दोनों घर में खिड़की के पास बैठकर गीत गाते और हँसी-दिल्लगी किया करते थे। अक्सर पड़ोसी बाहर खड़े होकर उनका गीत सुनने लगते थे। लोगों के ऊपर को उठे हुए चेहरे मुझे जूठी रक़ाबियों की याद दिलाते थे। लेकिन यहाँ का रंग कुछ और ही था। लोग बहुत कम हँसते थे और हमेशा यह भी स्पष्ट नहीं होता था कि वे किस बात पर हँस रहे हैं। यहाँ तो अक्सर एक दूसरे पर चीखते-चिल्लाते थे, धमकाते थे या कोनों में बैठकर फुसफुसाते थे बच्चे थे कि मौन, व्यक्तित्व शून्य, वर्षा द्वारा भूमि पर चिपकायी गयी धूली की तरह। मुझे लगता कि मैं इस घर में अजनबी हूँ। वातावरण हजार सुईयों की तरह देह में चुभा करता था। हर चीज़ सशंक और संदिग्ध मालूम होती थी-सदा चौकस-चौकन्ना रहना पड़ता था।

इवान के साथ मेरी गाढ़ी दोस्ती हो गयी। नानी भोर से बड़ी रात गये तक घर के कामों में व्यस्त रहती थी। मैं दिनभर इवान के पीछे लटकन बना घूमा करता था। नाना जब बेतों से मेरी खबर लेते थे, तो वह मेरी रक्षा करता था और दूसरे रोज़ अपनी सूजी उँगलियाँ दिखाकर कहता था :

"बेकार की कोशिश है। तुम्हारी चोट कम नहीं होती और मुफ़्त मेरी भी दुर्गति बन जाती है। अब यह आखिरी बार है। अब मार पड़ेगी तो मैं हाथ नहीं अड़ाऊँगा।"

लेकिन मार का वक़्त आता, तो वह अपनी बात भूल जाता और फिर मुझे बचाने की व्यर्थ कोशिश में अपनी दुर्गति करा बैठता। मैं पूछता :

"तुमने तो कहा था कि अबकि बार ऐसा नहीं करोगे?"

"चाहता तो नहीं था, फिर भी अपना हाथ अड़ा ही दिया...बस, अपने आप ही ऐसा हो गया..."

इसके कुछ ही दिन बाद इवान के बारे में मुझे और बातें मालूम हुई, जिनसे उसके प्रति मेरी श्रद्धा तथा दिलचस्पी और भी बढ़ गयी।

हर शुक्रवार को वह हफ़्ते भर का सामान लाने के लिए हाट जाया करता था। उस दिन ख़ासतौर से घर का चौड़ा स्लेज निकाला जाता था। इवान उसमें शराप को जोतता। शराप गहरे भूरे रंग का आख़्ता घोड़ा था, एक नम्बर का बदमाश। उसे मीठा बहुत पसन्द था और नानी उसे बहुत चाहती थी। इवान भेड़ की खाल का अपना छोटा कोट पहनता था हरे पटके से उसे कसकर बाँधता था और सिर पर बहुत बड़ी-सी टोपी पहनकर वह हाट को रवाना होता था। कभी-कभी उसके लौटने में बड़ी देर हो जाती थी। उस वक़्त सबों की बदहवासी देखते ही बनती थी। लोग बार-बार खिड़की पर जाकर झाँकते थे। खिड़की का शीशा पाले से जम जाता था। पर फूँकने से आर-पार देखने लायक जगह बन जाती थी। झाँकने वाले से कोई पूछता था :

"आ रहा है क्या?"

"नहीं, अभी नहीं!"

नानी सब से अधिक व्यग्र हो उठती थी। बेटों और पति की ओर मुखातिब होकर वह कहती :

"तुम लोगों के राज में किसी दिन एक भले आदमी और एक अच्छे घोड़े की जान जायेगी। तुम्हें न हया है, न ईश्वर का डर। जितना उसने दिया है, उससे सन्तोष नहीं। तुम लोगों जैसा लालची और बेअक़्ल ढूँढे नहीं मिलेगा। ईश्वर ने किसी दिन इसका दण्ड न दिया तो कहना!"

नाना त्योरी चढ़ाकर बुदबुदाने लगते थे :

"बस करो। बस यह आखिरी बार है।"

कभी-कभी इवान दोपहर को ही लौटता था। नाना और मामा लोग उसके स्वागत के लिए आँगन में दौड़ पड़ते। पीछे-पीछे होती नानी-ज़ोर-ज़ोर से नाक सुड़कती और नाचने वाले भालू की तरह डोलती-डगमगाती-सी। न जाने क्यों ऐसे अवसरों पर वह फूहड़ों जैसी हरकत करने लगती। बच्चे भी भागकर आ जाते। फिर भी स्लेज से सामान उतारने का आनन्दप्रद काम आरम्भ हो जाता। मुर्गे-मुर्गियाँ, बत्तखें और कलहंस, सुअर के पूरे के पूरे छौने, मछली, और मांस के तरह-तरह के टुकड़े। स्लेज उनसे लदा हुआ होता।

अपनी छोटी-छोटी तेज़ आँखों से स्लेज पर नज़र दौड़ाते हुए नाना कहते :

"जो-जो कहा था, सभी कुछ ले आये हो न?"

"सभी कुछ जो-जो कहा था," उल्लासित इवान आँगन में इधर से उधर उछलते तथा दस्ताना पहने अपने हाथों को रगड़ते हुए जवाब देता।

"दस्तानों को इस तरह मत रगड़ो। उन्हें खरीदने में पैसा लगता है," नाना डाँटते हुए कहते, और फिर पूछते, "पैसे कुछ बचे भी हैं?"

"नहीं।"

धीरे-धीरे स्लेज की परिक्रमा करते हुए नाना कहते :

"सामान तो मालूम होता है ढेर-सा लाये हो तुम। बिना पैंसा दिये तो नहीं खरीदा है कुछ? हाँ, मेरे घर में ऐसा काम नहीं होना चाहिए। समझ गये!"

यह कहकर मुँह बिचकाये, वह जल्दी-से वहाँ से टल जाते।

इसके बाद मामा लोग आनन्द से स्लेज पर जाते और मुर्गे-मुर्गियाँ, मछली, बछड़े की टाँग या मांस के अन्य बड़े-बड़े टुकड़े को हाथ से उठाकर उनका वजन अन्दाजने की कोशिश करते।

खुशी से सीटी बजाते और चिल्लाते हुए वे शाबाशी देते :

"वाह! क्या चुनकर सामान लिया है!"

मिख़ाईल मामा ऐसे अवसरों पर खास तौर से आनन्द-विभोर हो जाते। वह स्लेज के चारों तरफ इस तरह नाचने लगते, मानो उनके पैरों में स्प्रिंग लगे थे। नाक कठफोड़वे को चोंच की तरह लम्बी करके वह सारे सामान को सूँघते और चटखारे भरते जाते।

उनकी बेचैन आँखें आनन्दातिरेक से अधमुँदी हो जातीं। वह नाना की ही तरह दुबले-पतले और शक्ल-सूरत में भी उनसे मिलते-जुलते थे। फर्क इतना था कि उनका कद थोड़ा लम्बा था और बाल कोयलों की तरह काले थे। पाले से ठिठुरे हाथों को आस्तीन में घुसाते हुए वह पूछते :

"बुढ़ऊ ने कितने रूबल दिये थे?"

"पाँच।"

"पर सामान तो कम से कम पन्द्रह रूबल का होगा! तुमने खर्च कितने किये?"

"चार रूबल, दस कोपेक।"

"यानि, नब्बे कोपेक तुम्हारी जेब में हैं। सुन रहे हो, याकोव? पैसा बनाने का यह बढ़िया ढँग है!"

याकोव मामा केवल कमीज पहने पाले से जमे नीले आकाश की ओर आँखें झपकाते। हँसी की हल्की किलकारी भरते और धीमे स्वर में इवान से कहते :

"एक-एक अद्धा तो आज रहेगा न?"

नानी घोड़े का साज खोल डालती। साज खोलते वक़्त शराप को पुचकारती हुई कहती :

"मेरे बेटे! मेरे लाल! दुलरुआ! क्या है रे? खेलने का मन है? जा खेल! खेलने को भगवान भी नहीं मना करता!"

विशालकाय शराप अपने अयाल हिलाता, सफ़ेद दाँतों से नानी के कन्धे खुजलाता और उसका रेशमी रुमाल झटक लेता। उसकी आँखों में आनन्द होता और पपनियों से पाले की बूँदें झाड़ते हुए धीरे-से हिनहिनाने लगता।

"समझ गयी। रोटी चाहिए तुझे," कहते हुए नानी एक नमकीन डबलरोटी उसके मुँह में ठूँस देती, नीचे बोरी रख देती और उसका चबाना निहारने लगती।

इवान खुद भी बछड़े की तरह नटखट था। वह कहता :

"यह घोड़ा कमाल का है, नानी। ऐसा फुर्तीला जानवर नहीं देखा..."

"भाग यहाँ से! जानता नहीं कि आज के दिन तू मुझे ज़रा भी अच्छा नहीं लगता?" नानी ज़ोर से डाँटती।

नानी ने मुझे बतलाया कि इवान हाट जाता है, तो ख़रीददारी से ज्यादा चोरी करता है। कुछ देर चुप रहकर और फिर उदास होकर वह बोली :

"तेरे नाना उसे पाँच रूबल देते हैं, तो तीन खर्च करता है और दस का सामान दुकानदारों की नज़र बचाकर मार लाता है। दुष्ट को चोरी करने में आनन्द आता है। पहली बार चोरी की तो पकड़ में नहीं आया और घर पर सभी हँसने और शाबासी देने लगे। तभी से उसको बुरी आदत पड़ गयी है। तेरे नाना की जवानी इतनी गरीबी में बीती है कि बुढ़ापे में वह मक्खीचूस हो गये हैं। उन्हें पैसे अपने बेटों से भी ज्यादा प्यारे हैं। टेंट से पैसा निकाले बिना कुछ घर में आ जाये, तो उन्हें अच्छा

लगता है। रहे मिख़ाईल और याकोव...”

हाथ झटकाकर वह चुप हो गयी। फिर नास की डिबिया पर नज़र गड़ाकर बोली :

“यह तो अंधी बुढ़िया द्वारा तैयार किये गये लैसवाला मामला है, हम उसके नमूने को समझ ही कहाँ सकते है, लेकिन इवान की बड़ी दुर्गति लिखी है। एक बार पकड़ा गया, तो लोग पीटते-पीटते जान ही ले लेंगे...”

वह फिर चुप हो गयी और फिर धीमे-से बोली :

“ओह, नियम तो हमारे यहाँ बहुत-से हैं, लेकिन सचाई नहीं है...”

दूसरे दिन मैंने इवान से बड़े आग्रह से कहा :

“अब चोरी मत करना। लोग पीटते-पीटते जान ले लेंगे...”

“लोग मुझे पकड़ नहीं पायेंगे-मैं बेलाग भाग निकल भागूँगा। मैं एक नम्बर का चालाक हूँ और मेरा घोड़ा भी खूब तेज़ है,” उसने हँसते हुए कहा। पर दूसरे ही क्षण माथे पर बल पड़ गया और बोला :

“मैं जानता हूँ चोरी बुरी चीज़ है और खतरनाक भी, लेकिन मैं तो ऊब से बचने के लिए ऐसा करता हूँ। मेरे पास बचता भी कुछ नहीं। हफ़्ते भर के अन्दर जो बचता है, सब तुम्हारे दोनों मामा खींच लेते हैं। मैं उसकी परवाह भी नहीं करता-ले जायें वे ही सब पैसा। मेरे लिए तो यही काफी है कि पेट भरा रहे।”

यक़ायक़ उसने मुझे उठाकर प्यार से ऊपर उछाल दिया और बोला :

“तुम्हारा बदन दुबला और हल्का है, पर हड्डी खूब ठोस है। बड़े होने पर तगड़े जवान निकलोगे। तुम गिटार बजाना सीख लो। अपने मामा याकोव से कहना, सिखा देंगे। मुश्किल यह है कि अभी तुम्हारी उम्र बहुत कम है। बित्ते भर के छोकरे हो, पर मिजाज अभी से बुलन्द हैं। अच्छा बताओ, तुम्हारे नाना तुम्हें पसन्द आते हैं? नहीं न?”

“मालूम नहीं।”

“इस पूरे काशीरिन ख़ानदान में बुढ़िया को छोड़, मुझे कोई पसन्द नहीं। इन लोगों को शैतान ही चाह सकता है।”

“और मुझे?”

“तुम काशीरिन नहीं हो। तुम तो पेशकोव हो। वह दूसरा ही खून हुआ। अलग ख़ानदान...”

यक़ायक़ उसने मुझे ज़ोरों से चिमटा लिया और व्याथाभरे स्वर में बोला :

“हे भगवान! काश कहीं मुझे गाना आता! मैं अपने गीतों से लोगों का कलेजा छलनी कर देता! अच्छा, अब जाओ यहाँ से! बहुत-सा काम है...”

मुझे ज़मीन पर उतारकर उसने एक मुट्ठी कीलें मुँह में डाल ली और लकड़ी के एक वर्गाकार तख्ते पर कुछ भीगे काले कपड़ों को गाड़ने लगा।

थोड़े ही दिनों बाद इवान इस दुनिया से चल बसा।

बात यों हुई : आँगन में फाटक के पास, चाहरदीवारी से टिकाकर बलूत की एक विशाल सलीब रखी हुई थी, जिसका निचला सिरा खूब मोटा था। बहुत दिनों से वह पड़ी हुई थी वहाँ। यहाँ आने के पहले दिन ही इसकी तरफ मेरा ध्यान गया था। उस वक़्त वह नयी और पीले रंग की थी। लेकिन पतझर के महीनों में वर्षा से उसका रंग काला पड़ चुका था। उसमें से बलूत की तीखी गन्ध आती थी। उस छोटे-से आँगन में, जो यों ही कूड़े-कबाड़ से भरा पड़ा था, उस सलीब के कारण बड़ी असुविधा होती थी।

याकोव मामा उसे अपनी पत्नी की क़ब्र पर गाड़ने के लिए लाये थे। उन्होंने शपथ ली थी कि पहली बरसी के दिन उसे खुद उठाकर क़ब्रिस्तान ले जायेंगे।

बरसी, जाड़े के आरम्भ में, शनिवार के दिन पड़ी। उस दिन बड़ी ठण्ड थी। खूब हवा चल रही थी और बर्फ़ उड़-उड़कर छत से नीचे गिर रही थी। नानी, नाना और तीनों पोते पहले ही गाड़ी से क़ब्रिस्तान चले गये थे, जहाँ बरसी मनायी जानेवाली थी। बाकी लोग आँगन में थे। मुझे किसी क़सूर की वजह से घर ही पर छोड़ दिया गया था।

दोनों मामाओं ने, जो एक ही तरह के भेड़ की खाल के कोट पहने हुए थे, सलीब के ऊपरी सिरे को उठाया। उसकी एक बाँह याकोव के और दूसरी मिख़ाईल के कन्धे पर रखी गयी। ग्रिगोरी तथा एक अज़नबी आदमी ने उसका निचला मोटा हिस्सा, जो बेहद भारी था, बड़ी मुश्किल से उठाकर इवान के चौड़े कन्धे पर रख दिया। इवान लड़खड़ा गया, पर दोनों टाँगों को जमाकर उसने अपने को सँभाल लिया।

"ले जायेगा?" ग्रिगोरी ने पूछा।

"कह नहीं सकता। बड़ी भारी है।"

मिख़ाईल मामा ग्रिगोरी पर बरस पड़े। डाँटकर बोले :

"अबे अंधे! फाटक तो खोल जल्दी से। शैतान कहीं का।"

याकोव मामा बोले :

"इवान, तुम्हें शर्म आनी चाहिए। देखो, हम दोनों ही तुमसे दुबले-पतले हैं।"

लेकिन ग्रिगोरी ने फाटक खोलते हुए इवान को फिर चेताया :

"सँभलकर जाना, भाई! ज्यादा ज़ोर न पड़ जाये। भगवान मदद करे!"

सड़क पर मिख़ाईल मामा फिर बिगड़े :

"गंजा उल्लू कहीं का! क़मबख़्त!"

सलीब बाहर निकल गयी और आँगन में खड़े सभी लोग हँसने तथा ज़ोर-ज़ोर से बातें करने लगे, मानो सलीब हट जाने से भारी बोझ हल्का हो गया।

ग्रिगोरी इवानोविच हाथ पकड़कर मुझे कारखाने में ले गया और बोला :

"हो सकता है कि आज नाना तुम्हें बेंत न मारें। वह बहुत खुश दीखते थे..."

ऊन के एक ढेर पर, जो रँगाई के लिए रखा था, मुझे बैठाकर उसने मुझे उसी

में लपेट दिया और तब कड़ाहों में से आती हुई भाप को सूँघते हुए उसने एकाग्रचित होकर कहना शुरू किया :

"बेटे! तुम्हारे नाना को मैं सैंतीस वर्ष से जानता हूँ। जब यह कारोबार शुरू हुआ था, उसी वक़्त मैंने उसे देखा था और अब इसका खात्मा भी देख रहा हूँ। मैं और तुम्हारे नाना बड़े दोस्त थे। दोनों ने मिलकर यह धन्धा शुरू किया था। बल्कि मिलकर ही इस कारोबार की योजना बनायी थी। तुम्हारे नाना बड़े चलते पुरज़े हैं। वह कारखाने के मालिक बन बैठे और मैं जैसा था, वैसा ही रह गया। पर भगवान हम सब से ज्यादा चलता पुरजा है। उसकी एक मुस्कान पर बड़े-बड़े होशियार भी मूर्ख की तरह आँख झपकाते रह जाते हैं। तुम्हें अभी दुनिया का दस्तूर नहीं मालूम है, लेकिन उसे जान लेना ही उचित है, क्योंकि बे-बाप के लड़के की ज़िन्दगी आसान नहीं है। तुम्हारा बाप मक्सिम साव्वातेयेविच हीरा आदमी था। वह सब कुछ समझता था, इसी लिए तुम्हारे नाना उसे नहीं चाहते थे और उन्होंने बराबर उससे दूर ही का सरोकार रखा..."

बूढ़े के प्यार भरे शब्द मुझे अच्छे लग रहे थे। आग की लाल, सुनहली लपटें चूल्हे में थिरक रही थीं और कड़ाहों में से दूधिया रंग की भाप बादल की तरह उड़कर ढालू छप्पर के लकड़ी के पटरों पर पाले की तरह जम रही थी। बीच की टेढ़ी-मेढ़ी सेंध से फीते की तरह नीले आसमान का एक टुकड़ा दृष्टिगोचर हो रहा था। हवा रुक गयी थी। कहीं सूरज चमक रहा था और आँगन में ऐसा मालूम हो रहा था, मानो बारीक पिसा हुआ शीशा बिखेर दिया हो। सड़क पर स्लेजों के दौड़ने की कर्र-कर्र की आवाज़ आ रही थी। पड़ोस के मकानों की चिमनियों से चक्कर काटता हुआ धुआँ आकाश में उठ रहा था। बर्फ़ पर हल्की परछाइयाँ तैर रही थीं, मानो वे भी अपनी कहानी कह रही हों।

लम्बा, सूखा ग्रिगोरी उबलते हुए रंगों को कड़ाहे में चलाते हुए मुझे उपदेश देता जा रहा था। लम्बी दाढ़ी और बड़े-बड़े कानों की वजह से वह जैसे कहानियों का नेकदिल जादूगर लगता था।

"हमेशा नज़र मिलाकर लोगों से बात करो। आँखें चार करने से तुम पर झपटनेवाला कुत्ता भी ठिठककर रह जाता है..."

भारी चश्मा उसकी नाक के सिरे पर बैठा हुआ था, जिससे नानी की तरह उसकी नाक का सिरा भी नीला पड़ गया था।

"क्या मामला है?" कहकर वह हठात् रुक गया। कान लगाकर दो क्षण बाहर की आवाज़ सुनने के बाद उसने पैरों के झटके से चूल्हे के मुँह पर तवा गिरा दिया और भागकर आँगन के पार हो गया। मैं भी पीछे दौड़ा।

इवान रसोईघर के फ़र्श के बीचों-बीच चित पड़ा था। खिड़की से रोशनी की दो मोटी किरणें कमरे में आ रही थीं। एक इवान के सिर और छाती पर और दूसरी

उसके पैरों पर प्रकाश फेंक रही थी। उसके माथे पर विलक्षण आभा थी। भौंहें तनी हुई थीं। कमान जैसी आँखें कालिख लगी छत को घूर रही थीं। काले होंठ ज़रा-ज़रा काँप रहे थे। उनसे गुलाबी फेन बह रहा था। मुँह के कोनों से रक्त की एक पतली धारा गालों और गर्दन पर होती हुई फ़र्श पर ढुलक रही थीं। देह के नीचे फफककर खून निकल रहा था। टाँगे ज़मीन पर अशक्त, लम्बी पड़ी थीं। चौड़ा पतलून ज़मीन से सटा हुआ था। साफ जाहिर हो रहा था कि वह खून से तर है। बालू से रगड़कर साफ किया गया फ़र्श सूरज की रोशनी में चमक रहा था। खून के छोटे-छोटे सोते प्रकाश-रेखाओं को चीरते और फ़र्श को रँगते हुए दरवाज़े की ओर बह रहे थे।

इवान निश्चल पड़ा था। केवल फैले हुए हाथों की उँगलियाँ फ़र्श को खुरच रही थीं। रंग से दगीले उसके नाखून सूरज की रोशनी में चमक रहे थे।

येव्गेनिया धाई ने बगल में बैठकर उसके हाथ में मोमबत्ती रखनी चाही, पर वह पकड़ न सका। मोमबत्ती ज़मीन पर गिर पड़ी और उसकी लौ खून में बुझ गयी। धाई न उसे उठाकर पोंछा और फिर उसकी बेचैन उँगलियों में उसे पकड़ाना चाहा। रसोईघर में उत्तेजना का अवरुद्ध वातावरण छाया हुआ था, जिसने अंधड़ की तरह ठेलकर मुझे दरवाज़े के बाहर कर दिया, पर मैंने कसकर चौखट थाम ली।

याकोव मामा सिर हिलाते हुए सूखे गले से बोले :

"ठोकर खा गया।"

वह खुद भी बदहवास हो रहे थे-चेहरा मुरझाया हुआ और फक था और लगातार अपनी धुँधलायी हुई आँखें झपका रहे थे। बोले :

"वह गिर पड़ा और लकड़ी पीठ पर गिर पड़ी। अगर हम भी झट से सलीब न फेंक देते, तो हम भी कुचल जाते।"

"मतलब यह कि तुम्हीं लोगों ने उसे कुचल दिया," ग्रिगोरी ने भर्रायी आवाज़ में कहा।

याकोव ने जवाब दिया :

"हमने-वह कैसे..."

"हाँ, तुम्हीं लोगों ने!"

खून की धारा बहती ही जा रही थी-अविरल, अविराम। दरवाज़े के पास एक छोटा-सा गढ़ा था, जो लबालब हो चुका था। उसकी सतह धीरे-धीरे और ऊँची होती जा रही थी। इवान बेहोशी में कुछ बड़बड़ा रहा था। मुँह से गुलाबी फेन निकलना जारी था और शरीर मानो शनैः-शनैः गलता जा रहा था, जैसे धीरे-धीरे चपटा होता हुआ धरती के साथ एकाकार हो रहा हो।

याकोव मामा ने अस्फुट स्वर में कहा :

"मिख़ाईल घोड़ा लेकर पिताजी को लाने गिरजाघर चला गया और मैं जल्दी से उसे गाड़ी में लादकर यहाँ ले आया... नसीब अच्छा था कि मैं निचले, भारी भाग की

ओर नहीं था, नहीं तो यही हाल मेरा होता!"

धाई ने एक बार फिर इवान के हाथ पर मोमबत्ती रख दी। आँसू और मोम की बूँदें उसकी हथेलियों पर टपक पड़ीं।

ग्रिगोरी ने रुखाई से कहा :

"बेढँगी हो तुम तो! मोमबत्ती उसके सिर की बगल में रखनी चाहिए।"

"हाँ," वह बोली।

"टोपी उतार लो सिर से!"

धाई ने टोपी खींच ली और इवान का सिर हल्की-सी खट के साथ फ़र्श पर आ टिका। सिर एक तरफ हो जाने से मुँह से खून और तेज़ी से गिरने लगा, मगर केवल एक कोने से। न जाने कितनी देर यह क्रम चलता रहा-भयावह, खून सर्द कर देनेवाला। पहले मैंने सोचा था कि इवान थोड़ी देर आराम करने के बाद उठ बैठेगा और अपनी आदत के मुताबिक कहेगा :

"ओफ़! कैसी गर्मी है..."

इतवार के दिन भोजन के बाद झपकी लेकर उठने पर वह ऐसा ही किया करता था। पर आज वह पड़ा ही रहा-तिल-तिल कर गलता हुआ, मिटता हुआ। सूरज पश्चिम की ओर बढ़ चला था। किरण-रेखाएँ छोटी होकर केवल खिड़कियों तक रह गयीं। इवान का मुँह और हाथ काले पड़ गये। उँगलियों का कम्पन खत्म हो गया। और मुँह से झाग आना भी बन्द हो गया। उसके सिर के गिर्द तीन मोमबत्तियाँ रख दी गयी थीं। उनकी सुनहली लौ में उसके काले बाल, नाक का उठा कोना और खून से दगीले दाँत दिखाई पड़ रहे थे। प्रकाश की काँपती छाया उसके धूमिल कपोलों के साथ खेल रही थी।

धाई बगल में बैठी बिसूर रही थी।

"मेरे लाल! आँखों का तारा! तू सभी के मन का मोती था," वह आप ही आप बक रही थी।

वातावरण सर्द और डरावना था। मैं मेज के नीचे जा छिपा। बाद को नाना अपना बालदार कोट पहने, धड़धड़ाते हुए पहुँचे। पीछे-पीछे कालरों पर छोटी-छोटी पूँछें लगा बड़ा कोट पहने नानी, मिख़ाईल मामा, बच्चे और बहुत-से दूसरे लोग भी आये।

फ़र्श पर अपना कोट फेंककर नाना चिल्लाये :

"मार डाला हरामजादों ने लड़के को। कितना काबिल था! पाँच साल में सोना हो जाता, सोना!"

फ़र्श पर पड़े कपड़ों ने इवान को आड़ में कर लिया। मैंने चाहा, दूसरी तरफ हो जाऊँ। बस नाना के सामने आ गया। उन्होंने मुझे एक लात लगाकर किनारे कर दिया और अपनी छोटी-सी लाल मुट्ठी दिखाकर मामा लोगों को धमकाते रहे :

"तुम लोग भेड़िये हो, भेड़िये!"

यह कहते हुए वह भहराकर बेंच पर बैठ गये। उसे ज़ोर से पकड़कर वह पतली रोनी आवाज़ में कहने लगे :

"मैं जानता था, वह तुम सबकी आँखों का काँटा है... पर इवान! तू कैसा बेवकूफ निकला? अब हम क्या करें? मैं पूछता हूँ, अब हम क्या करें? घोड़ा बूढ़ा है और साज भी बिक गया... वर्वारा की माँ! लगता है भगवान रुठ गये हैं हम लोगों पर! बोलो न, वर्वारा की माँ! क्या कहती हो?"

नानी आते ही इवान की बगल में ज़मीन पर बैठ गयी थी और उँगलियों से बार-बार उसका चेहरा, केश और छाती टटोल रही थी। वह उसकी आँखों में फूँकती थी और उसके हाथों को उठाकर मलती थी। मोमबत्तियाँ उसकी हरकत से नीचे गिर पड़ी थीं। अन्ततः वह ज़ोर लगाकर उठ खड़ी हुई-चमकती, काली पोशाक में एक विशाल, काली प्रतिमा की तरह। काली आँखों को डरावने ढँग से नचाते हुए उसने कहा :

"निकल जाओ यहाँ से, अभागो!"

नाना को छोड़ सभी छूमन्तर हो गये।

...इवान को चुपचाप दफना दिया गया।

4

मैं एक चौड़े-से पलँग पर, बड़ी रजाई में कई तह लिपटा हुआ लेटा था और नानी की प्रार्थना को सुन रहा था। वह घुटनों के बल बैठी हुई थी। एक हाथ छाती पर था और दूसरे से वह बीच-बीच में सलीब का निशान बनाती थी।

अहाते में पाले के कड़कने की आवाज़ सुनाई पड़ रही थी। शीशे पर जमे पाले से चित्र बने हुए थे। चित्रों के बीच से हरापन लिये चाँदनी झाँक रही थी। किरणों से नानी का बड़ी नाकवाला दयालु चेहरा और काली आँखें चमक रही थीं। उसके मस्तक और केश रेशमी कपड़े से ढके हुए थे। चाँदनी के धीमे प्रकाश में कपड़ा धातु की तरह दमक रहा था। नानी की काली पोशाक कन्धों से झूलती हुई चारों तरफ ज़मीन पर लोट रही थी।

प्रार्थना खत्म करके उसने कपड़े उतारे, ढँग से तह करके उन्हें कोने में पड़े सन्दूक पर रख दिया और तब वह पलँग पर आयी। मैं ऐसे पड़ा रहा मानो गहरी नींद में हूँ।

"नटखट कहीं का! मुझी से दिल्लगी!" वह प्यार से बोली। "लाल दुलारे! मैं जानती हूँ तू सोया नहीं है। ज़रा मुझे भी रजाई दे।"

मैं जानता था आगे क्या होगा। अतः चेहरे पर बरबस मुस्कुराहट आ गयी। वह बोली :

"अच्छा! बूढ़ी नानी से ही मज़ाक! ठहर!"

उसने रजाई का कोना पकड़कर इतनी फुर्ती और ज़ोर से खींचा कि मैं हवा में उछल गया और कलैया खाता हुआ धम से पंखदार तोशक पर गिरा। नानी 'हो-हो' कर हँसने लगी।

"क्यों, कैसी रही नटखट? आयी अक़्ल ठिकाने?"

कभी-कभी वह बहुत देर तक प्रार्थना करती रहती, मैं सचमुच ही सो जाता और मुझे उसके पलँग पर आने का पता न चलता।

जिस दिन घर में लड़ाई-झगड़ा होता, उसी दिन प्रार्थना ज्यादा लम्बी होती। नानी दिन भर की घटनाओं की पूरी सूची ही प्रभु के सामने पेश कर देती। घुटनों के बल बैठी हुई विशालकाय नानी तेज़ अस्फुट स्वर में प्रार्थना आरम्भ करती। पर धीरे-धीरे स्वर गम्भीर शिकायत का रूप धारण कर लेता। जैसे :

"प्रभु तू स्वयं जानता है कि सभी अपना ही लाभ खोजते हैं। मिख़ाईल बड़ा है, उसी को शहर में रहना चाहिए। नदी पार की जगह नयी है, कोई नहीं जानता कि वहाँ धन्धा चलेगा कि नहीं। सब से बड़े को वहाँ भेज देना बेइंसाफी होगी, लेकिन बाबू याकोव को अधिक चाहते हैं। बेटों को दो नज़र से देखना क्या उचित है? पर बूढ़ा हठी है। प्रभु, तू उसे थोड़ी अक़्ल दे दे न!"

काली प्रतिमाओं पर अपनी विशाल, आभायुक्त आँखें एकटक जमाये हुए वह अपने प्रभु को सलाह देती :

"प्रभु, किसी रोज़ सपने में उन्हें जायदाद बाँटने का उपाय सुझा दो।"

इसके बाद छाती पर सलीब का चिह्न बनाकर वह अपना चौड़ा मस्तक ज़मीन पर बिछे कालीन से छुआती और फिर सीधी होकर वैसे ही सुझाव देते हुए बोलना आरम्भ करती :

"और खुशी की दो बूँदें तू वर्वारा के लिए भी भेज। उसने कौन सा कसूर किया है, प्रभु, कि तू उसपर इतना नाराज़ हो गया है? क्या वह दूसरों से बुरी है? अभी वह जवान है, हट्टी-कट्टी है, उसे इतने कष्ट में मत रख! और ग्रिगोरी की आँखों का ख्याल रखना, प्रभु! दिनोंदिन उसकी रोशनी मन्द होती जा रही है। एक आँख जाती रही, तो बेचारा दर-दर का भिखारी हो जायेगा। यह क्या अच्छा लगेगा, प्रभु? बाबू के कारोबार में ही उसने अपनी सारी ज़िन्दगी गुजार दी है... लेकिन वह क्या उसकी मदद करेंगे! हरगिज नहीं। ओ प्रभु... ईश्वर!.."

छाती पर सर झुकाये, बाँहों को लटकाये वह बहुत देर तक मौन रहती, मानो उसे नींद आ गयी हो।

अन्त में भौंहों पर बल डालकर कहती :

"बस। अपने भक्तों पर कृपा कर और मुझे क्षमा कर। तू भलीभाँति जानता है, मैं मूर्ख और अभागिन हूँ; मेरा मन पापी नहीं है, पर अज्ञान मुझसे अपराध कराता है।"

इसके बाद लम्बी साँस लेती और आनन्दपूर्ण तुष्टि के साथ कहती :

"लेकिन तुझसे यह सब कहना ही बेकार है। तू तो आप ही सारी बातें जानता है और सब कुछ समझता है।"

नानी का प्रभु मुझे बड़ा अच्छा लगता था, क्योंकि उसमें बड़ी आत्मीयता थी। अक्सर मैं कहता था :

"मुझे प्रभु के बारे में बताओ।"

वह अपने प्रभु की चर्चा खास ही ढँग से करती। वह बैठ जाती। आँखें बन्द कर लेती और मीठे स्वर में, शब्दों को विचित्र रूप से तौलते हुए बोलती। प्रभु की प्रशंसा सुनाने का उसका वह ढँग मुझे आज भी याद है। सिर के ऊपर रुमाल डालकर तन्मयता से वह मेरी आँख लगने तक कहती जाती :

"स्वर्ग के एक पहाड़ पर भगवान का आसन है। उसके चारों ओर फूलों का स्वर्गिक बाग है। उनका नीलमणि का सिंहासन रुपहले लाइम वृक्षों के नीचे टिका हुआ है। उन वृक्षों में सदा फूल लगे रहते हैं, क्योंकि स्वर्ग-लोक में शरद या पतझड़ नहीं हुआ करती। बारहों महीने फूल खिले रहते हैं और सन्त-महात्माओं का मन उत्फुल्ल करते रहते हैं। बर्फ़ के गालों, ढेरों मधु-मक्खियों या धवल कपोतों के उड़ते समूह की भाँति चारों ओर से फरिश्ते भगवान को घेरे रहते हैं। वे निरन्तर स्वर्ग-लोक से धरती और धरती से स्वर्ग-लोक की ओर उड़ा करते हैं और उन्हें हम प्राणियों की सारी खबर पहुँचाते हैं। सभी प्राणियों का अपना अलग-अलग फरिश्ता होता है-तेरा अलग, मेरा अलग और तेरे नाना का अलग, क्योंकि भगवान अपने सभी जीवों के लिए समान हैं। तेरा फरिश्ता उड़कर प्रभु को खबर देता है : 'अलेक्सेई ने आज अपने नाना को मुँह चिढ़ाया है,' और वह फौरन आज्ञा देते हैं, 'अच्छा तो आज बुड्ढा अलेक्सेई को बेंत लगायेगा।' इसी तरह सभी आदमियों का, सभी चीज़ों का फ़ैसला होता रहता है। जिसकी जैसी करनी वैसी भरनी। किसी को दुःख, किसी को सुख। सारी व्यवस्था ऐसी खूबसूरती से चलती है कि फ़रिश्ते आनन्द से अपने डैने फड़फड़ाते हैं और गीत गाते जाते हैं, 'प्रभु, तेरी महिमा अपरम्पार है।' और प्रभु मुस्कुराते जाते हैं, मानो कह रहे हों, 'मेरे प्यारे बच्चो, नाचो खुशी से।'"

और नानी खुद मुस्कुराने और सिर हिलाने लगती थी। मैं पूछता :

"तुमने यह सब देखा है?"

"मैंने देखा नहीं है। पर जानती हूँ," विचार मग्न होकर वह जवाब देती।

ईश्वर, स्वर्ग और फ़रिश्तों की चर्चा करते समय वह छोटी-सी और विनम्र हो जाती, मुखाकृति से बुढ़ापे के चिह्न गायब हो जाते और नम आँखों से मधुर ज्योति

प्रवाहित होने लगती। मैं उसकी रेशम-सी मुलायम भारी लटों को अपनी गर्दन में लपेटकर विमुग्ध और निश्चल पड़ा रहता था। जादूभरी इन कहानियों को कितनी बार भी क्यों न सुनता, तृप्ति न होती। वह कहती जाती।

"मनुष्य भगवान को नहीं देख सकता, देखे तो अंधा हो जाये। केवल सन्त लोग भर नज़र उसे देख सकते हैं। पर फ़रिश्तों को मैंने देखा है। आदमी का हृदय स्वच्छ रहे, तो फरिश्ते दिखाई पड़ने लगते हैं। एक बार प्रार्थना के वक़्त मैं गिरजाघर में थी। देखती क्या हूँ कि वेदी पर दो फ़रिश्ते खड़े हैं। दोनों कुहासे की तरह थे, ऐसे कि आर-पार देख ले। चमक उनमें ऐसी थी कि नज़र न ठहरे। दोनों के जालीदार पंख ज़मीन तक लटक रहे थे। वेदी के पास कभी इधर कभी उधर घूमकर वे बूढ़े पादरी इल्या की मदद कर रहे थे। पादरी जब प्रार्थना के लिए अपने कमज़ोर हाथों को उठाते थे, तो वे दोनों तरफ से उनकी कुहनियों के नीचे टेक लगा देते थे। पादरी इल्या बहुत बूढ़े थे, आँखों की ज्योति मन्द थी, चलते हुए लड़खड़ाने लगते थे। इसके कुछ ही दिन बाद वे स्वर्ग सिधार गये। दोनों को देखकर मेरा कलेजा बाँसों उछलने लगा। आँखों से अविरल आँसू बह चले। सच, वह दृश्य ही वर्णनातीत है। भगवान के स्वर्ग में सभी चीज़ें कमाल की हैं और उसी तरह धरती की भी!"

"क्या हमारे घर की हर चीज़ भी कमाल की है?"

"हाँ, हर चीज़, हर जगह। धन्य है माँ मरियम," नानी ने सलीब का निशान बनाते हुए जवाब दिया।

इस उत्तर ने मुझे हैरानी में डाल दिया। इस घर की भी सभी चीज़ें अनूठी हैं, यह विश्वास कर लेना कठिन था, खासकर जब कि वैमनस्य का विषाक्त वातावरण बढ़ता ही जा रहा था।

मुझे याद है, एक दिन मिख़ाईल मामा के कमरे का दरवाज़ा खुला था। मैं उधर से गुज़रा, तो मेरी नज़र नताल्या मामी पर पड़ी, जो सिर से पैर तक सफेद पोशाक पहने थी और छाती पर एक हाथ रखे इधर से उधर दौड़ती हुई बड़ी डरावनी तथा मन्द आवाज़ में रो-रोकर कह रही थी :

"हे भगवान, मुझे उठा ले! किसी तरह मुझे यहाँ से उबार।"

उसका दुःख समझने में मुझे कठिनाई नहीं हुई। इस तरह ग्रिगोरी की वेदना भी आसानी से मेरी समझ में आ जाती थी, जब वह बुदबुदाकर कहता था :

"अंधा होने पर दर-दर की भीख माँगता फिरूँगा और इस जीवन से तो वही बेहतर होगा..."

मैं चाहता था कि वह जल्दी से ही अंधा हो जाये। तब मैं उसका हाथ थामकर शहर में घुमाऊँगा और हम दोनों भीख माँगकर जीवन का गुजारा करेंगे। एक दिन मैंने अपने मन की बात उसे बता भी दी। दाढ़ी में ज़रा मुस्कुरा वह बोला :

"बिल्कुल ठीक, दोनों साथ निकलेंगे। मैं शहर में सब को सुनाकर कहूँगा-यह

रँगरेजी के कारखाने के मालिक वासीली काशीरिन का नाती है। लोगों को खूब मजा आयेगा...”

नताल्या मामी के होंठ अक्सर सूजे रहा करते थे तथा उसके पीले चेहरे पर भावशून्य आँखों के नीचे नीले दाग दिखाई दिया करते थे।

मैंने नानी से पूछा :

“मामा उसे मारते हैं क्या?”

“हाँ! चुपके-चुपके वह उसे मारता है। दुष्ट कहीं का। तेरे नाना बिगड़ते हैं, इसलिए रात को यह काम करता है। बड़ा गुस्सैल है वह। और तुम्हारी मामी है एकदम दब्बू...”

इसके बाद उत्साह से सुनाने लगती।

“लेकिन अब पहले जैसी मार नहीं पड़ती। अब तो कभी मुँह पर एक थप्पड़ जड़ दिया या गाल पर कनचप्पड़ जमा दिया, या झोंटा पकड़कर दो-चार बार झकझोर दिया। पहले की बात और ही थी। मार पड़ती, तो पूरी दुर्गति बना दी जाती थी। एक बार ईस्टर के पहले दिन तेरे नाना ने मुझे सबेरे पीटना शुरू किया और शाम तक कोड़ा या जो कुछ भी हाथ में आ जाता था, उसी से मारते थे, फिर थोड़ी देर सुस्ताते थे और सुस्ताकर फिर मारना शुरू करते थे। सूर्यास्त तक यही क्रम चलता रहा।”

“क्यों इतना मारा था?”

“अब याद नहीं है। एक बार मारते-मारते मुझे अधमरा कर दिया और इसके बाद पाँच दिन तक खाना भी नहीं दिया। उस दफा तो मैं मरते-मरते बची। फिर एक बार...”

इस तरह की बातों से मेरी हैरानी का ठिकाना न रहता था। नानी नाना से दुगुनी थीं। नाना उन्हें किस तरह मार पाते थे, यह मेरी समझ ही में न आता।

“क्या नाना तुमसे ताक़तवर हैं?” मैंने पूछा।

“नहीं ताक़तवर तो नहीं हैं, लेकिन बड़े हैं। इसके अलावा वह मेरे पति हैं। मेरे साथ वह जो बुरा बर्ताव करते हैं, उसका बदला उनसे भगवान लेगा और उसने मुझे उनकी सब बातें सहन करने का हुक्म दिया है।”

जिस वक़्त वह देव-प्रतिमाओं और उनकी वेदी को झाड़कर साफ करती थी, तो मैं उसे बड़े गौर से देखा करता था। मुझे बड़ा अच्छा लगता था। हमारे घर की देव-प्रतिमाएँ बड़ी बढ़िया थीं। उनमें मोती और नग जड़े हुए थे और चाँदी का काम किया हुआ था। नानी उन्हें बड़ी सावधानी से साफ करती। एक प्रतिमा को सामने रखकर वह सलीब का निशान बनाती और चूमकर कहती :

“ओह, कैसा सुन्दर मुखारविंद है! पर धूल और कालिख जम गयी है। प्रभु की माता! सर्वशक्तिमयी! आनन्ददायिनी!... अलेक्सेई, तू भी देख इधर-कैसी सुन्दर

मीनाकारी है। कितना बारीक़ काम है। कैसी प्यारी-प्यारी सूरतें हैं, पर हर कोई अलग-अलग खड़ी है। इस प्रतिमा को कहते हैं बारह पर्व, बीच में जो है, वही है फ्योदोरोव्स्काया कुमारी-भगवान की जननी, वह ममता की मूर्ति है। और इसका नाम है-माँ, मेरी क़ब्र पर न रो...”

प्रायः मुझे ऐसा लगता कि नानी प्रतिमाओं के साथ उतनी ही संजीदगी और आत्मीयता के साथ खेलती है, जितनी हमारी डरपोक ममेरी बहन कतेरीना अपनी गुड़ियाओं से।

फ़रिश्तों के अलावा नानी की पिशाचों-शैतानों से भी मुलाकात होती थी, कभी किसी अकेले से, कभी झुण्ड के झुण्डों से। एक दिन उनकी भी कहानी सुनाने लगी :

“लेंट* के दिनों में एक बार मैं रुडोल्फ के घर के पास से जा रही थी। चाँदनी रात थी, चारों ओर उजाला। यक़ायक़ देखती क्या हूँ कि छप्पर की चिमनी के पास एक काला पिशाच पैर फैलाकर बैठा हुआ है-बहुत बड़ी, पूरी देह में लम्बे-लम्बे बाल। दोनों सींग चिमनी के पास सटाये वह ज़ोर-ज़ोर से कुछ सूँघ रहा था। वह अपने पाँवों को रगड़ रहा था और छत पर दुम फटफटा रहा था। मैंने झट सलीब का निशान बनाया और प्रभु का नाम जपने लगी : ‘फिर ईसा का जन्म होगा और ईश्वर के शत्रु परास्त होंगे।’ यह सुनते ही एक हल्की-सी चीख के साथ वह आँगन में कूद पड़ा। मैं ताज्जुब में थी कि आया कैसे। हो न हो रुडोल्फ के यहाँ आज मांस-वांस पकाया जा रहा है। वह खुश होकर यही सूँघ रहा था...”

पिशाच के छप्पर से आँगन में कूदकर भागने की कल्पना से मैं मुस्कुराने लगा। नानी भी मेरे साथ हँसने लगी। फिर बोली :

“वे बड़े नटखट होते हैं-छोटे बच्चों की तरह। एक बार लगभग आधी रात के वक़्त मैं गुसलखाने में कपड़े धो रही थी। यक़ायक़ चूल्हे का दरवाज़ा झटके से खुल गया और उसमें से उनकी पूरी सेना निकल पड़ी-छोटे-छोटे, घुन्नी भर के, तिलचट्टों के समान। कोई लाल था, कोई हरा, कोई काला। मैं दरवाज़े की ओर भागी। पर सबों ने रास्ता रोक लिया। मैं गुसलखाने में ही गिरफ़्तार। चारों तरफ से घेर लिया उन्होंने मुझे। पूरा गुसलखाना उनसे भरा हुआ था। कुछ पाँव के नीचे, कुछ ऊपर चढ़े हुए। कोई चुटकी भरता, कोई काटता और ऐसे दबा रहे थे कि हिलना-डुलना मुश्किल था। मेरी अक़्ल ही गुम-यह भी नहीं सूझा कि सलीब का निशान बनाऊँ। वे मुलायम, गरम-गरम और रोएँदार थे, जैसे बिल्ली के बच्चे। पिछली टाँगों पर खड़े होकर वे चारों ओर लुढ़क-पुढ़क रहे थे। उनके दाँत चूहों जैसे दमक रहे थे। छोटी हरी-हरी आँखें चमक रही थीं। वे अपने सिरों को, जिनके ऊपर सींग फूटने ही वाले थे, डोला रहे थे और सूअर के छौनों की सी छोटी दुमों को ऐंठ रहे थे... हे भगवान! उस दिन मेरे ऊपर जो गुजरी, मैं ही जानती हूँ। मैं मूर्च्छित हो गयी। जब मूर्च्छा टूटी, तो

* लेंट-चालीस दिन का उपवास, जो ईस्टर को समाप्त होता है।

मोमबत्ती करीब-करीब जल चुकी थी, टब का पानी ठण्डा हो चुका था और धुले हुए कपड़े फ़र्श पर बिखरे पड़े थे। मैंने मन में सोचा : 'बुरा हो तुम पिशाचों का...'"

मैंने आँखें बन्द कर लीं। मुझे लगा कि भूरे पत्थर के चूल्हे का मुँह खुला हुआ है और उसके अन्दर से झबरीले और रंग-बिरंगे छोटे-छोटे पिशाचों की पूरी फौज़ निकली आ रही है। निकलकर वे गुसलखाने में भर गये और मोमबत्ती को फूँकने और शरारती ढँग से अपनी गुलाबी जीभ बाहर निकालने लगे। कहानी से हँसी आती थी और भय भी होता था। नानी थोड़ी देर मौन रहकर सिर हिलाती रही, लेकिन शीघ्र ही कल्पना के घोड़े दौड़ने लगे :

"और मैंने ऐसे आदमियों को भी देखा है, जिनके ऊपर पिशाच सवारी करते हैं। एक बार जाड़े की रात थी। बड़े ज़ोरों की हवा चल रही थी और बर्फ़ गिर रही थी। मैं द्यूकोव नाला पार कर रही थी। याद है न, मैंने एक बार तुझे बताया था कि उसी जगह जमे हुए पोखर के गढ़े में याकोव और मिख़ाईल ने तेरे बाप को डुबोकर मार डालने की कोशिश की थी। मैं उसी जगह थी। सड़क से नाले में उतरी ही थी कि यक़ायक़ ज़ोर से सीटी की आवाज़ आयी, चीख-चिल्लाहट सुनाई दी। देखती क्या हूँ कि तीन काले घोड़ों वाली एक गाड़ी पीछे से सरपट दौड़ी चली आ रही है। कोचवान की जगह पर गोल-मटोल बड़ा-सा पिशाच बैठा था, तिरछी लाल टोपी पहने। सीट पर खड़ा होकर लगाम की जगह लोहे की जंज़ीर से वह घोड़ों को हाँक रहा था। दोनों हाथ उठे हुए थे। घोड़े नाला पार नहीं कर सके, पर सीधे, बर्फ़ उड़ाते पास के पोखर की ओर दौड़े। गाड़ी पर शैतानों-पिशाचों की पूरी मण्डली सवार थी। वे ज़ोर-ज़ोर से सीटी बजा रहे थे और चिल्लाते हुए अपनी टोपियाँ उछाल रहे थे। धड़ाधड़ सात गाड़ियाँ मेरी बगल से गुजर गयीं। सातों में काले घोड़े जुते थे। वास्तव में वे घोड़े नहीं, ऐसे लोग थे, जिनपर माता-पिता का श्राप पड़ा था। पिशाच ऐसे ही लोगों को पकड़ते हैं। उन्हें रात भर गाड़ी में घुमाते और जश्न मनाते हैं। शायद वह पिशाचों की बारात थी. .."

नानी इतने सहज विश्वास के साथ बोलती थी कि उसकी कहानी पर यकीन न करना असम्भव था।

लेकिन इन कहानियों से भी मज़ेदार ईसा की माता सम्बन्धी उसके पद्य थे, जिनमें कहा जाता था कि ईसा की माता कैसे बड़ी मुसीबतें-कठिनाइयाँ सहकर 'डाकुओं की रानी' येंगालिचेवा के पास गयी थी और उसे रूसियों को लूटने और सताने से मना कर दिया था; या भक्त अलेक्सेई और सूरमा इवान की कविताएँ, बुद्धिमती वसिलीसा का आख्यान, या बकरा-पादरी और सन्त गौडसन के क़िस्से। मार्फापोसाद्नित्सा, डाकू-सरदार बाबा उस्ता, मिस्र की पापिन मरिया और डाकू की माता के दुःख की कहानियाँ बड़ी डरावनी थीं। किस्से-कहानियों और कविताओं का उसके पास अक्षय भण्डार था।

आदमियों से उसे डर नहीं लगता था-नाना से भी नहीं। न उसे पिशाचों और भूत-प्रेतों का भय सताता था। लेकिन तिलचट्टों से वह थर-थर काँपती थी। दूर पर भी तिलचट्टा होता, तो उसे पता लग जाता। प्रायः वह रात में मुझे उठाकर भयकम्पित स्वर में कहती थी :

"अलेक्सेई! ज़रा उठ, प्यारे बेटे! देख तिलचट्टा रेंग रहा है। ईसा के लिए उसे मार डाल!"

नींद में ही उठकर मैं मोमबत्ती जलाता और दुश्मन की खोज में घोड़ा बनकर ज़मीन पर रेंगने लगता। अक्सर दुश्मन का पता न मिलता। तब मैं नानी से कहता :

"यहाँ तिलचट्टा नहीं है।" वह रजाई में मुँह छिपाये, निश्चल पड़ी वहीं से कहती :

"है, ज़रूर है। और ध्यान से देख। तेरे पाँव पड़ती हूँ। वह छिपा हुआ है।"

और उसी की बात सच निकलती। अक्सर तिलचट्टा चारपाई से बहुत दूर बैठा मिलता।

तब नानी कहती :

"मार दिया? धन्य भगवान! तू युग-युग जी, मेरे लाल।" यह कहते और अत्यन्त प्रसन्न होते हुए वह मुँह पर से रजाई हटा देती।

अगर तिलचट्टा न मिलता, तो उसे नींद न आती। रात में ज़रा-सी आहट होते ही वह रजाई के अन्दर सिहर उठती और अपने आप बोलने लगती :

"वह देख, दरवाज़े के पास चल रहा है... वह घुसा, ट्रंक के नीचे घुसा अब..."

मैं पूछता :

"तुम तिलचट्टों से इतना डरती क्यों हो?"

उसका जवाब समझदारी का होता था :

"तिलचट्टों से लाभ ही क्या है? वे काले पिशाचों की तरह केवल हमेशा इधर से उधर रेंगते रहते हैं। भगवान ने सभी जीवों को किसी न किसी प्रयोजन से बनाया है। गोज़र से पता चलता है कि मकान में सर्दी समा गयी है। खटमलों से दीवारों की गन्दगी का भास होता है। देह में चिल्लड़ दिखाई पड़ने से समझ लो कि बीमार पड़ोगे। सबों का स्पष्ट प्रयोजन है, लेकिन तिलचट्टे? जाने ये किसलिए बने हैं? क्या प्रयोजन है इनके अस्तित्व का?"

एक दिन नानी घुटनों के बल बैठी घुलमिलकर भगवान से बातचीत कर रही थी। तभी नाना ने भड़ाक से दरवाज़ा खोला और भर्राये हुए गले से चिल्लाये :

"वर्वारा की माँ! दौड़ो! ईश्वर का प्रकोप! कारखाने में आग लग गयी है।"

"क्या हुआ? क्या हुआ?" कहती नानी उठी। दोनों अँधेरे, बड़े बैठकखाने में पैर पटकते हुए भागे।

नानी ने चिल्लाकर कठोर, दृढ़ आवाज़ में आदेश दिया :

"येव्गेनिया, देव-प्रतिमाएँ उतार ले! नताल्या! लड़कों को झटपट कपड़े पहना दे।"

नाना बिसूरने लगे :

"हाय... किस्मत..."

मैं रसोईघर में दौड़ा! आँगन की ओर वाली खिड़की सोने की तरह दमक रही थी और कमरे के फ़र्श पर सुनहली छाया नाच रही थी। याकोव मामा नंगे पैरों में जूता डालकर छायावाली जगह पर उछलने लगे, मानो तलवे जल रहे हों। वह चिल्ला रहे थे :

"यह मिख़ाईल की करतूत है। वही आग लगाकर भागा है।"

नानी ने आकर उन्हें डाँटा :

"कुत्ता कहीं का!" और इतने ज़ोर से दरवाज़े के बाहर ढकेल दिया कि वह गिरते-गिरते बचे।

खिड़की के शीशे पर जमे हुए पाले के पार कारखाने का जलता छप्पर दिखायी पड़ रहा था। लपटें खुले दरवाज़े के अन्दर नाच रही थीं। शान्त रात्रि में आग के धूम्रहीन शोले उठ रहे थे। केवल खूब ऊँचाई पर धुएँ का एक बादल हवा में लटक रहा था। आकाशगंगा अपने स्थान पर स्पष्ट लक्षित हो रही थी। चारों ओर फैली बर्फ़ लाल-लाल दिख रही थी। बाहर की ओर बनी कोठरियों की दीवारें हिल रही थीं, मानो लरजकर आँगन के उस कोने में गिर पड़ना चाहती हों, जिधर आग ज़ोर से जल रही थी। कारख़ाने की चौड़ी दरारें लपटों से प्रकाशित हो रही थीं और कभी-कभी वे पिघली तथा टेढ़ी हुई कीलों के बीच से बाहर निकल पड़ती थीं। आग के लाल, सुनहले फीते साँप की तरह छप्पर के सूखे काठ के पल्लों पर चढ़ जाते थे, जहाँ पकी मिट्टी की बनी चिमनी आकाश में सिर उठाये हवा में धुएँ की लहरें छोड़ रही थी। खिड़की के शीशे पर हल्की चिटक अथवा कोमल सरसराहट की हल्की प्रतिध्वनि सुनाई पड़ जाती थी। आग बढ़ रही थी। उसके भव्य तेज़ से सौंदर्य-परिपूरित होता हुआ कारखाना गिरजाघर की देव-प्रतिमाओं वाली वेदी के समान लग रहा था, जो बरबस अपनी ओर खींच लेती है।

मैंने सिर पर भेड़ की खाल का भारी कोट रख लिया और पैरों में किसी का जूता डाल लड़खड़ाता हुआ ड्योढ़ी में पहुँचा और वहाँ से बाहरी ओसारे में। उस जगह पहुँचकर मैं स्तम्भित रह गया। आग की लौ से आँखें चकाचौंध हुई जाती थीं, लपटों की गरज और नाना, मामा तथा ग्रिगोरी की चिल्लाहट से कानों के परदे फट रहे थे। नानी का करतब देखकर तो मैं भय से सन्न हो गया। उसने सिर पर एक खाली बोरा डाला, घोड़े के साज के झूल से अपने को लपेटा और चिल्लाती हुई जलते हुए कारखाने में घुस गयी :

"तेज़ाब! तेज़ाब! तुम लोग मूर्खों की तरह खड़े क्या देख रहे हो? तेज़ाब के

बरतन में आग पहुँची, तो सारा घर उड़ जायेगा...”

नाना चीखे :

“ग्रिगोरी, रोको उसे रोको! ओफ, गयी!”

लेकिन नानी बात की बात में लौट आयी-धुएँ में लिपटी, सिर हिलाती और गन्धक के तेज़ाब का भारी मटका उठाये।

वह धुएँ से खाँस रही थी। भर्राये गले से चिल्लायी :

“अस्तबल से घोड़े को बाहर निकाल लो। झूल खींच लो! जल्दी! देख नहीं रहे हो इसमें आग लग गयी है।”

ग्रिगोरी ने जलता झूल नानी के कन्धों से जल्दी से खींच लिया और फावड़ा लेकर कारखाने में बर्फ़ फेंकने लगा। मामा कुल्हाड़ा हाथ में लिये इधर से उधर कूद रहे थे। नाना नानी के पीछे दौड़ रहे थे और उसके ऊपर बर्फ़ के ढेले डालते जा रहे थे। नानी ने बर्फ़ के ढेर में मटका गाड़ दिया और आँगन के फाटक को खोलने के लिए दौड़ी। पड़ोस से लोग दौड़े आ रहे थे। नानी उनसे अनुनय करने लगी :

“अम्बार को बचाओ, पड़ोसी भाइयो! आग थोड़ी देर में अम्बार तक पहुँच जायेगी और वहाँ घास के ढेर को धर लेगी। हमारा पूरा घर स्वाहा हो जायेगा। उसके बाद तुम्हीं लोगों की बारी आयेगी। छप्पर काट डालो और घास के गट्ठों को बगीचे में फेंक दो। ग्रिगोरी! बर्फ़ उठाकर ऊपर फेंको। ज़मीन पर पड़ी-पड़ी वह क्या करेगी? याकोव तू इधर से उधर क्यों नाच रहा है? लोगों को फावड़े और कुल्हाड़े लाकर दे! जुट जाओ, भलेमानसो! भगवान तुम्हारी मदद करेगा!”

नानी आग ही की तरह आकर्षक लग रही थी। लपटें मानो उसी की ओर दौड़ रही थीं। उसके प्रकाश में वह छाया की तरह आँगन में चारों ओर दौड़ रही थी। कोई जगह न थी, जहाँ वह मौजूद न हो। कोई चीज़ उसकी पैनी दृष्टि से बच नहीं पा रही थी। हर आदमी को वह हुक्म दे रही थी।

शराप दौड़ता हुआ आँगन में आया और अपनी पिछली टाँगों पर खड़ा होने लगा, जिससे नाना इधर-उधर डोलने लगे। उसकी भयभीत आँखें आग की रोशनी में लाल गोलों की तरह चमक रही थीं। उसका भड़कना देख नाना उसकी लगाम छोड़कर एक ओर को होते हुए चिल्लाये :

“वर्वारा की माँ! तुम्हीं सँभालो इसे!”

शराप पिछली टाँग पर खड़ा था। नानी उसके पेट के पास जाकर खड़ी हो गयी-हाथ फैलाये, निश्चल! घोड़ा दयनीय ढँग से हिनहिनाया और एकबारगी शान्त हो गया। आग की ओर वह अब भी भयभीत नेत्रों से देख रहा था।

नानी ने लगाम हाथ में ले ली और उसकी गर्दन थपथपाते हुए बोली :

“डर मत! तुझे खतरे में छोड़ दूँगी मैं? अरी ओ, चुहिया मेरी...”

‘चुहिया’ जो नानी से तिगुना ऊँचा था, गौ की तरह उसके पीछे फाटक की

ओर चला गया। लपट से लाल नानी का चेहरा देख वह हिनहिनाने लगा।

येव्गेनिया धाई बच्चों को बाहर ले गयी। सभी ओढ़नों में बण्डलों की तरह लिपटे थे। नाना को पुकारकर उसने कहा :

"वासीली वासील्येविच! अलेक्सेई का पता नहीं है..."

"तुम भागो यहाँ से! भागो!" नाना ने कहा। मैं बाहरी ओसारे की सीढ़ियों की बगल में छिप गया, ताकि येव्गेनिया मुझे भी वहाँ से न ले जाये।

कारखाने का छप्पर भहराकर गिर पड़ा। शहतीर दिखाई पड़ने लगे, जिनसे धुआँ और शोले निकल रहे थे। अन्दर रह-रहकर विस्फोट के साथ लाल, हरी और नीली लपटें फूट पड़ती थीं। उनकी लपलपाती जीभ आँगन की ओर बढ़ती थी, जहाँ खड़ी भीड़ बर्फ़ फेंककर उसे बुझाने की कोशिश कर रही थी। कड़ाहों से खदबदाहट की डरावनी आवाज़ आ रही थी तथा भाप और धुआँ उठ रहा था, जिससे आँगन में अजीब गन्ध भर गयी थी और आँखों से पानी आ रहा था। मैं सीढ़ियों की बगल से निकला, तो नानी के पैरों से टकरा गया।

"भाग यहाँ से," नानी चिल्लायी,"भाग, नहीं तो कुचलकर यहीं रह जायेगा।"

कलगी लगा ताम्बे का टोप पहने हुए एक घुड़सवार धड़धड़ाता हुआ आँगन में घुस आया। उसके कत्थई घोड़े के मुँह से झाग निकल रहा था। कोड़ा फटकारते हुए वह चिल्लाया :

"हटो! रास्ता छोड़ो।"

आँगन घण्टियों की अविरल और मधुर टनटनाहट से भर गया। ऐसा ज्ञात हुआ कि मेला लगा है। नानी ने ढकेलकर मुझे ओसारे में कर दिया और बोली :

"सुना नहीं रे? भाग मैं कहती हूँ।"

उसकी बात टालना इस वक़्त असम्भव था। मैं रसोईघर में चला गया और फिर खिड़की से देखने लगा। पर बाहर खड़े लोगों की काली भीड़ के कारण आग में आड़ पड़ गयी थी। सिर्फ जाड़े की काली टोपियों और हैटों के बीच ताम्बे के टोपों की चमक दिखाई पड़ रही थी।

जल्दी ही पीट-पीटकर और पानी डालकर आग बुझा दी गयी। पुलिस के सिपाहियों ने तमाशा देखने वालों को भगा दिया। नानी रसोईघर में आयी। बोली :

"यहाँ कौन? तू? क्या कर रहा है? सोया नहीं। डर लग रहा है क्या? अब डरने की बात नहीं। आग बुझ गयी..."

मेरी बगल में बैठकर मुँह से कुछ बोले बिना वह झूमने लगी। रात का अँधियारा और सन्नाटा लौट आया था, जिससे हृदय को ढाढ़स बँधा, पर आग बुझ जाने का मुझे अफसोस होने लगा।

इसके बाद नाना दरवाज़े पर आये। उन्होंने वहीं से पुकारा :

"वर्वारा की माँ!"

"हाँ!"

"जल गयी न?"

"नहीं! कोई बात नहीं!"

उन्होंने दियासलाई निकालकर जलायी। उसकी नीली लौ में उनका काली गिलहरी जैसा कालिख पुता चेहरा प्रकाशित हो उठा। दियासलाई से मेज पर पड़ी मोमबत्ती जलाकर वह धीरे से नानी की बगल में बैठ गये।

नानी भी कालिख से सनी हुई थी और उसके शरीर से धुएँ की गन्ध आ रही थी। उसने कहा :

"नहा लो।"

नाना ने लम्बी साँस लेकर कहा :

"भगवान बड़ा कृपालु है। कभी-कभी वह तुमको ज्ञान दे ही देता है..."

नानी के कन्धों को थपथपाते हुए वह मुस्कराकर बोले :

"दो ही क्षण के लिए सही, पर कभी-कभी ज्ञान की रोशनी भेज ही देता है प्रभु!.."

नानी भी हँसी, उसने कुछ कहना चाहा था कि नाना माथे पर बल डालकर बोले :

"ग्रिगोरी की अब छुट्टी करनी ही होगी। उसी की लापरवाही का यह नतीजा है। बुड्ढा किसी काम का नहीं रहा। याकोव ओसारे में बैठा है, रो रहा है, बुद्धू। जाकर चुप कराओ उसे..."

नानी बाहर चली गयी। वह अपनी जली उँगलियों को फूँक रही थी। मेरी तरफ नज़र घुमाये बिना ही नाना कहने लगे :

"देखा न आज अपनी नानी को? बूढ़ी है, टूट चुकी है, फिर भी कैसा जौहर दिखाया उसने! बाकी जितने हैं सब नाकारे-ऊँह!"

वह झुक गये और थोड़ी देर तक चुप रहे। इसके बाद उठकर मोमबत्ती के जले टुकड़ों को उँगलियों से अलग करते हुए बोले :

"डर लग रहा था तुझे?"

"नहीं।"

"हाँ, डरने की कोई बात नहीं..."

खींच-खाँचकर उन्होंने अपनी कमीज उतारी और कोने में लगे हुए पानी के नल के पास चले गये। पैरों को पटकते हुए वहीं से ज़ोर से बोले :

"घर में आग लग जाने से बड़ी मूर्खता कुछ नहीं। जिसके घर में आग लगे, उसे मूर्ख या चोर करार देकर बीच चौक में कोड़े लगवाने चाहिए। यही सजा दी जाये, तो किसी के घर में आग नहीं लगेगी..." फिर मेरी ओर मुड़कर बोले :

"तू किसलिए बैठा है? जाकर सो!"

मैं चला गया। पर उस रात सोना नहीं बदा था। पलँग पर चढ़ा ही था कि किसी की मर्मभेदी चीख से घर गूँज उठा। मैं कूदकर नीचे आया और रसोईघर की ओर दौड़ा। कमीज के बिना नाना हाथ में मोमबत्ती लिये रसोईघर के बीच खड़े थे। वह फ़र्श पर पैर रगड़ रहे थे और उनके ऐसा करने से मोमबत्ती की लौ हिल रही थी।

"वर्वारा की माँ! यह याकोव की चीख तो नहीं?" उन्होंने हाँफते हुए पुकारा।

मैं कूदकर अलावघर पर चढ़ गया और कोने में दुबककर बैठ रहा। घर में फिर से आग लगने के वक़्त जैसी दौड़-धूप होने लगी। मर्मभेदी चीख की प्रतिध्वनियाँ नियमित रूप से उठकर दीवार और छत से टकरा रही थी। उनकी तेज़ी बढ़ती ही जा रही थी। नाना और मामा पागलों की तरह इधर से उधर दौड़ने लगे, पर नानी ने डाँटकर उन्हें कहीं बाहर निकाल दिया। ग्रिगोरी अलावघर में लकड़ी के बड़े-बड़े कुन्दे डाल रहा था, जिससे बहुत आवाज़ हो रही थी। बड़े-बड़े देगों को पानी से भर वह आस्त्राखानी ऊँट की तरह गर्दन हिलाता हुआ इधर से उधर घूम रहा था।

"तुम पहले आग तो जला लो," नानी ने आज्ञा दी।

ग्रिगोरी काठ सुलगाने के लिए अलावघर पर चढ़ा, तो उसके हाथ मेरे पाँवों से टकरा गये। वह घबराकर उठा :

"कौन है? तुम! बिल्कुल डरा दिया मुझे। यहाँ क्या कर रहे हो? हमेशा बेमतलब हर जगह घुसते रहते हो।"

"क्या हो रहा है?" मैंने पूछा।

"तुम्हारी नताल्या मामी को बच्चा हो रहा है," उसने उदासीनता से जवाब दिया और नीचे उतर गया।

मुझे याद आया कि बच्चा होते वक़्त मेरी माँ तो इस तरह नहीं चिल्लायी थी।

देगों को आग पर चढ़ाने के बाद ग्रिगोरी ऊपर आया और मेरी बगल में बैठकर उसने जेब से मिट्टी का पाइप निकाला। मुझको पाइप दिखाते हुए बोला :

"अंधेपन के इलाज के लिए तम्बाकू पीना शुरू किया है। तुम्हारी नानी का कहना है कि नास लिया करो, लेकिन मैं समझता हूँ पाइप पीना ही ज्यादा अच्छा होगा..."

पैरों को नीचे लटकाये हुए वह अलावघर के सिरे पर बैठा था और मोमबत्ती की मद्धिम रोशनी को ताक रहा था। उसके कान और गालों पर कालिख के दाग थे, कमीज फट गयी थी और अन्दर से लोहे के घेरों जैसी पसलियाँ झाँक रही थीं। उसके चश्मे का एक शीशा टूटा हुआ था, लगभग आधा शीशा फ्रेम से निकलकर गिर गया था, जिससे घाव जैसी लाल और नम आँखें साफ दिखाई पड़ रही थी। तम्बाकू की पत्तियाँ पाइप में भरकर वह कान लगाये मामी की चीखें सुन रहा था और कुछ ऐसे अस्त-व्यस्त ढँग से बड़बड़ा रहा था कि किसी शराबी की याद आती थी।

"तुम्हारी नानी की उँगलियाँ जल गयी हैं। बच्चा जनने में उन्हें बड़ी मुश्किल होगी। सुन रहे हो न अपनी मामी की चिल्लाहट? उस बेचारी का किसी को ख्याल ही नहीं रहा। आग लगने के फौरन बाद से ही वह डर के मारे कराह रही थी... ज़रा सोचो तो, दुनिया में नये जीव को जन्म देना कितना कठिन काम है। फिर भी लोग औरतों की इज्जत नहीं करते। औरत की पदवी बड़ी ऊँची है-वह होती है माँ। इस बात को कभी मत भूलना..."

मुझे बैठे-बैठे ही नींद आ गयी। पर दरवाज़े के धड़ाधड़ बन्द होने और नशे में धुत्त मिख़ाईल मामा की चीख-चिल्लाहट से मेरी नींद खुल गयी। मुझे अजीब-से शब्द सुनायी दिये। किसी ने कहा :

"आखिरी घड़ी है..."

एक आवाज़ आयी :

"थोड़ा लैम्प का तेल, कालिख और शराब मिलाकर दो-आधे गिलास तेल में, आधा गिलास शराब और एक बड़ा चम्मच कालिख।"

मिख़ाईल मामा कह रहे थे :

"मुझे एक बार उसे देखने दो..."

वह टाँगें फैलाये फ़र्श पर बैठे हाथों से ज़मीन पीट रहे थे और बार-बार थूक रहे थे। अलावघर बहुत ज्यादा गरम हो जाने से मैं नीचे उतर पड़ा। मामा के पास से गुज़रा, तो उन्होंने मेरा पैर पकड़कर इतने ज़ोर से खींचा कि मैं मुँह के बल धड़ाम से ज़मीन पर जा गिरा।

"मूर्ख कहीं का," मैंने चिल्लाकर कहा।

वह गरज उठे और मुझे ऊपर उठाकर बड़े ज़ोर से चक्कर दे दिया। बोले :

"अलावघर पर मारकर तेरा सिर चकनाचूर कर दूँगा!"

होश आने पर मैंने अपने को बैठकखाने में नाना की गोद में पड़े पाया। वह देव-प्रतिमाओं वाले कोने में बैठे मुझे धीरे-धीरे झुला रहे थे। आँखें छत की ओर थीं और आप ही आप धीरे-धीरे कुछ कह रहे थे :

"हमारे अपराधों के लिए क्षमा नहीं है... किसी के लिए नहीं।"

उनके माथे के ऊपर प्रतिमाओं के सामने जलनेवाला दीया रोशनी उगल रहा था। कमरे के बीच, मेज पर मोमबत्ती जल रही थी और खिड़कियों से जाड़े का धुँधला भोर झाँक रहा था।

नाना ने मुँह मेरे नजदीक सटाकर पूछा :

"कहाँ दुःख रहा है?"

मेरा अंग-अंग दुःख रहा था। माथा तर मालूम होता था और शरीर शीशे की तरह भारी। लेकिन अपने दर्द के बारे में बात करने का मेरा मन नहीं था। मुझे चारों ओर का वातावरण अजीब लग रहा था। कमरे की ज़्यादातर कुर्सियों पर अजनबी

लोग बैठे थे। एक पर बनफशई रंग की पोशाक पहने एक पादरी था। दूसरी पर पके बालों और चश्मेवाला एक बूढ़ा था, फौजी पोशाक में। और भी बहुत-से लोग थे। सभी काठ की मूर्तियों की तरह निश्चल बैठे किसी चीज़ की प्रतीक्षा कर रहे थे। पास ही पानी से कुछ धोने की आवाज़ आ रही थी और सभी के कान उसी ओर लगे थे। याकोव मामा हाथ पीछे बाँधे दरवाज़े की चौखट के पास सीधे खड़े थे।

"याकोव, इसे पलँग पर पहुँचा आओ..." नाना ने कहा।

मामा ने मुझे इशारे से बुलाया और हम दोनों पंजों के बल नानी के कमरे में चले गये। जब मैं बिस्तर में घुस गया, तो उन्होंने फुसफुसाकर कहा :

"तुम्हारी नताल्या मामी मर गयी..."

मुझको आश्चर्य नहीं हुआ, क्योंकि मामी बहुत समय से कहीं दिखाई नहीं पड़ रही थी, न रसोईघर में आती थी, न खाने की मेज पर।

"नाना कहाँ हैं?" मैंने पूछा।

"वहाँ।" हाथ के इशारे से उन्होंने कहा और जिस तरह नंगे पैर पंजों के बल हम आये थे, उसी तरह वह धीरे से बाहर चले गये।

मैं चारपाई पर पड़ा व्यग्रता से चारों देख रहा था। खिड़की के शीशों के पार घने और पके बालों वाले सिर तथा धूमिल चेहरे दिखायी पड़ रहे थे। ट्रंकवाले कोने में नानी की पोशाक टँगी हुई थी, मैं यह जानता था, पर अब मुझे ऐसा मालूम हो रहा था, मानो कोई अँधेरे में खड़ा है। मैंने तकिये में सिर छिपा लिया। पर एक आँख दरवाज़े की ओर लगाये रहा। जी होने लगा कि पलँग से कूदकर बाहर भागूँ। कमरे में गरमी थी और घर में दम घोंटनेवाली अजीब गन्ध फैली हुई थी, जिससे मुझे इवान की मृत्यु का दिन याद आ गया-ज़मीन पर पड़ी उसकी लाश, जिससे टपाटप खून गिरकर रसोईघर में फैल रहा था। ऐसा लग रहा था कि मेरा सिर, सम्भवतः कलेजा, सूज गया है। इस घर में मैंने जो कुछ देखा था, उसका एक-एक दृश्य बर्फीले रास्ते पर धीरे-धीरे चलनेवाले छकड़े की भाँति मेरे सामने उभर रहा था, मेरे हृदय को दबा रहा था, मेरी आत्मा को कचोट रहा था...

धीरे-से कमरे का दरवाज़ा खुला और नानी दबे पाँव अन्दर आयी, दरवाज़े को कन्धे से भिड़ाकर वह देर तक उससे सटी खड़ी रही। उसकी बाँहें देव-प्रतिमाओं वाले दीये की नीली लौ की ओर फैली हुई थीं। बच्चों जैसे शोकाकुल स्वर में वह बोली :

"ओह! मेरे हाथ कितने दुःख रहे हैं!..."

5

उसी साल के वसन्त में जायदाद का बँटवारा हो गया। याकोव शहर में रहा और मिख़ाईल नदी के पार जा बसा। नाना ने अपने लिए पोलेवाया स्ट्रीट में एक बड़ा-सा अच्छा मकान खरीदा, जिसकी पहली मंजिल में मधुशाला थी। सबसे ऊपर एक छोटी-सी आरामदेह बरसाती थी, नीचे बगीचा था, जिसके पीछे बेंतों से भरा एक सूखा नाला था।

नाना मुझे अपने साथ लेकर बगीचे का निरीक्षण कर रहे थे। बाग की रविशें बर्फ़ गलने से मुलायम हो रही थीं। बेंतों को देख नाना मेरी ओर आँख मारकर बोले :

"चलो अच्छा हुआ, अब बेतों की कमी नहीं होगी। जल्दी ही तेरी पढ़ाई शुरू होगी और उस समय इनकी ज़रूरत पड़ेगी..."

पूरा घर किरायेदारों से भरा था। हाँ, ऊपरवाली मंजिल पर नाना ने एक बड़ा कमरा अपने तथा मेहमानों को बैठाने-उठाने के लिए रख लिया और मैं तथा नानी बरसाती में रहने लगे। इस कमरे की खिड़की गली की ओर खुलती थी। उससे बाहर झुककर मैं शामों और छुट्टियों के दिनों में पीनेवालों को गिरते-लड़खड़ाते और कोलाहल करते हुए मधुशाला से बाहर निकलते देखा करता था। कभी वे आटे के बोरों की तरह घसीटकर मधुशाला से बाहर कर दिये जाते। दरवाज़ा चूल की चूँ-चूँ और चर्र-चर्र के साथ बन्द हो जाता। पर वे रेंगकर फिर उसी के पास पहुँच जाते। तब मार-पीट शुरू हो जाती। ऊपर से यह दृश्य बड़ा मनोरंजक लगता था। सवेरा होते ही नाना अपने बेटों की मदद करने के लिए उनके कारखाने जाते थे और शाम हुए लौटते थे-थककर चूर, खिन्न और चिड़चिड़े।

नानी घर का कामकाज करती थी-सीना पिरोना, खाना पकाना और बगीचे की देखभाल करना-सब कुछ उसका काम था। मानो किसी अदृश्य कोड़े से प्रताड़ित वह एक बड़े लट्टू की तरह दिन भर नाचती ही रहती। नाक में नास लेकर मजे से छींकते हुए और माथे से पसीना पोंछते हुए वह कहती :

"जुग-जुग तक बनी रहे यह प्यारी सुन्दर दुनिया! अब हम लोग चैन से साँस ले सकते हैं, मेरे बेटे अलेक्सेई, मेरे लाल! माँ मरियम की कृपा से अब ज़रा-सा आराम मिला है।"

लेकिन मुझे ऐसा नहीं लगा कि हम चैन का जीवन बिता रहे हैं। सवेरे से शाम तक आँगन और घर में किरायेदारों का आना-जाना लगा रहता था, कोई न कोई पड़ोसी आ धमकता, सभी कहीं जाने की जल्दी में दिखाई पड़ते और हमेशा ही देर हो जाने पर आहें भरते, सभी किसी चीज़ की तैयारी करते और पुकारते रहते :

"अकुलीना इवानोव्ना!"

हँसमुख अकुलीना इवानोव्ना सबसे प्रेम के साथ बात करती। अँगूठे से नास

ठूँसती हुई और बड़े से साफ चौखाने लाल रुमाल से नाक पोंछती हुई वह ध्यानपूर्वक सभी की बातें सुनती। किसी को वह सलाह देती :

"देखो, चिल्लड़ छुड़ाने का एक ही उपाय है। गुसलखाने में जितना हो सके, नहाना चाहिए। सबसे अच्छा यह है कि गरम पानी में पिपरमिण्ट का तेल डालकर उसकी भाप ली जाये। अगर चिल्लड़ छोटे चमचे भर रसकपूर और तीन बूँद पारे लेकर तीनों को सात बार चीनी मिट्टी के खरल में एकजान कर लेना चाहिए और देह में उसी का लेप करना चाहिए। इसमें हड्डी या काठ का चमचा भूलकर भी नहीं इस्तेमाल करना चाहिये, नहीं तो पारा बिगड़ जायेगा। और न ताँबे या चाँदी से छुआना चाहिए। ऐसा करने से दवा नुकसान करती है।"

कभी-कभी बड़ी देर तक सोचने के बाद वह किसी पड़ोसिन को जवाब देती :

"बहन, पेचोरा मठ में सन्यासी आसफ के पास चली जाओ। मुझसे तुम्हारे सवाल का जवाब देते नहीं बनेगा।"

किसी के यहाँ बच्चा होनेवाला होता, तो झट दाई का काम करने के लिए उसकी पुकार होती। घरेलू झगड़ों में वह पंच बनायी जाती। किसी का बच्चा बीमार होता, तो वही इलाज के लिए बुलायी जाती। वह मुँहज़बानी "कुमारी मरियम का सपना" सुनाती, ताकि औरतें सौभाग्यशाली होने के लिए उसे याद कर लें। इसी तरह गृहस्थी के सारे मामलों में उसकी राय ली जाती। वह कहती :

"खीरा तो खुद ही बता देता है कि कब अचार डालना चाहिए। ज्योंही उसमें से मिट्टी की और दूसरी तरह की बू जाती रहे, तो समझ लो कि नमक डालकर रख देने का वक़्त आ गया। बढ़िया क्वास* तैयार करने के लिए उसमें ज़रा तेज़ी लाना आवश्यक है। मीठा देने से उसमें फ़ौरन तेज़ी आ जाती है। बाल्टी भर रस में दो-चार मुनक्के या थोड़ी चीनी डाल दो, फौरन रस उफन जायेगा। वारेनेत्स** का स्वाद कई तरह का होता है-डेन्यूब का अलग, स्पेनी अलग और काकेशिया का अलग..."

मैं सारे दिन नानी के पीछे-पीछे घूमा करता। जहाँ भी नानी जाती मैं साथ रहता, चाहे आँगन हो, या बगीचा या पड़ोसिनों के घर। नानी अक्सर पड़ोसिनों के यहाँ घण्टों बैठी चाय की चुसकियाँ लेती हुई कहानियाँ सुनाया करती। ऐसा मालूम होता कि मैं उसका अभिन्न अंग हूँ। सचमुच, जीवन के उन दिनों में वह सहृदय, अथक बुढ़िया ही मेरे जीवन का केन्द्र-बिन्दु थी।

कभी थोड़े दिनों के लिए माँ भी आ जाती थी। उसकी आकृति अभी भी कठोर और गर्वीली थी। वह जाड़े की धूप की तरह ठण्डी और भूरी आँखों से सभी को गौर से देखती और जल्दी ही गायब हो जाती। जब जाती, तो अपनी याद भी ले जाती थी।

---

* क्वास-एक प्रकार का रूसी पेय, जो गर्मी के दिनों में पिया जाता है।

** वारेनेत्स-एक प्रकार का दही।

एक दिन मैंने नानी से पूछा :

"नानी! तुम जादूगरनी हो?"

"यह लो! यह कहाँ से सूझी रे तुझे," नानी ने हँसकर कहा। पर दूसरे ही क्षण वह गम्भीर हो गयी और बोली :

"मैं किस खेत की मूली हूँ रे। जादूगरी तो बड़ी कठिन विद्या है और मैं ठहरी जाहिल-जपाट-अक्षर भी नहीं जानती। अलबत्ता तेरे नाना विद्वान हैं, पर मुझे तो माँ मरियम ने लिखने-पढ़ने का ज्ञान नहीं दिया।"

इसके बाद अपने जीवन के सम्बन्ध में उसने मुझे बहुत-सी नयी बातें बतायीं। कहने लगी :

"मैं भी बे-बाप की थी। मेरी माँ के पति न था, इसके अलावा वह लुंज थी। अभी कुमारी थी कि एक दिन उसके मालिक ने उसे डरा दिया। रात का समय था। बेचारी खिड़की से कूद पड़ी, जिससे बगल और कन्धे में ऐसी चोट आयी कि एक हाथ ही बेकार हो गया और वह भी दाहिना हाथ। वह लैस बनाने के काम में बड़ी हुनरमन्द थी। अपाहिज होने पर भला मालिक उसे क्यों रखने लगा? बेकाम हो गयी, तो मालिक ने उसे आजाद कर दिया। अब चाहे जैसे भी दुनिया में रहे और खाये। पर एक हाथवाले की गुजर कैसे हो? इसलिए वह भिखारी हो गयी। हाँ, उन दिनों बालाख्ना के निवासी अधिक खुशहाल और रहमदिल थे। कोई बढ़ई था, कोई लैस बुनता था-सब एक से बढ़कर एक हुनरमन्द। माँ और मैं पतझड़ और शीत ऋतु में माँग-खाकर गुजर करती थीं। जब स्वर्गदूत जिब्रईल तलवार से पाले को भगा देते और धरती पर वसन्त छा जाता, माँ और मैं शहर से दूर, जितनी दूर सम्भव होता, निकल जातीं-कभी मूरोम, कभी यूर्येवेत्स। वोल्गा और शान्त ओका का किनारा थामे हम लोग बढ़ी चली जातीं। कितना अच्छा लगता है वसन्त और ग्रीष्म में नरम धरती पर मखमली घास के कालीन पर चलना! खेतों में माँ मरियम फूल बिखेर देती है कि चलनेवाला थके नहीं। हृदय उल्लास से भर उठता, खुशी से नाच उठता। उस वक़्त अम्मा अपनी नीली आँखों को बन्द करके गाना शुरू कर देतीं। उसका स्वर ऊँचा नहीं, कोमल और मधुर था। गीत पंछियों की तरह पंख फैलाकर आकाश में उड़ने लगते! पूरा वातावरण उस समय गीत की तानों में बेसुध हो जाता। सचमुच, भीख माँगने में भी उन दिनों बड़ा आनन्द था। लेकिन जब मैं नौ साल की हो गयी, तो गलियों का चक्कर लगाना अम्मा को बुरा मालूम होने लगा। उसे यह लाज की बात मालूम हुई, इसलिए हम लोग बालाख्ना में ही रहने लगे। माँ अकेले द्वार-द्वार जाकर भिक्षा माँग लाती। इतवार को वह गिरजाघर के बाहर बैठती। मैं घर पर लैस बुनने का काम सीखती थी। जल्दी-जल्दी काम सीखकर अपनी माँ का उद्धार करने को मैं बहुत आतुर थी। जब लैस बुनने में किसी तरह की कठिनाई सामने आ जाती, तो बैठकर रोने लगती थी। लेकिन कोई दो साल में मैंने काम सीख लिया। सारे शहर

में मेरे हुनर की तारीफ़ होने लगी। जब किसी को ज्यादा बारीक काम कराना होता, तो वह मेरे पास आता और कहता : 'अकूल्या! यह तेरे ही बस का काम है।' उस वक़्त मैं फूली नहीं समाती थी। लेकिन असल श्रेय तो अम्मा को था, जिसने मुझे इतना बढ़िया काम सिखाया था। एकहत्थी होने के कारण वह खुद नहीं कर सकती थी, पर काम सिखाना जानती थी और बढ़िया सिखानेवाला हो, तो अकेले दस कारीगरों को मात दे सकता है। मुझे अपने हुनर पर बड़ा अभिमान था। मैंने माँ से कहा, 'अम्मा, अब तुम्हें भीख माँगने की ज़रूरत नहीं। अब अपने हाथ की क़ारीगरी से मैं तुम्हें खिलाने लायक़ हो गयी हूँ।' पर माँ ने कहा, 'धुत पगली! तेरे लिए दहेज की भी तो ज़रूरत होगी। जो तू कमायेगी, वह तेरे दहेज के लिए जमा होगा।' इसके थोड़े ही दिनों बाद तुम्हारे नाना का आगमन हुआ। बाईस ही वर्ष में वह बजरा खींचनेवालों के मुखिया हो गये थे। उनकी माँ ने मुझे बहुत अच्छी तरह से देखा, इस बात की तरफ ध्यान दिया कि मैं अच्छी कारीगर और भिखारिन की बेटी हूँ, इसलिए ज़रूर आज्ञाकारी बनकर रहूँगी... मज़ेदार बात यह है कि वह खुद पावरोटी बेचा करती थी और बड़ी बदमिज़ाज औरत थी... लेकिन हटाओ इस बात को, बुरे लोगों की बुराई करने से क्या फ़ायदा? भगवान तो खुद ही जानता है कि कौन कैसा है। वह खुद ही सब देखता है। भगवान उन्हें देखता है और शैतान उन्हें प्यार करता है..."

यह कहते हुए वह हँसने लगी-हार्दिक, उन्मुक्त हँसी। उसके नथुने विचित्र ढँग से हिलने लगे और आँखों ने बड़ी कोमलता से मुझे थपथपाना शुरू किया। वह दृष्टि तो स्वयं ही एक कहानी थी-शब्दों से अधिक जानदार।

एक शान्त शाम की मुझे खास तौर पर याद है। नानी और मैं नाना के कमरे में चाय पी रहे थे। नाना की तबियत खराब थी। वह नंगे बदन, कन्धे पर लम्बा तौलिया लपेटे, बिस्तरे पर बैठे थे और रह-रहकर तौलिये से माथे का पसीना पोंछ रहे थे। उनकी साँस धौंकनी की तरह चल रही थी-हरी आँखें धुँधली और चेहरा लाल तथा सूजा हुआ। उनके छोटे-छोटे नुकीले कान खास तौर से लाल मालूम पड़ रहे थे। चाय का गिलास उठाते समय उनके हाथ काँपने लगे। वह इतने विनम्र थे कि पहचान ही में नहीं आ रहे थे।

लाड़-चाव से बिगड़े बच्चों जैसे अन्दाज में वह नानी से बोले :

"मुझे चीनी क्यों नहीं देती?"

नानी ने प्यार से, किन्तु दृढ़तापूर्वक उत्तर दिया :

"शहद डालकर पीना तुम्हारे लिए अधिक फायदेमन्द होगा।"

उन्होंने आहें भरते और हाय-वाय करते हुए चाय को गले के नीचे उतारा।

"तुम मेरा ख्याल रखना, कहीं मैं खत्म न हो जाऊँ," उन्होंने कहा।

"घबराने की ज़रूरत नहीं है। मैं ख्याल रख रही हूँ।"

"हाँ, हाँ, ज़रूर ऐसा करना। अगर मैं अभी मर गया, तो अब तक का जीना अकारथ हो जायेगा।"

"तुम बोलो नहीं, चुपचाप लेटे रहो।"

एक मिनट तक वह आँखें बन्द किये पड़े रहे और अपने नीले होंठों को चटपटाते रहे। फिर हठात् इस तरह उठ बैठे, मानो किसी ने चिकोटी काट ली हो :

"जैसे हो याकोव और मिख़ाईल का जल्दी से ब्याह कर देना चाहिए। बीवियाँ और नये बाल-बच्चे हो जाने से शायद दोनों कुछ ठिकाने आयें।"

वह एक-एक करके शहर की शादी लायक़ लड़कियों के नाम गिनाने लगे। नानी बिना कुछ टीका किये चुपचाप चाय के गिलास पर गिलास खत्म कर रही थी। मैंने कोई शैतानी की थी, जिसकी वजह से नाना ने मुझे बाहर जाने से मना कर दिया था। अतः मैं खिड़की के पास बैठा सूरज की डूबती किरणों और मकानों की खिड़कियों में पड़नेवाले उनके चमकीले प्रतिबिम्ब को देख रहा था।

बगीचे में भोज वृक्षों के चारों ओर गुबरैलों के झुण्ड भन-भन कर रहे थे। पास के आँगन में कोई पीपागर हथौड़ी घनघना रहा था और नजदीक ही से छुरियों पर सान धरनेवाले के पहिये की आवाज़ आ रही थी। सूखे नाले के उस पार, घनी झाड़ियों में खेलते बच्चों का कोलाहल सुनायी पड़ रही था। मेरा मन उनके बीच पहुँच जाने को छटपटा रहा था। हृदय में गोधूली-बेला की गहन उदासी भरी हुई थी।

यक़ायक़ नाना ने एक क़िताब निकाली, बिल्कुल नयी, और उसे हथेली पर पटकते हुए खुशमिज़ाजी से बोले :

"अबे गड़बड़झाले! उल्टी खोपड़ीवाले! इधर आ बुद्धू! यहाँ बैठ मेरे पास। हाँ। अब देख, गाल की ऊँची हड्डीवाले, देखता है यह क्या निशान है? यह है 'अ' से अनार! बोल : 'अ' से अनार! 'ब' से बताशा। 'व' से वन। बता, क्या है यह?"

"'ब' से बताशा।"

"ठीक। और यह?"

"'व' से वन।"

"गलत! यह 'अ' से अनार। और ठीक से देख। देखता है? 'ग' से गधा, 'द' से दवात, 'ख' से खरगोश। अब बता, क्या है यह?"

"'द' से दवात।"

"ठीक। और यह?"

"'ग' से गधा।"

"बिल्कुल ठीक! और यह?"

"'अ' से अनार।"

नानी ने टोका :

"बाबू, तुम्हारे लिए चुपचाप लेटे रहना ही बेहतर होगा..."

"बस, तुम टोको नहीं! इसी से तो चिन्ता से ज़रा छुटकारा मिलता है। चुप रहूँ, तो कुढ़-कुढ़कर मर जाऊँ। पढ़े जा, अलेक्सेई!"

उन्होंने अपना गरम और नम हाथ मेरे कन्धे के गिर्द डाल दिया और उँगली रख-रखकर अक्षर पहचनवाने लगे। दूसरे हाथ से ठीक मेरे सामने क़िताब पकड़े रहे। उनकी देह से सिरके, पसीने और भुने प्याज की तीखी गन्ध आ रही थी, जिससे मेरा तो दम घुटा जा रहा था। न जाने क्यों वह अजीब तरह के जोश में आ गये और बिल्कुल मेरे कान में चिल्लाने लगे :

"'क' से कलम, 'ल' से लकड़ी।"

शब्द जाने-पहचाने थे, पर स्लाव लिपि से मेल नहीं खाते थे। 'ल' से लकड़ी जैसा तो क्या, पिल्लू जैसा जान पड़ता था। 'फ' से 'फकीर' बिल्कुल कुबड़े ग्रिगोरी की तरह था। पेट फूले हुए 'ब' को देखकर मुझे लगता था जैसे मैं ही नानी की गोद में बैठा होऊँ। और लगभग सभी अक्षरों में कुछ न कुछ ऐसा था कि उससे नाना के चेहरे की याद आ जाती थी। वह ककहरे की कवायद कराते गये। कभी एक सिरे से अक्षरों को रटाते, कभी बीच से। मुझे भी उनके जोश की छूत लग गयी। मैं भी गला फाड़कर और पसीने से तर होकर चिल्लाने लगा। उनको मेरे चिल्लाने पर हँसी आ गयी और हँसने से खाँसी उठ गयी। बोले :

"वर्वारा की माँ! देख तो ज़रा इसकी पढ़ाई," एक हाथ से छाती और दूसरे से क़िताब को दबाये हुए वह बोले। "ऊँह! आस्त्राखानी गधा कहीं का। इतने ज़ोर-ज़ोर से चिल्ला क्यों रहा है?"

"चिल्ला तो आप रहे हैं..." मैंने कहा।

नानी मेज पर कुहनी टेके और मुट्ठियों पर ठुड्डी रखे हम लोगों की पढ़ाई देख रही थी और धीरे-धीरे हँस रही थी। नाना और नानी दोनों मुझे इस वक़्त बहुत अच्छे लग रहे थे। नानी बोली :

"अब बस भी करो। दोनों ने बहुत सिर खा लिया एक दूसरे का।"

नाना ने दोस्ताना आवाज़ में मुझसे कहा :

"मैं तो बीमार होने के कारण गला फाड़ रहा हूँ। तू क्यों गला फाड़ रहा है?"

इसके बाद पसीने से तर माथे को डोलाते हुए नानी से बोले :

"नताल्या बेचारी का ख़्याल गलत था। इसकी याददाश्त काफी तेज़ है... हाँ, तू पढ़ता जा नकचप्पे!"

इसके बाद उन्होंने मुझे मज़ाक करते हुए पलँग से नीचे ढकेलकर कहा :

"अब काफी हो गया। कल तू मुझे पूरी वर्णमाला सुनाना। अगर एकदम सही-सही सुनायेगा, तो पाँच कोपेक इनाम मिलेगा..."

मैं क़िताब लेने लगा, तो उन्होंने मुझे नजदीक खींच लिया और उदास होकर बोले :

"तेरी माँ ने तो तुझसे किनारा कर लिया, भैया..."

"बाबू! कैसी बात कर रहे हो तुम?" नानी बोली।

"दिल दुखता है, तो बोलता हूँ... कौन जानता था कि ऐसी लड़की भी कुराह थाम लेगी?"

यक़ायक़ मुझे ठेलते हुए उन्होंने कहा :

"जा, बाहर जाकर खेल! लेकिन आँगन और बगीचे में रहना, सड़क पर नहीं जाना। समझा न!"

अंधा क्या चाहे दो आँखें। बगीचे के लिए ही तो मेरा मन व्यग्र था। मैं जानता था कि मेरे नाले के किनारे पहुँचते ही लड़कों की टोली नीचे से ढेलों की वर्षा शुरू कर देगी। मैं ईंट का जवाब रोड़ो से देने को उत्सुक था।

"पिल्ला आया, पिल्ला आया!" मुझे देखते ही लड़के चिल्लाये और "मरम्मत करो! मरम्मत करो!" कहकर जल्दी-जल्दी गोला-बारूद जुटाने लगे।

'पिल्ले' का क्या खास अर्थ होता है, मुझे इसका ज्ञान न था, इसलिए यह विशेषण मुझे विशेष अपमानजनक नहीं मालूम हुआ। अलबत्ता एक साथ इतने विरोधियों के साथ मोरचा लेने में अपार आनन्द था। खासकर जब अपना ढेला निशाने पर सटीक बैठता और दुश्मनों की फौज भाग खड़ी होती या झाड़ियों में छिप जाती, तो मजा आ जाता। हम लोग लड़ते थे, पर मन में दुर्भावना लेकर नहीं और बाद में भी किसी के दिल में मैल नहीं रह जाता।

मैं पढ़ने में तेज़ निकला, इसी लिए शायद नाना मुझपर अधिक ध्यान देते थे। बेंत भी अब बहुत कम लगते थे, गोकि खुद मेरी राय में पहले से अधिक ऐसा होना चाहिए था। कारण कि अवस्था बढ़ने के साथ-साथ मैं अधिक निर्भीक होता गया, नाना के नियमों और आज्ञाओं का अक्सर उल्लंघन करने लगा था। किन्तु नाना अब केवल डाँट या धमकाकर छोड़ देते थे।

मेरे मतानुसार तो पहले वह मुझे अक्सर बिना वजह मारा करते थे। एक दिन मैंने यह बात उनसे कह ही दी।

धीरे से मेरी ठोड़ी पकड़कर उन्होंने मेरा सिर ऊपर किया और आँख मारकर बोले :

"क्या बोलता है बे!"

और हँसकर कहा :

"बड़ा गुस्ताख होता जा रहा है आजकल। कितनी बार तेरी ठुकाई होनी चाहिए, यह तू कैसे जानेगा? इसका फैसला मैं कर सकता हूँ, केवल मैं! भाग यहाँ से!"

मैं चलने को हुआ, तो उन्होंने मेरा कन्धा पकड़कर अपनी ओर घुमा लिया और आँखों में आँखें डालकर बोले :

"अच्छा यह बता, तू धूर्त है या सरलहृदय?"

"मैं नहीं जानता?"

"नहीं जानता? अच्छा तो मैं बता देता हूँ-धूर्त होना चाहिए। सरलहृदय होने से धूर्त होना अच्छा है। भेड़ सरलहृदय होती है। यह याद रखना। समझा? जा, अब खेल!"

उसके कुछ ही दिनों बाद मैं अक्षर जोड़-जोड़कर सॉल्टर* पढ़ने लायक हो गया। अक्सर शाम की चाय के बाद पढ़ाई आरम्भ होती और मुझे हर बार कोई न कोई भजन पूरे का पूरा पढ़कर सुनाना पड़ता था।

भजन की पाँति के एक-एक अक्षर पर तर्जनी बढ़ाते हुए मैं हिज्जे करता : "'म' से मछली, 'उ' से उल्लू, 'ब' से बताशा, 'अ' से आलू, 'र' से रायता, 'इ' से इमली, 'का' से काग। यह तो हुआ 'मुबारिक'। फिर, 'हा' से हाथी, 'व' से वालदा-'हैं' वे; मुबारिक-हैं-वे। 'मुबारिक हैं वे लोग...'"**

रटाई के कारण ऊबकर मन में तरह-तरह के सवाल उठने लगे। मैंने पूछा :

"कौन मुबारिक हैं? याकोव मामा?"

"लगाऊँगा कसके तमाचा सिर पर। फिर पता चल जायेगा कि कौन मुबारिक हैं।" नाना ने बिगड़कर, नथुने फड़काते और नाक से खर्र-खर्र आवाज़ करते हुए कहा। मगर मुझे पता चल गया कि उनका यह बिगड़ना बनावटी था, आदतवश और केवल दिखावे के लिए।

मेरा यह सोचना गलत न था। दो क्षण के बाद नाना मेरी ओर ध्यान दिये बिना आप ही आप बड़बड़ाने लगे :

"बात बिल्कुल ठीक है। गाना, नाचना और गिटार बजाना हो, तो हज़रत बिल्कुल राजा दाऊद बन जाते हैं, लेकिन काम के वक़्त अब्बशेलोम*** से भी बदतर। नाचो, गाओ, खेल दिखाओ और कूल्हा मटकाकर लोगों का मन बहलाओ-बस इतना ही है! ऊँह! गा रहा था : 'नाचो रे हरे-हरे खेत में!' अरे बाबा, ऐसे नाचते रहने से आदमी बना जा सकता हो तब न!"

मैं पढ़ाई छोड़कर उनकी ओर देखने लगा। मुँह पर चिन्ता की झुर्रियाँ थीं। भौंहों पर बल और नज़र मानो कहीं दूर गड़ी हुई। आँखों में उदासी छायी हुई थी, जिसने आकृति की सहज कठोरता को बर्फ़ के समान पिघला दिया था। उँगलियाँ मेज पर हल्के-हल्के ताल दे रहीं थीं। ताल देने से रंग लगे नाखून चमक रहे थे। सुनहरी भौंहें

---

* सॉल्टर-बाइबिल के भजनों की पुस्तक, जो हिन्दी में 'भजन-संहिता' के नाम से छपी है।

** 'भजन-संहिता' के तीन-चार शब्द। अनुवाद की सुविधा के लिये शब्द उर्दू सॉल्टर से लिये गये हैं। हिन्दी सॉल्टर में पादरी लोग 'मुबारिक' के बदले 'धन्य' शब्द चलाते हैं।

*** राजा दाऊद और अब्बशेलोम-बाइबिल की कथाओं के पात्र।

काँप रही थीं। मैंने कहा :

"नाना!"

"क्या है?"

"कोई कहानी कहिए।"

"पढ़! कामचोर कहीं का। भजन में मन नहीं लगता? जब देखो परियों की कहानी चाहिए," आँख मलते हुए उन्होंने कहा, मानो नींद से जागे हों।

मेरा ख़्याल था कि स्वयं उन्हें भी सॉल्टर से परियों की कहानियाँ अधिक पसन्द है। यह दूसरी बात है कि भजन की पूरी क़िताब उन्हें कण्ठस्थ थी और शाम को सोने के लिए जाने से पहले वह नियमपूर्वक उसके एक भाग का उसी तरह पाठ करते थे, जिस तरह पादरी गिरजाघर में स्तोत्र-पाठ करता है।

मैंने कहानी के लिए हठ पकड़ लिया और अन्त में बूढ़े को मेरी बात माननी पड़ी।

"ठीक ही है। सॉल्टर तो जन्म भर तेरे साथ रहेगी, मगर नाना की कहानी जल्द ही उनके साथ स्वर्ग चली जायेगी।"

कुर्सी की पीठ पर झुककर उन्होंने गर्दन पीछे की ओर तान ली और आँखें छत पर गड़ाकर भूली-भटकी यादों में डूब गये। विचारक्रम चलने लगा-"एक बार बाल्ख़्ना में जायेव नाम के महाजन के घर डाकुओं ने हमला किया। मेरे परदादा गुहार के लिए घण्टा बजाने गिरजाघर की ओर दौड़े, पर डाकुओं ने दौड़कर बीच ही में पकड़ लिया और तलवार से टुकड़े-टुकड़े कर दिये और लाश को उठाकर घण्टाघर से नीचे फेंक दिया।

"उस वक़्त मैं बहुत छोटा था। मैंने इस घटना को अपनी आँखों से नहीं देखा था और न मुझे यह याद ही है। मुझे फ्रांसीसियों के हमले के समय की बातें याद हैं। सन् 1812 में मैं 12 साल का था। 30 फ्रांसीसी कैदियों को हाँककर लोग बालाख़्ना में भी ले आये-सभी मरियल जैसे। उनकी पोशाक भी अजीब थी। जिसके जो हाथ लगा, वही पहन लिया था। उनकी हालत भिखमँगों से भी बदतर थी। सभी जाड़े में ठिठुरे हुए थर-थर काँप रहे थे। कुछ को तो हाथ-पैरों में पाला मार गया था। वे बेचारे खड़े भी नहीं रह सकते थे। गाँववाले सब को खत्म कर देने पर तुले थे, पर पहरे के सिपाहियों ने रोका। फौज भी तब तक आ गयी और गँवारों को भगा दिया। इसके बाद वे कैदी शहरी लोगों से हिलमिल गये। फ्रांसीसी बड़ी मस्त तबीयत के थे। मौज़ आती तो वे अपनी भाषा में गीत सुनाना शुरू कर देते। नीज़्नी नोव्गोरोद के बड़े-बड़े घरानों के लोग उन्हें देखने को आया करते थे-कोई चौकड़ी पर, कोई घोड़े पर। कुछ लोग फ्रांसीसियों को गाली देते थे, पीटने की धमकी देते थे और कभी-कभी एकाध हाथ जमा भी देते थे। और कुछ लोग उनसे उनकी भाषा में प्रेमपूर्वक बातें करते थे, पुराने कपड़े, पैसे आदि देकर उन्हें ढाढ़स बँधाते थे। उनमें से एक बूढ़े महानुभाव की

मुझे खास तौर पर याद है। वह तो मुँह ढककर रोने ही लगा, बोला, 'देखो, उस शैतान के बच्चे नेपोलियन ने अपने देशवासियों का क्या हाल कर दिया है!' अजीब आदमी था-रूसी और वह भी रईस, पर उसका दिल पराये लोगों के लिए ऐसे द्रवित हो उठा..."

एक क्षण के लिये कहानी रुक गयी। नाना ने आँखें बन्द कर लीं और बाल सहलाने लगे। इसके बाद फिर आख्यायिका आरम्भ हुई-रुक-रुककर, सोचते हुए, पुरानी याददाश्तों की पोटली को टटोलते हुए।

"बाहर भयानक जाड़ा पड़ रहा था। बड़े ज़ोर से बर्फीली आँधी चल रही थी। फ्रांसीसी मेरे घर की खिड़की के बाहर खड़े होकर माँ को पुकार रहे थे। माँ पावरोटियाँ बनाकर बेचती थी। वे बाहर खड़े होकर पावरोटी माँग रहे थे और पैर पटक रहे थे। माँ उन्हें कभी अन्दर नहीं आने देती; खिड़की से ही पावरोटी थमा दिया करती थी। चूल्हे से ताजा निकली, गरमा-गरम पावरोटी वे लपककर हाथ में ले लेते थे और उसे कमीज के नीचे, कलेजे के पास अपने पाले से ठिठुरे शरीर से सटा लेते थे। वे कैसे यह सह लेते थे, समझना सम्भव नहीं। उनमें से कई शीत से मर गये। गरम देश के रहनेवाले, जाड़ा उनसे बर्दाश्त नहीं हुआ। दो हमारे घर के बगीचे में गुसलखानेवाली कोठरी में रहा करते थे-एक अफ़सर था और दूसरा उसका अरदली। उसका नाम था मिरोन। अफ़सर दुबला-पतला और लम्बा था। उसका शरीर हाड़ मात्र रह गया था। कहीं से उसे एक जनाना लबादा मिल गया था, जो घुटनों तक ही आता था। दिल का वह बड़ा नेक था, पर एक नम्बर का पियक्कड़। मेरी माँ चोरी-छिपे बियर बनाकर भी बेचती थी। वह बियर खरीदकर पीते-पीते नशे में धुत्त हो जाता और अपनी भाषा के गीत गाने लगता। थोड़ी-थोड़ी रूसी भी सीख गया था और कहता था : 'तुम्हारा मुल्क़ सफेद नहीं, काला और कठोर है!' बिल्कुल टूटी-फूटी जबान बोलता था, लेकिन मतलब समझ में आ जाता था। और वह सच ही बोलता था-हमारे प्रदेश के उत्तरी भागों में सचमुच सौम्यता नहीं है। वोल्गा के दक्षिण में जाओ, तो गरम और मुलायम धरती मिलती है। कास्पियन सागर के पास तो बर्फ़ का नामोनिशान भी नहीं मिलेगा। ईसा का जन्म उसी धरती में हुआ था। यही कारण है कि बाइबिल या सॉल्टर में कहीं बर्फ़ या शीत का प्रसंग नहीं आता... जल्दी ही सॉल्टर खत्म करके हम लोग बाइबिल आरम्भ करेंगे।"

नाना फिर चुप हो गये, मानो ऊँघ आ गयी। किसी विचार में खोये हुए, पलकें समेटे और खिड़की के बाहर दृष्टि गड़ाये, पूरी देह सिकुड़ी हुई और एक बिन्दु पर स्थित।

"आगे सुनाइये, नाना," मैंने कहा।

वह चौंककर बोले :

"अरे हाँ! क्या कह रहा था मैं? फ्रांसीसियों के बारे में? हाँ तो, वे बेचारे भी

इंसान हैं, हमारे जैसे ही, गुनहगार। वे मेरी माँ को 'मदम, मदम' कहा करते थे। 'मदम' का अर्थ हुआ मेरी देवी जी, पर उनकी 'देवी जी' ऐसी थी कि दो मन आटे का बोरा पीठ पर लादकर टहलती हुई घर चली आती थी। उसके शरीर में बैल जैसी ताक़त थी। मुझे तो बीस बर्ष की उम्र तक वह बाल पकड़कर झकझोरा करती थी, गोकि मैं खुद उन दिनों कम ताक़तवर न था। मिरोन, जो अरदली था, घोड़ों को बहुत प्यार करता था। वह लोगों के घर चला जाता और इशारे से कहता कि अपने घोड़े को खरहरा करने दो। पहले तो लोग घबराते थे, सोचते थे दुश्मन देश का आदमी है, कहीं घोड़ा खराब न कर दे। पर कुछ दिनों के बाद किसान लोग खुद उसे बुलाने लगे। वे पुकारते, 'ऐ मिरोन!' और वह सुनते ही हँसते हुए बेतहाशा दौड़ता। उसके बाल गाजर की तरह लाल, नाक खूब बड़ी और होंठ मोटे-मोटे थे। वह लाज़वाब साईसी जानता था। घोड़ों की हर बीमारी का भी इलाज उसे मालूम था। बाद में वह यहाँ नीज़्नी नोव्गोरोद में घोड़ों का चिकित्सक बन गया, पर बेचारा पागल हो गया। दमकलवालों ने उसे पीटते-पीटते मार डाला। जो अफ़सर था, उसे वसन्त ऋतु आते-आते न जाने क्या हो गया। वह रोगी जैसा रहने लगा और सन्त निकोलाई के पर्व के दिन उसकी मृत्यु हो गयी। बड़ी शान्त मौत हुई उसकी। गुसलखाने की खिड़की पर बैठा हुआ था, मानो सपने में लीन, और अचानक खत्म। सिर खिड़की से बाहर निकला हुआ था। मुझे उसके लिए बड़ा अफसोस हुआ। मैं रोने लगा। बड़ा भला आदमी था। हाथों में मेरे दोनों गाल लेकर वह कान में अपनी भाषा में न जाने क्या-क्या कहा करता था। उसके शब्द समझ में न आते, पर सुनने में अच्छे लगते थे। मानवीय प्यार मुँहमाँगे नहीं मिलता। बेचारे ने एक बार मुझे अपनी भाषा सिखानी शुरू की, पर माँ ने मना कर दिया। वह मुझे पादरी के पास भी ले गयी। उसने कहा कि इसे खूब पीटो और अफसर के बारे में उसने सरकार में शिकायत कर दी। उन दिनों लोग कठोर हुआ करते थे, भाईजान! हम लोगों पर जैसी पड़ी है, वह तुम लोग समझ भी नहीं सकते। तुम लोग तो बच गये, तुम्हारे बदले दूसरे ही तप लिये। यह बात कभी मत भूलना। मुझको ही ले ले। क्या-क्या नहीं झेलना पड़ा है मुझे!"

अँधेरा हो गया और ऐसा मालूम पड़ा कि अँधेरे में नाना का व्यक्तित्व रहस्यमय ढँग से विस्तीर्ण हो गया-विशाल। अंधकार में उनकी आँखें बिल्ली की आँखों की तरह चमक रही थीं। सोच-सोचकर, शब्दों को तौल-तौल, धीरे-धीरे वह अपनी कहानी कह रहे थे। जब उसमें खुद उनकी अपनी चर्चा आ जाती, तो वह जोश में आ जाते और अभिमान के साथ बोलते। अपने बारे में उनका बोलना और बार-बार हिदायत करना भी मुझे अच्छा न लगता :

"हाँ, इसे याद रख। इस बात को भूलना मत," आदि।

बहुत बातें उनकी ऐसी थीं, जिन्हें मैं भूल सकता तो खुशी से भूल जाता। पर वे गरम सलाखों के दागों की तरह मेरे मस्तिष्क में बैठ गयी हैं। उनके लिए नाना के

उपदेश और चेतावनियों की भी ज़रूरत नहीं। वह परियों के किस्से नहीं सुनाते थे, कभी नहीं। उनकी कहानियाँ सच्ची घटनाओं से सम्बन्धित होती थीं। सवाल पूछने पर वह खीझ उठते थे, इसी लिए मैंने जान-बूझकर सवाल पूछा :

"रूसी अच्छे होते हैं या फ्रांसीसी?"

"यह कौन कह सकता है? मैंने फ्रांसवालों के देश में जाकर तो उन्हें देखा नहीं है," उन्होंने चिढ़कर जवाब दिया। फिर बोले :

"अपने बिल में तो चूहा भी भला होता है..."

"क्या रूसी लोग भले हैं?"

"कुछ लोग भले हैं, कुछ नहीं भी हैं। गुलामी के जमाने में वे आज से अच्छे थे-तपे लोहे की तरह। अब बेड़ियाँ तो खुल गयी हैं, पर पेट में दाना नहीं है। रईसों में दया नहीं है, पर किसानों की तुलना में कम से कम बुद्धि तो उनमें ज्यादा है। सभी पर यह बात लागू नहीं होती है, पर यदि रईस भला है, तो बहुत भला है। मगर कभी-कभी तो रईस भी निरे बुद्धू होते हैं, बोरी की तरह खाली, जो कुछ भी चाहो उसमें ठूँस दो। हमारे यहाँ तो खोलों की भरमार है। देखने में भला आदमी लगता है, पर निरा खोल ही निकलता है, भीतरी गिरी तो होती नहीं। अन्दर ही अन्दर कीड़े सब खा गये हैं, खाली खोल रह गया है। असल में हम लोगों को थोड़ी शिक्षा की ज़रूरत है, जिससे मोटी बुद्धि तेज़ हो, पर मोटी बुद्धि तेज़ करें तो किस चीज़ पर.. ."

"क्या रूसी ताक़तवर हैं?"

"कुछ हैं भी, लेकिन ताक़त असल चीज़ नहीं है। असल चीज़ है चतुराई। आदमी में कितनी भी ताक़त क्यों न हो, घोड़े से कम ही ताक़तवर होगा।"

"फ्रांसीसियों ने हम लोगों से लड़ाई क्यों की?"

"यह तो भाई, जार जाने। लड़ाई-भिड़ाई का मामला वही जानता है। हमारे-तुम्हारे जैसे मामूली लोग उसका कारण भला क्या समझ सकते हैं?"

पर एक दिन जब मैंने पूछा कि नेपोलियन कौन था, तो नाना से उसका जो ज़वाब मिला, उसे मैं कभी नहीं भूल सका। वह बोले :

"नेपोलियन एक दिलेर आदमी था, जो सारी दुनिया को जीतना चाहता था, ताकि सब लोग समान होकर जीवन बिता सकें। न कोई हाकिम रहे, न लाट-सभी एक जैसे हो जायें, नाम अलग ही अलग रहें, पर अधिकार सभी के बराबर हो जायें और हर आदमी का मज़हब भी एक हो। बेकार की बातें थी ये, क्योंकि एक जैसे तो केवल केकड़े हाते हैं। मछली तक में अलग-अलग किस्में होती हैं। कोई किसी का नहीं। रोहू झींगे को पाये, तो खा जाये, और स्टर्जन हेरिंग को निगल जाती है। हमारे मुल्क में भी नेपोलियन हुए हैं, जैसे स्तेपान राजिन या येमेल्यान पुगाचोव। इन लोगों का किस्सा किसी दूसरे दिन सुनाऊँगा..."

कभी-कभी नाना आँखें फाड़कर बड़ी देर तक इस तरह घूरने लगते थे, मानो पहली बार देख रहे हों। मुझे यह ज़रा भी अच्छा नहीं लगता था।

लेकिन माँ और पिताजी के बारे में नाना मुझसे कभी कुछ नहीं कहते थे।

हम लोगों के ऐसे वार्तालापों के समय नानी भी अक्सर आ जाती थी। वह चुपचाप कोने में बैठ जाती और वहीं से हमारी बातें सुनने लगती। हठात् बीच में वह अपनी मीठी आवाज़ में पूछ बैठती :

"बाबू! याद है, उस बार हम लोग पूजा करने मूरोम नगर गये थे, तो कितना आनन्द आया था? कौन साल था वह?..."

"साल तो ठीक से याद नहीं है, लेकिन हैजे के पहले ही था, उसी साल सिपाहियों ने ओलोनेत्स प्रदेश के लोगों को पकड़ने के लिए जंगल छान डाला था।"

"ठीक है। याद है मुझे। कितना डर गये थे हम लोग उन दिनों..."

"हुँ!"

मैंने पूछा, ये लोग कौन हैं और जंगल में क्यों छिपे थे। नाना ने मन मारकर जवाब दिया :

"ये लोग सरकारी भूदास थे, जो कारखानों से काम छोड़कर भाग गये थे।"

"फिर उन्हें पकड़ा कैसे?"

"कैसे पकड़ा? आदमी कैसे पकड़े जाते हैं? वैसे ही जैसे लड़के खेल में पकड़े जाते हैं-कुछ भागकर छिप जाते हैं, कुछ उन्हें पकड़ते हैं। पकड़े जाने पर उनकी कोड़ों और बेंतों से खूब पूजा होती थी। कभी-कभी नाक छेद दी जाती थी और लोगों को यह बताने के लिए कि ये भगोड़े हैं माथा दाग दिया जाता था।"

"ऐसा क्यों करते थे?"

"कौन जानता है? सारा मामला ही गोलमाल था और यह कहना कठिन है कि कसूरवार कौन था-भागनेवाले या पकड़नेवाले..."

यक़ायक़ नानी फिर बीच में पूछ बैठी :

"बाबू! याद है वह समय, जब बड़ी आग लगी थी?"

"कौन-सी बड़ी आग?" नाना ने सही तौर पर बात जानने के लिए ज़ोर देते हुए पूछा।

दोनों बीते दिनों की स्मृतियों में ऐसे डूबे कि मेरी उपस्थिति को भी भूल गये। उनका शान्त स्वर सम-सुरों में प्रवाहित हो रहा था। कभी-कभी ऐसा भास होने लगता था कि वे लय-ताल में गीत गा रहे हों-अग्निकाण्डों, बीमारियों और मनुष्यों की पीठ पर पड़नेवाले कोड़ों के गीत। दुर्घटना से आकस्मिक मृत्युओं, ठगी के हथकण्डों, धार्मिक उन्मादियों और क्रोधी रईसों के गीत।

"क्या कुछ नहीं देखा-सुना हम लोगों ने," नाना स्वतः बोले।

"और कुछ बुरी ज़िन्दगी नहीं काटी है हमने... उस साल का वसन्त याद है, जिस साल वर्वारा का जन्म हुआ था-कैसा शानदार वसन्त था!" नानी ने कहा।

"वह सन् 1848 का साल था। उसी साल हंगरी पर हमला हुआ था। वर्वारा के बपतिस्मा से दूसरे ही दिन उसके धर्मपिता तीखोन जबर्दस्ती फौज में भरती कर लिये गये थे..."

"हाँ, और वह फिर लौटकर नहीं आये," नानी ने आह भरकर कहा।

"नहीं ही आये। और उसी वक़्त से प्रभु की छाया भी हम लोगों के ऊपर से उठ गयी। ओह, वर्वारा भी..."

"बाबू छोड़ो भी..."

"छोड़ो क्यों?" नाना ने बिगड़कर कहा। "सभी लड़के बद निकल गये-एक-एक करके सभी। सभी न्यारे। हम लोगों की सारी साधना निष्फल गयी। सोचा था कि मज़बूत हाण्डी में सब कुछ सँजो रहे हैं, पर प्रभु की मर्जी, उसने हाण्डी की जगह हाथ में छलनी थमा दी। सब कुछ संजोया वह गया..."

वह चिल्ला उठे, मानो किसी ने छाती से गर्म सलाख छुआ दी हो। कमरे में नाच-नाचकर, छाती पीट-पीटकर उन्होंने अपने बेटे-बेटी को कोसना और अपनी दुबली मुट्ठियाँ बाँधकर नानी को धमकाना शुरू किया :

"और यह सब तेरी ही करनी है। तूने ही लाड़-प्यार से सबको बिगाड़ दिया। तू ही डायन है!"

व्यथा के आवेश में वह देव-प्रतिमाओं वाले कोने में चले गये और वहीं अपनी पतली छाती को ज़ोर-ज़ोर से पीटने तथा आँसू बहाने लगे :

"भगवान! प्रभु! क्या मैं ही सबसे गया-गुज़रा हूँ?"

उनकी भीगी आँखें व्यथा और रोष से चमक रही थीं। शरीर काँप रहा था।

नानी अँधेरे में बैठी चुपचाप सलीब के निशान बना रही थी। अन्त में वह उठकर उनके पास गयी और मीठे स्वर में बोली :

"अपने को यंत्रणा देने से लाभ? सब काम प्रभु की इच्छा से होता है। हमारे ही बेटे-बेटियाँ सब से गये-गुजरे तो नहीं हैं। घर-घर का यही लेखा है-वही लड़ाई-झगड़ा, मार-पीट और चुग़लखोरी। अपनी करनी, अपने आँसू। सभी माँ-बाप अपना बोया काटते हैं। तुम्हीं कुछ न्यारे नहीं हो..."

इन शब्दों से कभी-कभी उन्हें सच्ची सांत्वना प्राप्त होती थी। वह शान्त हो जाते थे और चुपके से आकर बिस्तर पर लेट रहते थे। इसके बाद मैं और नानी दबे पाँव बरसाती में चले जाते थे।

लेकिन एक बार जब नानी इसी तरह ढाढ़स बँधाने उनके पास गयी, तो उन्होंने उसके मुँह पर तड़ाक से मुक्का जड़ दिया। नानी गिरते-गिरते बची, लड़खड़ायी, होंठों पर हाथ रखकर थोड़ा सम्भली और इसके बाद उसने धीमे, शान्त स्वर में कहा :

"मूर्ख कहीं का..."

और नाना के पैरों पर मुँह से निकलते खून का एक कुल्ला फेंक दिया। वह मुट्ठी तानकर दो बार ज़ोर से चिल्लाये :

"निकल यहाँ से, नहीं तो आज तुझे जान ही से मार डालूँगा!"

"मूर्ख!" नानी ने दरवाज़े की ओर जाते हुए फिर कहा। नाना आपे से बाहर होकर उसकी ओर लपके, पर वह शान्त कदमों से चौखट से बाहर निकल गयी और ठीक नाना के मुँह के सामने ज़ोर से दरवाज़ा दे मारा।

"बुढ़िया कुत्ती!" नाना आग-बबूला होकर गरजे और दरवाज़े को नाखून से नोचने लगे। उनका चेहरा लाल तवे जैसा हो रहा था।

मैं अलावघर से लगे चबूतरे पर बैठा हुआ यह सब कुछ देख रहा था। काटो तो खून नहीं। अपनी ही आँखों पर विश्वास नहीं हो रहा था। आज पहले-पहल मेरे सामने उन्होंने नानी को पीटा था। यह काण्ड देख मैं मानो गड़ा जा रहा था। आज मुझे उनके चरित्र का एक नया पहलू मालूम हुआ-ऐसा पहलू, जो सरासर अनुचित और अन्यायपूर्ण था और जिसे आँखों से देखने के बाद मुझे ऐसा लगा कि किसी ने मानो बोझ डालकर मेरा सीना कुचल दिया है। वह दरवाज़े की चौखट पकड़े खड़े थे। धीरे-धीरे चेहरे की तमतमाहट दूर हो रही थी और उसकी जगह सफेदी छाती जा रही थी, मानो किसी ने सिर से पैर तक राख मल दी हो। हठात् वह कमरे के बीच आकर दोनों हाथों के बल फ़र्श पर गिर पड़े। एक क्षण बाद सीधे होकर दोनों हाथों से छाती पीटने लगे :

"ओह, भगवान! भगवान!"

अलावघर के चबूतरे की गरम ईंटों को बर्फ़ की सिल्लियों की तरह अनुभव करते हुए मैं उनपर से उतरकर भागा कोठे पर। नानी मुँह में कुल्ला लेकर चहलकदमी कर रही थी। मैंने पूछा :

"दुख रहा है?"

कोने में रखी बाल्टी में मुँह का पानी थूकते हुए वह शान्त स्वर में बोली :

"कुछ नहीं। दाँत नहीं टूटा है। केवल होंठ कट गया है, ज़रा-सा।"

"नाना ऐसा क्यों करते हैं?"

खिड़की के बाहर झाँकते हुए उसने कहा :

"क्रोध आ गया और क्या! बूढ़े आदमी और दुख पर दुख बर्दास्त के बाहर हो जाता है कभी-कभी... तू सो रह और भूल जा इन बातों को..."

मैंने कुछ और पूछा, पर वह हठात् बिगड़कर बोली :

"सुना नहीं तूने। सो रहने को कहा है न मैंने। बिल्कुल जिद्दी लड़का हो गया है..."

वह खिड़की के पास बैठकर होंठ चूसती और रह-रहकर रुमाल में थूकती रही।

मैं कपड़े उतार रहा था और उसकी ओर देखता जा रहा था। आकाश का एक तारों-जड़ा चौकोर टुकड़ा ठीक उसके सिर पर नज़र आ रहा था। बाहर निस्तब्धता का साम्राज्य था। और घर के अन्दर अँधियारी फैल रही थी।

जब मैं लेट गया, तो वह पास आयी और मेरा माथा सहलाते हुए बोली :

"सो जा, बेटे! सो जा। मैं नीचे उनके पास जा रही हूँ... नानी के लिए इतना अफसोस करने की ज़रूरत नहीं, मेरे लाल! मेरा भी कसूर है इसमें... सो जा।"

मेरा माथा चूमकर वह बाहर निकल गयी। मेरे मन में उदासी का सागर उमड़ पड़ा। ऐसा लगने लगा कि दम घुट जायेगा। गरम गुदगुदे बिछौने को छोड़ मैं खिड़की के दासे पर जा बैठा और अथाह व्यथा से परिपूर्ण बाहर सड़क को निहारने लगा।

6

जीवन ने फिर से एक भयानक रूप ले लिया। एक दिन शाम की चाय के बाद नाना के साथ मैं सॉल्टर पढ़ रहा था और नानी रकाबियाँ धो रही थी कि अचानक याकोव मामा बेतहाशा दौड़े हुए आये। उनके बाल जो यों ही सदा बिखरे रहा करते थे, आज घिसे झाड़ू की तरह लग रहे थे। टोपी एक कोने में डाल किसी को राम-सलाम किये बिना ही वह ज़ोरों से हाथ हिला-हिलाकर कहने लगे :

"बाबूजी! बाबूजी! मिख़ाईल का माथा आज गरम हो गया है। उसने मेरे यहाँ भोजन किया और शराब ढालते-ढालते यक़ायक़ पागलों जैसा व्यवहार करने लगा-रकाबियाँ पटक दीं, एक ग्राहक का ऊनी सूट फाड़ दिया, खिड़कियाँ तोड़ दीं और मुझे तथा ग्रिगोरी को गालियाँ बकने लगा। अब वह यहाँ आ रहा है। कह रहा था कि बाबूजी को आज न छोड़ूँगा। चिल्ला रहा था कि 'बुड्ढे की दाढ़ी का एक भी बाल न बाकी रहने दूँगा और उसे जान से ही मार डालूँगा!' आप सम्भलकर रहिये..."

नाना हाथों से मेज थामकर कठिनाई से खड़े हुए। चेहरा सिमटकर नाक पर आ गया; ऐसा लगने लगा जैसे कुल्हाड़ी का फल हो।

महीन आवाज़ में वह बोले :

"सुन रही हो न, वर्वारा की माँ! अपने ही बाप को खत्म करने आ रहा है तुम्हारा लायक बेटा। तो अब तैयार हो जाना चाहिये..."

छाती तानकर वह कमरे में चक्कर लगाने लगे। और तब दरवाज़े के पास जाकर उसे लोहे के एक मोटे डण्डे से बन्द कर दिया। वह याकोव से बोले :

"तुम दोनों की नीयत मैं खूब समझता हूँ। दोनों मिलकर वर्वारा का दहेज हड़पना चाहते हो, लेकिन तुम्हें मिलेगा, यह!" कहते हुए उन्होंने मामा के नजदीक जाकर अँगूठा दिखाया।

याकोव मामा उछलकर एक किनारे हो गये और रुष्ट स्वर में बोले :

"बाबूजी! आप नाहक मेरे ऊपर बिगड़ रहे हैं।"

"तुम्हारे ऊपर? अरे, मैं तुम्हारी भी रग-रग पहचानता हूँ।"

नानी जल्दी-जल्दी प्यालियों और रकाबियों को उठाकर आलमारी में बन्द कर रही थी। वह कुछ न बोली। याकोव ने कहा :

"मैं तो आपको बचाने आया हूँ।"

नाना तिरस्कारपूर्ण हँसी हँसकर बोले :

"शाबाश बेटे! धन्यवाद है तुम्हें। वर्वारा की माँ, ज़रा इस रँगे सियार के हाथ में हथौड़ा, चिमटा या लोहा थमा दो, फिर देखना इसका रँगा भाई उधर दरवाज़ा खोलेगा, और इधर यह मेरा कपाल चकनाचूर करेगा। मेरी रक्षा करेगा? बेटा याकोव वासील्येविच! मैं क्या तुम्हें नहीं पहचानता हूँ?"

मामा पतलून की जेब में हाथ डालकर चुपके से एक ओर को खिसक गये और बोले :

"आपको विश्वास ही नहीं है मेरा..."

"तेरा विश्वास?" नाना पैर पटककर ज़ोर से चिल्लाये, "मैं कुत्ते, बिल्ली, चूहे का विश्वास कर लूँगा, मगर तेरा नहीं। तूने ही शराब पिलाकर यह पट्टी पढ़ायी है-मैं जानता हूँ, यह तेरी ही करतूत है। अब तू तय कर ले-उसे मारेगा या मुझे?"

नानी ने चुपके से मेरे कान में आकर कहा :

"तू बरसाती में जाकर खिड़की से बाहर देखता रह। ज्योंही मिख़ाईल मामा आता दिखाई पड़े, हमें खबर देना। जा, जल्दी!"

मैं ऊपर दौड़ा और खिड़की के दासे पर बैठ रहा। गुस्से से पागल मामा यहाँ आने पर क्या-क्या करेंगे, इसका ख़्याल कर मुझे डर लग रहा था। साथ ही इतनी बड़ी ज़िम्मेदारी का काम सौंपे जाने पर गर्व भी मालूम हो रहा था। सड़क काफी चौड़ी थी। ऊपर धूल की मोटी तह थी, जिसके नीचे से गुमटों की भाँति पत्थर झाँक रहे थे। बायीं ओर एक नाला पार करती वह दूर 'जेल चौक' तक निकल गयी थी, जहाँ पुराने जेलखाने की चार कंगूरों वाली काली इमारत मिट्टीवाली ज़मीन पर मजबूती से तनी खड़ी थी। इस इमारत की शान निराली थी। उदास सौन्दर्य से ओत-प्रोत वह चौक में खड़ी थी। दाहिनी ओर हमारे मकान से तीन मकान बाद सेन्नाया चौक पड़ता था, जिसके दूसरी तरफ कैदियों के रहने को पीले रंग की बारिक बनी हुई थी। बीच में भूरे रंग की ऊँची मीनार थी, जिसके ऊपर साँकल में बँधे कुत्ते की तरह आग बुझानेवाला एक सन्तरी घूम-घूमकर पहरा दिया करता था। चौक में गढ़ों और नालियों की भरमार थी। एक गड्ढे की तह में कीचड़ और हरी काई जमी थी। दाहिनी तरफ दुर्गंधी द्यूकोव पोखरा था। जैसा नानी ने बतलाया था, इसी में जब बर्फ़ जमी हुई थी, मेरे मामा लोगों ने एक सूराख में मेरे पिताजी को ढकेल दिया था। खिड़की

के लगभग ठीक सामने एक सँकरी गली निकल गयी थी, जिसके दोनों तरफ छोटे-छोटे रंग-बिरंगे मकान थे। गली 'तीन सन्तों' के कम ऊँचे और तोंदल गिरजाघर में खत्म होती थी। सामने देखने पर घरों की छतें ऐसी मालूम होती थीं, जैसे बगीचों की हरी-हरी लहरों पर उलटी हुई किश्तियाँ।

सड़क पर के मकान, जिनका रंग जाड़े के लम्बे महीनों और पतझड़ की अनन्त बरसातों में धुलकर बदरंग हो चुका था, ऐसे लग रहे थे जैसे गिरजाघर के ओसारे में सटी सिमटी खड़ी भिखमँगों की जमात। अपनी उभरी खिड़कियों से मानो भीत दृष्टि से वे भी मेरी तरह किसी की प्रतीक्षा में झाँक रहे थे। सड़क सुनसान थी, इक्के-दुक्के मुसाफिर इस तरह रास्ता पार कर रहे थे, जैसे अलावघर पर तिलचट्टे-धीरे-धीरे, इत्मीनान से। खिड़की के ठीक नीचे से दम घोंटनेवाली गरम भाप उठ रही थी, जिससे प्याज और गाजरभरी कचौरियों की तीखी गन्ध आ रही थी। इस गन्ध से मुझपर अब भी उदासी-सी छा जाती है।

सारा दृश्य देखकर मेरा दिल बैठा जा रहा था। ऐसा मालूम हो रहा था कि कलेजे में गलाया हुआ गर्म शीशा भर दिया गया है, जो धमनियों में दौड़कर मेरी पसलियों और छाती को चूर किये डाल रहा है। ऐसा लगने लगा कि मैं पानी के बुलबुले की तरह फैलता जा रहा हूँ और इतना फैल जाऊँगा कि ताबूतनुमा इस छोटे-से कमरे में समा न सकूँगा।

अचानक मिख़ाईल मामा दिखाई पड़े। वह बगलवाली गली के नुक्कड़ पर भूरे मकान की आड़ से झाँक रहे थे। अपनी टोपी उन्होंने माथे तक सरका ली थी, जिससे कनौतियाँ झाँक रही थीं। वह छोटा-सा भूरा कोट और घुटनों तक के बूट पहने थे, जो धूल से लथपथ थे। एक हाथ चारखानेवाले पतलून की जेब में था, दूसरा दाढ़ी पर। उनका चेहरा नहीं दिखाई पड़ रहा था, पर वह इस तरह खड़े थे, मानो छलाँग मारकर अपने काले रोयेंदार खूँखार पंजों से नाना के घर का गला दबोच देंगे। मुझे फौरन दौड़कर नीचे ख़बर देनी चाहिए थी, पर पाँव मन-मन भार के हो गये और मैं खिड़की पर ही बैठा रहा। दबे पाँव, मानो भूरे बूटों को गर्द से बचाने के लिए, मामा ने सड़क पार की। इसके बाद शीशों की झनझनाहट और चूलों की चूँ-चर्र के साथ मधुशाला के दरवाज़े के खुलने की आवाज़ आयी।

मैं नीचे भागा और नाना का दरवाज़ा खटखटाने लगा।

उन्होंने अन्दर से कड़ी आवाज़ में पूछा :

"कौन है? अच्छा तू! क्या कहा? मधुशाला में घुसा है? अच्छी बात है। बरसाती में चला जा फिर से।"

"मुझे डर लग रहा है..."

"डरने से क्या होगा?"

मैं चला गया। शाम का अँधेरा फैल रहा था। सड़क की धूल अधिक घनी तथा

काली होती गयी। घरों की खिड़कियों में पीले चिराग जल उठे। उस पारवाले मकान से गिटार की दर्दभरी तान सुनायी पड़ रही थी। मधुशाला के अन्दर कोई गा रहा था। दरवाज़ा खुलने पर गानेवाले की आवाज़ उड़कर खिड़की के पास आ जाती। गीत का टूटा, थका-हारा स्वर सुपरिचित था। काना फकीर निकीतुश्का गा रहा था। बूढ़े निकीतुश्का की लम्बी दाढ़ी थी। एक आँख उसकी मुँदी हुई थी, मानो ताला जड़ दिया हो। दूसरी अँगारे की तरह लाल। दरवाज़ा बन्द होने पर गाना बीच से कट जाता, मानो कुल्हाड़ी से बेलाग कट गया हो।

नानी को इस फक़ीर से ईर्ष्या होती थी। जब भी उसका गीत सुनती, वह ठण्डी साँस भरकर कहती थी :

"कितने बढ़िया गीत जानता है वह!"

अक्सर वह उसे आँगन में बुलाती। ओसारे में छड़ी का सहारा लेकर निकीतुश्का बैठ जाता और अपने गीत तथा पद सुनाने लगता। नानी नजदीक बैठकर सुनती जाती। बीच में कभी टोककर पूछ बैठती :

"क्या, माँ मरियम रियाजान नगर में भी आयी थी?"

"वह कहाँ नहीं गयी? सभी प्रदेशों में गयी थी वह..." वह सरल विश्वास के साथ उत्तर देता।

धीरे-धीरे नींदभरी थकान सड़क को लीलने लगी। उसने मेरे वक्ष को भी दाब लिया और आकर बैठ गयी मेरी पलकों पर। काश, नानी भी आ जाती इस समय बरसाती में और नानी नहीं, तो नाना ही सही। कैसे आदमी रहे होंगे मेरे पिताजी कि मामा और नाना उनसे इतनी घृणा करते थे तथा नानी, ग्रिगोरी और येव्गेनिया धाई उनकी इतनी बड़ाई किया करते हैं? माँ कहाँ चली गयी?

इधर मुझे माँ की बहुत ज्यादा याद आने लगी थी। नानी की कहानियों की नायिका के रूप में उसी को पाता था। माँ इस परिवार के साथ नहीं रहना चाहती, इस बात ने मेरे दिल में उसकी इज्जत बहुत बढ़ा दी थी। कल्पनालोक में विचरता हुआ मैं उसे डाकुओं के बीच बैठी हुई देखता, जो अमीरों का धन लूटकर गरीबों को बाँट दिया करते हैं, किसी सराय या घने जंगल के अन्दर किसी गुफा में बैठी दिखाई पड़ती, जहाँ सहृदय डाकुओं का अड्डा है। वह उन्हें भोजन पकाकर खिलाती और उनके खजाने की रखवाली करती है। एक और रूप था, जिसमें वह दृष्टिगोचर होती-"डाकुओं की रानी" येगालिचेवा की भाँति, माता मरियम के साथ वह दुनिया का भ्रमण करती हुई छिपे खजानों का लेखा ले रही है और माता मरियम "डाकुओं की रानी" की तरह उससे कहती है :

लालच की पुतली!
धरम नहीं यह तो तेरा-धरती का सारा

सोना-रूपा ले उतार!
ऐ हड़प-खसोटन!
कभी नहीं यह होने का-
धरती के कोषों तले छिपा ले लाजभार!

माँ ने "डाकुओं की रानी" के शब्दों में जवाब दिया :

अब छिमा-छिमा! हे निष्कलंक क्वाँरी माता!
पातक-पंकिल मेरे अन्तर, इसपर पसीज!
अपने खातिर मैं कभी न करती लूटपाट
यह पूत, कलेजे का टुकड़ा इसपर न खीज!

यह सुनने के बाद माँ मरियम, जो मेरी नानी की ही भाँति दयालु थी, माँ को माफ कर देतीं और कहतीं :

ओ री तू गीदड़नी! ओ री तू मार्युश्का!
ओ री तू लाजहीन तातार! इतना सुन-
जाना है तो जा, अपनी ही राह भले जा तू
अपनी मंजिल चुन, अपनी क़िस्मत पर सिरधुन,
पर इतना कर, इस रूस भूमि के लोगों को
तो कभी न छू तू! कभी न छू! तू कभी न छू!
जंगल के रस्ते लग, कोई मोर्दवियन ठग,
जा स्तेपियों में जा, और घात लगा, जो चाहे तू
तो किसी कलमीक का ही पी ले लहू!

इन कहानियों की स्मृति में डूबता-उतराता मैं सपनों के देश में पहुँच गया। यक़ायक़ नीचे ड्योढ़ी और आँगन में ज़ोरों का हल्ला-गुल्ला उठा और मैं सपनों के देश से धमाके के साथ धरती पर आ गिरा। मैंने खिड़की से झाँका-नाना, याकोव मामा और मधुशाला का अजीब-सा, मारी जाति का नौकर मेल्यान, धक्के देकर मिख़ाईल मामा को फाटक के बाहर कर रहे थे। मामा अपने को छुड़ाने की कोशिश करते थे, पर वे लोग लातों, जूतों और हाथों से उनकी मरम्मत किये जा रहे थे। अन्त में वह सड़क की धूल में मुँह के बल गिर पड़े। फाटक जल्दी से बन्द कर लिया गया और उसमें ताला चढ़ा दिया गया। मामा की टेढ़ी-मेढ़ी हुई टोपी किसी ने अन्दर से सड़क पर उछाल दी। थोड़ी ही देर में निस्तब्धता छा गयी।

मामा कुछ देर ज़मीन पर पड़े रहे; इसके बाद उठे-धूलधूसरित, अस्तव्यस्त-और उन्होंने सड़क से एक पत्थर उठाकर फाटक पर दे मारा। खाली पीपे पर ताल देने से

जैसी झन्नाहट होती है, ढेला लगने पर फाटक से उसी तरह की आवाज़ आयी। अजीब साँवली-सी सूरतें मधुशाला से बाहर निकल आयीं और ज़ोर से हाथ चलाकर डाँटने-फटकारने लगीं। पड़ोस के मकानों की खिड़कियों से सिर निकालकर लोगों ने झाँकना शुरू किया। सड़क हँसी और कोलाहल से गूँज उठी। ऐसा लगा कि यह भी परियों की कहानी का ही एक अध्याय है-उसी तरह रोचक, किन्तु अप्रिय और लोमहर्षक।

अचानक चारों ओर नीरवता छा गयी। सभी लोग न जाने कहाँ चले गये; सड़क सुनसान हो गयी।

...दरवाज़े के पासवाले सन्दूक पर नानी बैठी थी-दोहरी और बिल्कुल निश्चल मानो साँस भी न ले रही हो। मैं सामने खड़ा उसके मुलायम, गर्म और भीगे गालों को थपथपा रहा था। पर उसे इसका एहसास ही नहीं था। घोर दुःख में डूबी, वह बड़बड़ाती जा रही थी :

"हे भगवान! बुद्धि बाँटते वक़्त क्या मेरा और मेरे बेटों का तुम्हें ख़्याल ही नहीं आया? भगवान, रक्षा करो..."

नाना पोलेवाया सड़कवाले इस मकान में मुश्किल से साल भर रहे होंगे-बस वसन्त से वसन्त तक। पर थोड़े ही दिनों के अन्दर हमारा घर पूरी बस्ती में बदनाम हो गया। लगभग हर रविवार को हमारे फाटक पर छोकरे जमा होते और तालियाँ पीटकर पूरे मुहल्ले में घोषणा करते :

"काशीरिनों के घर आज भी लड़ाई हो रही है!"

मिख़ाईल मामा प्रायः शाम को आते और रात भर मकान के गिर्द घेरा डाले रहते। सारे दरवाज़े और खिड़कियाँ बन्द कर ली जातीं। भीतर रहनेवालों को काटो तो लहू नहीं। अक्सर वह अपने दो या तीन साथियों को भी ले आते। ये कुनाविनो बस्ती के शोहदे थे। वे लोग नाले की तरफ से बाग में आ जाते थे और फिर नशे से विकृत उनका मस्तिष्क ऐसा नंगा नाच दिखाता था कि कुछ न पूछिये। एक बार उन्होंने रसभरी और दाख के कुंजों को नोच डाला। दूसरी बार वे गुसलखाने पर टूट पड़े और उसके अन्दर जो भी तोड़ने लायक चीज़ मिली, सब तोड़-फोड़ डाली-बेंच, कड़ाहा, यहाँ तक कि चूल्हा भी। फ़र्श में जड़े लकड़ी के कई तख़्ते उन्होंने उखाड़ दिये और चौखट समेत दरवाज़ा उतार लिया।

नाना खिड़की पर खड़े होकर अपनी जायदाद की बरबादी देख रहे थे और गुस्सा पी रहे थे। नानी बरबस आँगन में दौड़ी और अँधेरे में विलीन हो गयी। थोड़ी ही देर में उसकी आवाज़ सुनाई पड़ी। वह कह रही थी :

"मिख़ाईल! मिख़ाईल! यह क्या कर रहा है तू? ज़रा सोच तो!"

जवाब में गन्दी रूसी गालियों की एक बौछार सुनाई पड़ी। पता नहीं उन गालियों को मुँह से निकालने वाले जानवर खुद भी उसका अर्थ समझते थे या नहीं!

ऐसी घड़ी में नानी के साथ जाने का प्रश्न ही नहीं उठता था। पर उसके चले जाने से डर लगने लगा। मैं नीचे चला गया नाना के कमरे में।

"भाग यहाँ से, आँख का काँटा कहीं का," नाना ने डाँटते हुए कहा।

मैं फिर कोठे पर भागा और अँधकार में आँखें गड़ाकार बाग को देखने लगा। मैं रो-रोकर नानी को पुकार रहा था। मुझे डर लग रहा था कि वे लोग उसे मार डालेंगे। नानी ने मेरी आवाज़ नहीं सुनी, पर नशे में चूर मामा, ने मेरा स्वर पहचान कर मेरी माँ को दो-चार गन्दी-गन्दी गालियाँ दे डालीं।

ऐसी ही एक शाम को नाना की तबियत खराब थी। वह चारपाई पर पड़े करवटें ले रहे थे और रोनी आवाज़ में शिकवा-शिकायत कर रहे थे :

"हे भगवान, क्या यही देखना बदा था मुझे? क्या इसीलिए मैंने जान मारकर पैसा कमाया और अनगिनत पाप मोल लिये? घर की इज्ज़त का ख़्याल न होता, तो पुलिस को बुलाकर आज मैं उसे कटघरे में खड़ा करता... लेकिन यह बेइज्जती बर्दाश्त नहीं होगी। कौन माँ-बाप अपनी ही सन्तान को पुलिस के हवाले करते हैं? कोई नहीं। इसीलिये चुपचाप पड़ा रह, ऐ बुड्ढे! तेरा कुछ बस नहीं!"

यक़ायक़ पलँग से नीचे उतरकर वह लड़खड़ाते हुए खिड़की पर जा खड़े हुए। नानी ने दौड़कर उनका हाथ पकड़ लिया और बोली :

"कहाँ जा रहे हो तुम?"

"मेरे हाथ में चिराग दो," वह हाँफते हए चिल्लाये।

नानी ने मोमबत्ती जलाकर दी। उसे उसी तरह अपने सामने करके जैसे सैनिक बन्दूक ताने रखता है, उन्होंने खिड़की से मुँह चिढ़ाना शुरू किया।

"ऊँह!! मिख़ाईल चोट्टा है। खौरहा कुत्ता है! तू!.."

फौरन ईंट का एक अद्धा खिड़की का ऊपरी हिस्सा तोड़ता हुआ नानी के पास मेज पर आ गिरा।

"नहीं लगा। नहीं लगा!" कहकर नाना चिल्लाने लगे। उनके स्वर से पता लगाना मुश्किल था कि वह हँस रहे हैं कि रो रहे हैं।

नानी ने उन्हें जबरदस्ती अंक में भर लिया, मानो यह नाना न थे मैं था, और पलँग पर लिटाते हुए भयभीत स्वर में बोली :

"यह क्या कर रहे हो, यह क्या कर रहे हो तुम, भगवान तुम्हें अक़्ल दे! अगर कुछ हो गया, तो वह सीधा साईबेरिया भेज दिया जायेगा। उसे तो इस वक़्त इसका होश नहीं है!.."

नाना पलँग पर पड़ रहे। सिसकियों के कारण उनकी टाँगें हिल रही थीं :

"ठीक ही तो है। मार ही डालने दो मुझे..."

बाहर कोई ज़ोर से गरजने और पैर पटकने लगा। मैंने मेज से ईंट उठा ली और खिड़की की ओर दौड़ा। नानी ने मुझे पकड़ लिया और एक कोने में ठेलकर गुस्से से

बोली :

"उल्लू कहीं का, तेरा भी दिमाग खराब हो गया है क्या?"

एक बार मामा पीछे के ओसारे में चढ़ आये और ड्योढ़ीवाले दरवाज़े पर खड़े होकर बड़े डण्डे से उसे तोड़ने लगे। भीतर हॉल में नाना खड़े इंतजार कर रहे थे। हमारे मकान के दो किरायेदार भी उनके साथ थे। वे भी हाथ में डण्डे लिये हुए थे। इसके अलावा मधुशाला के मालिक की लम्बी-चौड़ी बीवी हाथ में बेलन लिये खड़ी थी। उन सब के पीछे मेरी नानी थी, जो बाहर जाने के लिए जिद कर रही थी :

"मुझे जाने दो! जाने दो उसके पास। बस दो बातें उससे कहूँगी..."

नाना लाठी ताने 'भालू का शिकार' नामक चित्र के देहाती की तरह एक पाँव आगे बढ़ाये खड़े थे। नानी उनके पास दौड़ी। उन्होंने बिना कुछ कहे पैर और कुहनी से उसे एक ओर ठेल दिया। चारों आदमी डरावना चेहरा बनाये मामा के घुसने की प्रतीक्षा कर रहे थे। दीवार पर एक लैम्प लटक रहा था, जो उनके सिरों पर अटपटी और हिलती-डुलती रोशनी डाल रहा था। मैं बरसाती की सीढ़ी पर खड़ा यह सब कुछ देख रहा था और जैसे-तैसे नानी को भी ऊपर ले आना चाहता था।

मामा ज़ोरों से दरवाज़ा पीट रहे थे। नीचे का कब्ज़ा टूटकर झनझन करने लगा था। सिर्फ ऊपर के कब्ज़े के सहारे दरवाज़ा टिका हुआ था। वह भी कड़कड़ा रहा था। नाना ने अपने हिमायतियों से वैसी ही झनझनाती आवाज़ में कहा :

"हाथ और टाँग पर मारियेगा, माथा बचाकर..."

दरवाज़े से सटी एक छोटी-सी खिड़की थी, जिसमें से किसी तरह केवल सिर निकाला जा सकता था। मामा उसका शीशा पहले ही चूर कर चुके थे, केवल किनारे-किनारे टूटे शीशे की नोकें बच रही थीं। अँधेरे में खिड़की ऐसी लग रही थी जैसे आँख का गड्ढा जिसमें से आँख निकाल ली गयी हो।

नानी अचानक उस खिड़की की ओर दौड़ी और हाथ बाहर निकालकर ज़ोर से चिल्लायी :

"मिख़ाईल! ईश्वर के लिए भाग यहाँ से। भाग, नहीं तो ये लोग तेरा हाड़-गोड़ तोड़ देंगे, तुझे ज़िन्दगी भर के लिए नाकारा कर देंगे!"

उसने नानी के हाथ पर एक डण्डा जड़ दिया। मुझे इतना ही दिखाई पड़ा कि कोई भारी चीज़ खिड़की के बाहर बिजली की तरह कौंधी और नानी के हाथ पर आ गिरी। नानी वहीं गिर गयी। उसके मुँह से फिर भी यही निकला :

"मिख़ाईल, भाग..." और वह बेहोश हो गयी।

नाना डरावनी आवाज़ में चिल्ला उठे :

"वर्वारा की माँ!!"

दरवाज़ा खुल गया और उस काली दरार से मामा अन्दर कूद आये, पर फौरन कूड़े की तरह ठेलकर उन्हें बाहर कर दिया गया।

मधुशाला के मालिक की बीवी नानी को नाना के कमरे में ले गयी। थोड़ी ही देर में नाना भी पहुँच गये। पास जाकर उन्होंने वेदनाभरे स्वर में पूछा :

"हड्डी टूट गयी है क्या?"

"लगता तो है," नानी ने आँखें खोले बिना जवाब दिया और पूछा, "उसका क्या हुआ? क्या किया तुम लोगों ने उसके साथ?..."

नाना ने बिगड़कर कहा :

"ज़रा समझ से काम ले। तुम मुझे निरा जानवर समझती हो क्या? उसे हाथ-पाँव बाँधकर हम लोगों ने ओसारे में डाल दिया है। मैंने उसके ऊपर पानी की पूरी बाल्टी उड़ेल दी। बिल्कुल राक्षस है वह, राक्षस! पता नहीं कहाँ से राक्षस का रक्त आया है उसके अन्दर?"

नानी पड़ी कराहती रही। नाना पास ही पलँग पर बैठ गये और बोले :

"हड्डी बैठानेवाली को बुलवा भेजा है। वह आ ही रही होगी। थोड़ी देर और बर्दाश्त करो। इन सब के रहते हम दोनों की जान जायेगी, वर्वारा की माँ! देख लेना तुम।"

"दे दो इन्हीं लोगों को सब कुछ," नानी बोली।

"और वर्वारा?"

वे बड़ी देर तक बातचीत करते रहे-नानी शान्त, वेदनापूर्ण स्वर में। नाना ज़ोर-ज़ोर से, गुस्से में।

कुछ देर बाद एक कुबड़ी बुढ़िया आयी। उसके मुँह की फाँक एक कान से दूसरे कान तक फैली हुई थी, निचला होंठ काँप रहा था और जल से बाहर पड़ी मछली के समान मुँह खुला हुआ था और ऊपर के होंठ पर से जाती हुई नाक उस तक पहुँच रही थी। उसकी आँखें कहाँ थीं यह पता नहीं चलता था। जीर्ण टाँगें मुश्किल से उठ पा रही थीं; यों कहें कि वह लकड़ी के सहारे रेंग रही थी। वह झन-झन का शब्द करती हुई एक गठरी हाथ में लिये थी।

मुझे लगा मानो साक्षात मौत ही नानी को लेने के लिए आयी हो। मैं दौड़ा उसकी तरफ और फेफड़े की पूरी ताक़त लगाकर चिल्लाया :

"भाग यहाँ से!!!"

नाना ने मुझे पकड़ लिया और घसीटते हुए कोठे पर ले गये।

7

एक बात मैं बहुत पहले ही समझ गया था। वह यह कि नाना और नानी के भगवान भिन्न थे।

सवेरे उठने पर नानी बड़ी देर तक चारपाई पर बैठी अपने अद्भुत बालों को

सँवारा करती थी। रेशम जैसे लम्बे काले लच्छों में वह दाँत पीस-पीसकर कंघा फेरती थी और इस डर से कि मैं जाग न जाऊँ, धीमे स्वर में उन्हें कोसती जाती थी :

"निगोड़े! ये झड़ते भी नहीं..."

बाल ठीक करने के बाद वह चोटी बाँधती और तब ज़ोरदार खाँ-खाँ खों-खों के साथ हाथ-मुँह धोती, लेकिन कुल्ला करने के बाद भी चेहरे की चिड़चिड़ाहट नहीं धुलती थी। नींद की खुमारी झुर्रियों के रूप में अब भी बाँकी रहती थी। इसके बाद वह देव-प्रतिमाओं के सामने झुककर प्रार्थना आरम्भ करती थी। इसी समय से उसकी आन्तरिक स्वच्छता का आरम्भ होता, जो फौरन उसे तरोताज़ा कर देती।

रीढ़ और गर्दन सीधी करके वह "कज़ान की कुमारी" के गोल मुखड़े को प्रेमपूर्वक निहारती और सलीब का निशान बनाते हुए अस्फुट श्रद्धापूर्ण स्वर में कहती :

"कह दे, माँ, कि आज का दिन भला बीते!"

इसके बाद फ़र्श पर माथा टेकती, फिर धीरे-से उठती और बढ़ती श्रद्धा के साथ कहती :

"तू आनन्दमयी है, परम सौन्दर्यमयी, हरे-भरे उद्यान की तरह उत्फुल्ल, माँ!.."

हर रोज़ स्तुति में वह नये विशेषण ढूँढ निकालती, इसलिए मैं मनोयोग के साथ उसके एक-एक शब्द को सुनता था।

"शुद्ध, पवित्र, मेरी प्यारी नभवासिनी! जीवन-ज्योति, मेरी गृहस्थी की रक्षक, स्वर्ग की ज्योति, तेज़मयी, निर्मल, प्रभु की श्रद्धेय माता, हमें बुराइयों से बचा, न मुझे किसी के दिल को ठेस लगाने दे और न अकारण मेरा ही अपमान होने दे..."

उसकी काली आँखों की अतल गहराई में मुस्कान छलकने लगती। अपने भारी हाथों से जब वह धीरे-धीरे छाती पर सलीब का चिह्न बनाती, तो ऐसा मालूम होता कि वृद्धावस्था चली गयी और जवानी लौट आयी है।

"प्यारे ईसा, ईश्वर के पुत्र, मैं बड़ी पापिन हूँ, अपनी माता मरियम के नाम पर मुझपर दया कर..."

उसकी प्रार्थना केवल भगवान की स्तुति होती, एक सरल सच्चे हृदय का उद्गार।

सुबह की प्रार्थना लम्बी नहीं होती थी। उस वक़्त समोवार जलाने की फिक्र सवार रहती थी, क्योंकि नाना अब नौकर या दाई नहीं रखते थे। सवेरे की चाय में ज़रा भी देर हो जाने पर वह गालियों से नानी की पूजा करते थे।

कभी ऐसा होता कि नाना की नींद पहले टूट जाती और वह कोठे पर आ जाते। यहाँ नानी की प्रार्थना चल रही होती। वह चुपचाप खड़े सुनते-अपने पतले, काले होंठों के कोने में तिरस्कारपूर्ण मुस्कुराहट लिये। बाद में नाश्ते के वक़्त वह कहते :

"बीसियों बार तुम्हें प्रार्थना करने की विधि सिखायी, पर तुम्हारी मोटी अक़्ल में बात अटकती ही नहीं। नास्तिकों की तरह न जाने क्या बकबक करती चली जाती हो। मेरी तो समझ ही में नहीं आता कि भगवान इतने दिनों से तुम्हारी अटपट बातें

सहता किस तरह है?"

"वह सब समझता है," नानी सहज विश्वास के साथ कहती,"चाहे जो बोलो और जैसे बोलो, वह सब समझ जाता है..."

"तुम्हारा सिर फिर गया है! ऊँह!!"

नानी का भगवान सदा उसके साथ रहता। वह जानवरों को अपने भगवान की कीर्ति समझाया करती थी। उसके ईश्वर को मानना-आदमी हों या कुत्ते, पंछी हों या मधुमक्खियाँ या घासें, सभी के लिए उसके ईश्वर को मानना आसान था-क्योंकि वह धरती के हर प्राणी पर समान रूप से प्यार और दया की दृष्टि रखता था।

एक दिन मधुशाला के मालिक की बीवी के बदमाश बिल्ले ने एक काली मैना को पकड़ लिया। इस भूरे, सुनहरी आँखों वाले सुन्दर बिल्ले को उस मकान में रहनेवाले सभी लोग प्यार करते थे, यद्यपि वह एक नम्बर का चापलूस और चोर था। नानी ने भयभीत पंछी को उसके मुँह से छीन लिया और बिगड़कर बोली :

"दुष्ट कमीने! तेरे हृदय में भगवान का ज़रा भी डर नहीं है!"

दरबान और मधुशाला के मालिक की बीवी नानी की बात पर हँस पड़े। इसपर वह बिगड़ गयी और कहने लगी :

"तुम समझती हो कि जानवरों को ईश्वर का ज्ञान नहीं है? छोटे से छोटे जन्तु भी तुम जैसे हृदयहीन इंसानों से अधिक भगवान को पहचानते है..."

मोटे, काहिल शराप को गाड़ी में जोतते वक़्त नानी कहा करती थी :

"आजकल इतना दुःखी क्यों है रे, भगवान के बन्दे! बुढ़ौती आती जा रही है न..."

शराप सिर डुलाता और गहरे निश्वास छोड़ता था।

फिर भी नानी की तुलना में नाना दिन में कहीं अधिक बार भगवान का नाम लेते थे। नानी के भगवान को मैं समझ सकता था। मुझे उससे डर नहीं लगता था, साथ ही उसके सामने झूठ बोलने की मेरी हिम्मत नहीं होती थी। ऐसा करने में न जाने क्यों लाज मालूम होने लगती थी। इसी लाज के कारण मैं नानी से कभी झूठ नहीं बोला। ऐसे सहृदय भगवान से कुछ भी छिपाना असम्भव था और जहाँ तक मुझे याद है, मेरी इच्छा भी नहीं हुई कि कुछ छिपाऊँ।

एक दिन मधुशाला के मालिक की बीवी मेरे नाना से झगड़ पड़ी। उसने नानी को भी गाली दी और उसे गाजर दे मारा।

नानी ने शान्त स्वर में जवाब दिया :

"बड़ी मूर्खा हो तुम, मेरी प्यारी!" लेकिन नानी के अपमान से मुझे बड़ा गुस्सा आया। मैंने बदला लेने की ठान ली।

बड़ी देर तक मैं सोचता रहा कि लाल बालों वाली मुटल्ली को, जिसका गला चर्बी के मारे फूला हुआ था और आँखें नज़र नहीं आती थी, कैसे मजा चखाया जाय।

झगड़ा होने पर पड़ोसियों से बदला लेने के कई तरीके मुहल्ले में प्रचलित थे, जैसे बिल्ली की दुम काट लेना, कुत्ते को विष की गोली खिला देना, मुर्गों को ज़िबह कर देना, या रात में भण्डारघर में घुसकर पत्तागोभी और खीरों के अचार के मर्तबानों में मिट्टी का तेल डाल देना अथवा क्वास के पीपों के काग खोल देना। लेकिन इनमें से कोई भी तरीका मुझे नहीं रुचा। मैं इससे भी अधिक भयानक ढँग से बदला लेना चाहता था।

अतः मैंने निश्चय से काम लिया : मधुशाला के मालिक की बीवी जब कुछ सामान निकालने के लिए तहखाने के भण्डारघर में घुसी, तो मैंने सीढ़ी का दरवाज़ा बन्द करके उसमें ताला जड़ दिया। बदला पूरा करने की खुशी में पहले उछल-उछलकर खूब नाचने के बाद चाभी को छत पर फेंक दिया। तब मैं दौड़ा-दौड़ा रसोईघर में गया, जहाँ नानी खाना पका रही थी। पहले तो वह मेरे आनन्दातिरेक का कारण नहीं समझ सकी, पर जब बात उसे मालूम हुई, तो उसने मेरी पीठ के निचले भाग में तीन-चार तमाचे दिये। घसीटते हुए आँगन में ले जाकर बोली कि छत पर जाकर फौरन चाभी ले आ। उसकी इस अप्रत्याशित प्रतिक्रिया ने मेरे जोश पर ठण्डा पानी डाल दिया। चुपके से चाभी लाकर मैंने उसे थमा दी और आँगन के एक कोने में छिप गया। नानी ने बन्दी को कारागार से मुक्त किया और उस कलमुँही को लिए मेरी ओर आयी। दोनों बड़े मजे में हँस-हँसकर बातें कर रहीं थी।

मधुशाला के मालिक की बीवी ने मुझे मुक्का दिखाकर कहा,"देखना, तुझे इसका खूब मजा चखाऊँगी," पर चर्बी में छिपी हुई आँखों वाले उसके चेहरे की मुस्कुराहट कह रही थी कि यह कोरी धमकी है। नानी गर्दनिया देकर मुझे रसोईघर में ले गयी। उसने पूछा :

"क्यों रे, ऐसा क्यों किया तूने?"

"उसने तुम पर गाजर क्यों फेंकी थी?"

"अच्छा!! तो यह तूने मेरे लिए किया था! समझी! बदमाश कहीं का। अलावघर के नीचे तुझे चूहों के पास धकेल दूँगी, तब आयेगी तेरी अक़्ल ठिकाने। ज़रा सूरत तो देखो इस रक्षक की! जल्दी से नज़र डाल लो इस बुलबुले पर, नहीं तो फूट जायेगा! अगर नाना को तेरी यह कीर्ति बता दूँ, तो क्या हाल होगा-पीठ की खाल उधेड़ लेंगे। बरसाती में जाकर चुपचाप पढ़!"

नानी दिनभर मुझसे नहीं बोली, पर शाम को प्रार्थना से पहले मेरी बगल में पलँग पर बैठकर उसने जो शब्द कहे, उन्हें कभी नहीं भूल सकता। बोली :

"सुन, मेरे लाल! मेरे दुलारे बेटे! एक बात सदा याद रखना... भूलकर भी बड़ों के झगड़े में न पड़ना। बड़े लोगों का पत बिगड़ चुका है-कष्ट और लोभ ने उन्हें निकम्मा कर दिया है, लेकिन तेरा पत अभी बाक़ी है। तेरा बाल-ज्ञान ही तेरे जीवन का सूर्य है। वही तेरा प्रकाश है, उसे कभी न छोड़ना। हाँ, जब ईश्वर तेरा हृदय छूकर

मार्ग दिखायें और उसपर चलने का निर्देश दें, तो जानना कि शेष जीवन की राह मिल गयी। समझा? जहाँ तक दोष का प्रश्न है-उसमें पड़ना तेरा काम नहीं। दोषी कौन है, इसका निर्णय भगवान ही करता है और वही दण्ड देता है। दण्ड देना हमारा-तुम्हारा काम नहीं।"

एक मिनट चुप रहने के बाद उसने नास ली और दाहिना आँख सिकोड़कर बोली :

"कभी-कभी तो दोष का निर्णय करने में खुद भगवान भी मुश्किल में पड़ जाता है।"

"ऐसा क्यों? वह तो सबकुछ जानता है," मैंने चकित होकर प्रश्न किया।

उसने उदास होकर जवाब दिया :

"अगर ऐसी ही बात होती, तो संसार में बहुत सारे पाप न होते। वह ऊपर आकाश में बैठा हम पापियों को निहारा करता है और कभी-कभी उसकी आँखों से अविरल आँसू बहने लगते हैं, रोते-रोते हिचकी बँध जाती है। वह रो-रोकर कहता है, 'आह! मेरी सन्तानों, मेरे बच्चो, तुम्हारी दुर्दशा देखकर मेरी छाती फटती है।'"

नानी बोल रही थी और खुद भी रो रही थी। आँसुओं को पोंछे बिना उसने देव-प्रतिमाओं के पास जाकर अपनी पूजा आरम्भ कर दी।

उस दिन से उसका भगवान मेरे लिए और भी प्यारा और ग्राह्य हो गया।

मुझे पढ़ाते समय नाना भी बताते थे कि भगवान सर्वज्ञ, सर्वद्रष्टा, सर्वव्यापी है तथा हर कष्ट में मनुष्य का सहारा है। पर वह नानी की तरह प्रार्थना नहीं करते थे।

नाना सुबह उठकर पहले हाथ-मुँह धोते थे। फिर अपने लाल केशों और दाढ़ी में कँघी करते थे। इसके बाद बाकायदा पूरी पोशाक पहनते थे और आईने के सामने खड़े होकर वास्कट और गले का काला रुमाल ठीक करते थे। इतनी तैयारी के बाद पंजों के बल वह देव-प्रतिमाओं की ओर जाते थे। फ़र्श पर बिछे लकड़ी के तख़्तों में एक जगह गाँठ थी, जो घोड़े की आँख जैसी लगती थी। कवायद करनेवाले सिपाही की तरह दोनों हाथ सीधे किये हुए नाना ठीक उस गाँठ के पास रुक जाते। एक क्षण तनकर मौन खड़े रहने के बाद वह तपाक के साथ कहते :

"पिता, पुत्र और पवित्र आत्मा के नाम पर!"

इन शब्दों का उच्चारण करने के साथ कमरे में सकते का एक आलम छा जाता-मक्खियाँ भी अब भन-भन करतीं तो अदब के साथ।

इसके बाद झुकी गर्दन तन जाती-भौंहे पाँत में और सुनहली दाढ़ी ज़मीन के तल के साथ समानान्तर। दृढ़ स्वर में, मानो पाठ सुना रहे हों, शब्दों पर ज़ोर देते हुए और अनुरोध करते हुए वह प्रार्थना शुरू कर देते।

"जब क़यामत का दिन आता है, तब हर इन्सान के भले-बुरे का लेखा लिया जाता है..."

हल्के-से छाती ठोकते हुए प्रभु से अपनी अर्जी दुहराते :

"मैंने गुनाह किये हैं तेरे खिलाफ, बस तेरे खिलाफ... तू मेरे गुनाहों को तरह दे..."

धर्मपुस्तक का पाठ करते समय वह प्रत्येक शब्द पर पूरा ज़ोर देते और दाहिने पैर से बीच-बीच में ताल भी देते जाते। उनके स्वर में आदेश होता और पहनावे में बेदाग सुथरापन। पूरा शरीर देव-प्रतिमाओं की ओर केन्द्रित होता था-लम्बा, पतला और कठोर।

"प्रभु की माँ! तूने ही ईसामसीह को पैदा किया, जिसके छू देने मात्र से बीमारियाँ छूमन्तर हो जाती हैं। अब तू मेरे हृदय को तमाम बुराइयों से पाक कर। मेरी आत्मा की पुकार सुन और मुझपर रहम कर!"

इसके बाद हरी आँखों में आँसू भरकर रुआँसे स्वर में कहते :

"करनी के नाते मेरे पास कुछ नहीं है; है केवल श्रद्धा; उसे ही, हे प्रभु, करनी का स्थान दे। मुझपर ऐसा बोझ न डाल, जो मेरी ताक़त से भारी हो..."

बार-बार, काँपते हाथों से वह जल्दी-जल्दी सलीब का चिह्न बनाने लगते, आवाज़ खरखरी और फटी-सी हो जाती तथा सींग मारते बकरे की तरह सिर झटकारते जाते। बड़ा होने पर जब मुझे यहूदियों के मन्दिर में जाने का अवसर मिला, तो मैंने जाना कि नाना यहूदियों की तरह प्रार्थना किया करते थे।

समोवार बड़ी देर से मेज पर भाप फेंकता होता और कमरे में घर की बनी पनीर से भरी रई की गरम-गरम रोटियों की सुगन्ध फैली होती। मेरे पेट में चूहे डण्ड पेलते होते। नानी दरवाज़े का पाखा पकड़े ठण्डी साँस लेती। उसके माथे पर बल पड़ा होता, नज़र फ़र्श पर गड़ी रहती। सूर्य की उल्लासपूर्ण प्रथम रश्मियाँ खिड़की से झाँकने लगतीं। पेड़ों की पत्तियों पर ओस की बूँदें मोती की तरह चमकतीं। प्रभात का समीर सोआ, दाख और पक रहे सेबों की ताज़ा सुगन्ध बिखेरता, पर नाना का रोना और सिर पीटना खत्म होने में ही न आता :

"मेरे विकारों को शान्त कर, क्योंकि मैं अधम और अभिशप्त हूँ।"

मुझे उनकी सुबह और शाम की पूरी प्रार्थना मुँहजबानी याद हो गयी थी। मैं हर शब्द कान लगा-लगाकर सुनता था कि कोई भूल तो नहीं हुई या कुछ छूटा तो नहीं।

ऐसा विरला ही दिन होता था, पर जिस दिन ऐसा होता, मुझे बड़ी खुशी होती।

प्रार्थना समाप्त करने के बाद वह नानी और मेरी ओर मुड़कर कहते :

"मुबारिक हो दिन!"

हम लोग भी अभिनंदन करते और इसके बाद सभी खाने की मेज पर जम जाते। उस वक़्त मैं कहता :

"आज आपने प्रार्थना के कई शब्द छोड़ दिये हैं।"

"झूठ बोल रहा है तू," वह सशंक होकर जवाब देते।

"नहीं। आपको कहना चाहिए था,'मेरी श्रद्धा ही मेरे लिए पर्याप्त हो,' पर आपने 'पर्याप्त' नहीं कहा।"

"धत् तेरे की," वह आँख मिचकाते हुए कहते, मानो वह अपराध करते हुए पकड़े गये हों।

बाद में मौका खोजकर वह सूद सहित इसका बदला लेते थे। पर तत्काल विजय का सेहरा मेरे ही सिर रहता। उनकी परेशानी से मुझे हार्दिक सन्तोष होता था।

एक दिन नानी ने मज़ाक किया :

"बाबू! तुम्हारी प्रार्थना से भगवान ऊब गया होगा-हर रोज़ बस एक ही बात, वही शब्द।"

"क्या-आ?" उन्होंने धमकी के स्वर में कहा। "फिर कहो तो, क्या कहा तुमने?"

"मैं कह रही थी कि तुम अपने शब्दों में प्रभु को याद क्यों नहीं करते?"

नाना का चेहरा तमतमा उठा। गुस्से से लाल वह कुर्सी पर उछले और नानी को एक रक़ाबी खींच मारी :

"बुड्ढी डायन, निकल जा यहाँ से!" वह चीखे और चीखने से ऐसी आवाज़ निकाली, जैसे टहनी पर रेती रगड़ दी गयी हो।

ईश्वर की सर्वशक्तिमत्ता का प्रसंग आने पर वह हमेशा उसकी निर्ममता पर ज़ोर देते थे। उदाहरणार्थ, एक बार जब बहुत पाप बढ़े तो ईश्वर ने ऐसी बाढ़ पैदा की कि सभी डूब गये। एक बार ऐसी आग लगी कि पूरा नगर जलकर नष्ट हो गया। एक दफा अकाल और महामारी ने लोगों का सफाया कर दिया। उनका ईश्वर नंगी तलवार या तना हुआ कोड़ा, जो सदा गुनाहगारों की पीठ पर बरसने को प्रस्तुत रहा करता था।

अपनी दुबली, सूखी उँगलियों को मेज पर पटकते हुए उन्होंने मुझे चेताया :

"जो प्रभु, ईश्वर के नियमों की अवहेलना करता है, उसे दुःख भुगतना और नष्ट होना ही पड़ता है।"

ईश्वर की क्रूरता पर मुझे विश्वास ही नहीं होता था। मुझे लगता कि नाना ने ईश्वर की यह धारणा खुद गढ़ी है, ताकि मैं डरूँ-ईश्वर से नहीं, उनसे। मैंने एक दिन साफ-साफ पूछा :

"आप मुझे यह सब इसी लिए समझाते हैं न कि मैं आपके हुक़्म पर चलूँ?"

नाना ने भी इसी स्पष्टता के साथ उत्तर दिया :

"अवश्य! अगर तू आज्ञा मानना न सीखेगा, तो किस काम का रहेगा?"

"लेकिन नानी?"

"वह बुड्ढी तो वज्रमूर्ख है। उसकी अनाप-शनाप बातें तू मत सुना कर। वह जन्म भर ज़ाहिल और बेवकूफ रही और रहेगी। मैं उसे चेता दूँगा कि इन महत्त्वपूर्ण विषयों पर तुझसे वार्तालाप न किया करे। अच्छा अब बता, फरिश्तों में कितने दर्जे

होते हैं?"

मैंने बता दिया और तब उनसे पूछा :

"ऊँचे दर्जे का अफसर क्या होता है?"

"ओह, बहुत तेज़ हो! दर्जे से ऊँचे दर्जे पर जा पहुँचा," उन्होंने एकदम बिगड़कर कहा-होंठ चबाते हुए और नज़र झुकाकर। दूसरे ही क्षण कुछ सोचकर, अनिच्छापूर्वक बोले :

"इसका भगवान से कोई सम्बन्ध नहीं है। वह धरती के लोगों में से है। उनका सम्बल क़ानून होता है-यानि, वे क़ानून ओढ़ते, क़ानून बिछाते और क़ानून ही खाते हैं।"

"क़ानून किसे कहते हैं?"

"क़ानून? क़ानून यों कहो कि हमारी-तुम्हारी, सभी लोगों की आदत को कहते हैं," बूढ़े ने कहा। उसकी समझदार और बेधती हुई आँखें चमक रही थीं। जाहिर था कि इस चर्चा में उसे मजा आ रहा था। "लोग साथ रहते हैं और आपस में एक प्रकार का समझौता कर लेते हैं, जैसे कि अमुक काम करने के लिए अमुक तरीका सब से अच्छा माना जाये। और तब वह उनकी आदत हो जाती है, जिसे नियम या क़ानून कहकर पुकारते हैं। लड़के खेल में क्या करते हैं-मिलकर तय कर लेते हैं कि ऐसे-ऐसे खेलेंगे। वे जो तय करते हैं, वही हुआ क़ानून।"

"और ऊँचे पदवाले आदमी क्या होते हैं?"

"वे होते हैं खराब लड़कों के समान, जो खेल का नियम तोड़ा करते हैं।"

"वे ऐसा क्यों करते हैं?"

उनके माथे पर बल पड़ गये, बोले :

"यह तू नहीं समझेगा। ईश्वर आदमियों के सभी खेल देखा करता है। वे कुछ चाहते हैं, वह कुछ दूसरा ही चाहता है। आदमियों का यही रवैया है-उनकी किसी चीज़ का ठिकाना नहीं। बस भगवान के मुँह से एक फूंक निकली कि सारा खेल आँधी में सड़क की धूल की तरह हवा हो जाता है।"

ऊँचे पदवाले आदमियों के बारे में मेरी दिलचस्पी के बहुत-से कारण थे, इसलिए मैंने सवालों की झड़ी लगा दी :

"याकोव मामा गाते हैं कि :

पाक फ़रिश्ते चंदे
अल्लाह के अपने बन्दे
सरकार के आला अफसर
शैतान के नौकर-चाकर।"

नाना ने आँखें बन्द कर लीं और दाढ़ी को हथेली में लेकर मुँह में ठूँसने लगे। उनके हिलते गालों से मालूम होता था कि वह मुँह दबाकर हँस रहे हैं।

"किसी दिन तुझे और याकोव दोनों को बोरे में बन्द कर नदी में फेंक दूँगा। यही तुम लोगों का इलाज है। वह क्यों इस तरह के गीत गाता है और तू क्यों इस तरह के गीत सुनता है? इस तरह के गीत बाग़ियों ने बनाये हैं। वे सरकार की हँसी उड़ाते हैं।"

वह कुछ सोचते हुए थोड़ी देर मुझसे परे किसी चीज़ को देखते रहे और तब साँस खींचकर बोले :

"ऊँह, क्या लोग हैं!!"

नाना का ईश्वर क्रुद्ध अभिभावक की तरह सब की खोपड़ी पर सवार रहता था; पर एक बात में नानी और उनके ईश्वरों में समानता थी। दोनों का विश्वास था कि गृहस्थी और सारे कारोबार में ईश्वर का दखल है। इसमें नाना के ईश्वर के अलावा सन्तों की एक पूरी जमात का भी हाथ था। नानी के सन्तों की संख्या गिनी-चुनी थी-निकोलाई, यूरी, फ्रोल और लाव्र। ये सभी बड़े नेक और रहमदिल थे। वे सदा गाँव-गाँव, नगर-नगर घूमते हुए विपत्ति में लोगों की सहायता करते थे। उनमें मनुष्यों के गुण-अवगुण दोनों मौजूद थे। इसके विपरीत, हमारे नाना के लगभग सभी सन्त शहीद थे। उन्होंने मूर्तियाँ तोड़ी और रोमन बादशाहों से लोहा लिया, जिसके फलस्वरूप उन्हें तरह-तरह की यंत्रणाएँ भुगतनी पड़ी-कोई ज़िन्दा जला दिया गया और किसी की खाल खिंचवा ली गयी।

कभी-कभी नाना चिंतित होकर भगवान से कहते :

"भगवान यदि पाँच सौ रूबल मुनाफे पर भी हमारा यह मकान बिक्री करवा दे, तो मैं सन्त निकोलाई को प्रसाद चढ़ाऊँगा।"

नानी इसपर हँसकर मुझसे कहती :

"बुढ़ऊ की अक़्ल मारी गयी है। निकोलाई को मानो अब इनका मकान बिकवाने का ही काम रह गया है।"

नाना की जंत्री, जिसमें उनके हाथ की लिखी कई टीकाएँ थीं, वर्षों मेरे पास रही। सन्त योखिम और आन्ना के नामों के आगे उसमें लाल स्याही से लिखा था : "इनकी कृपा से आज भारी विपत्ति से बचे।"

मुझे इस 'विपत्ति' की याद है। अपने नालायक बेटों की सहायता के लिए उन्होंने गुप्त महाजनी का कारबार शुरू किया था। वह गिरवी पर रुपये लगाते थे। किसी ने इसकी खबर पुलिस में कर दी। एक रात को पुलिसवाले तलाशी लेने आ पहुँचे। बड़ा हंगामा मचा, पर मामला रफा-दफा हो गया। नाना उस दिन रात भर प्रार्थना करते रहे और दूसरे दिन मेरे सामने ही जंत्री में उपर्युक्त शब्द लिखे।

रात के भोजन से पहले वह मुझसे सॉल्टर, भजनों की क़िताब या येफ्रेम सीरिन का मोटा ग्रन्थ पढ़वाते थे। भोजन के बाद वह फिर पूजा आरम्भ कर देते। रात की निस्तब्धता में पश्चाताप और क्षमायाचना के उनके ये शब्द अक्सर गूँजते थे :

"रहमदिल परवरदिग़ार, तूने ही दिया है और तू ही ले सकता है, क्योंकि सब कुछ तेरा है... हमें गुनाहों से बचा... कुछ लोगों से मेरी रक्षा कर, मेरे आँसुओं को मेरे पापों का प्रायश्चित मान..."

अक्सर नानी कहती थी :

"आज तो थकान के मारे खड़ा भी नहीं हुआ जाता। लगता है बिना प्रार्थना किये ही नींद आ जायेगी।"

नाना मुझे नियमित रूप से गिरजाघर ले जाते थे-शनिवार की शाम को और इतवार को तीसरे पहर की प्रार्थना के लिए। गिरजाघर में भी कौन किस ईश्वर का भजन कर रहा है, यह मैं फौरन जान जाता था। पादरी नाना के ईश्वर की प्रार्थना करता था, पर भजनीक सदा नानी के भगवान के गीत गाते थे।

कहने की आवश्यकता नहीं कि दो ईश्वरों में मेरे बाल-मस्तिष्क ने जो भेद कर रखा था, उसका मैंने केवल एक कच्चा खाका खींचा है, लेकिन बचपन में इस भेद के कारण मुझे भारी आन्तरिक संघर्ष का सामना करना पड़ता था। नाना का ईश्वर, जो किसी को प्यार नहीं करता था, बल्कि सभी के ऊपर तेवर ताने रहता था, मुझे पसन्द न था। मैं उससे डरता था। मुझे लगता था कि सब की बुराई और कमज़ोरी ढूँढ़ते रहना ही उसका एकमात्र काम है। यह स्पष्ट था कि वह किसी पर विश्वास नहीं करता था, हमेशा लोगों को प्रायश्चित के चक्कर में डालने की ताक में रहता था और दण्ड देने में उसे मजा आता था।

उन दिनों मैं सदा ईश्वर के बारे में सोचा करता था। वही मेरे उस जीवन में एकमात्र सौन्दर्य बिन्दु था। शेष जो था, वह इतना कुत्सित और हृदयहीन कि उसके स्मरण मात्र से मन में व्यथा और जुगुप्सा भर जाती। उस वातावरण में सबसे प्रकाशवान और सबसे सुन्दर था भगवान-नानी का भगवान, जिसका हृदय सभी प्राणियों के प्रति प्रेम से ओत-प्रोत था। यह प्रश्न मुझे परेशान करता रहता था कि नाना भगवान की सहृदयता के प्रति अंधे क्यों हैं।

मेरे विचित्र स्वभाव के कारण मुझे घर से बाहर खेलने की इज़ाजत नहीं थी। मैं जल्दी ही अधिक उत्तेजित हो जाया करता था। बाहर का वातावरण मेरे ऊपर नशे का सा असर डालता था। जब भी बाहर निकलता था, पागलपन में कोई न कोई झगड़ा या दंगा-फसाद कर बैठता था। मेरी किसी से नहीं पटती थी। पड़ोसियों के लड़के मुझसे खार खाते थे। काशीरिन कहकर पुकारा जाना मुझे पसन्द न था। इसे वे जान गये थे, अतः मुझे देखते ही वे चिढ़ाने के लिए बकने लगते :

"वह देखो, मक्खीचूस काशीरिन का नाती आ गया।"

"मारो, मारो!"

और दंगा शुरू हो जाता।

अपनी अवस्था के लिहाज से मैं बड़ा ताक़तवर और मुक्केबाजी में भी तेज़ था। इस बात को मेरे दुश्मन भी स्वीकार करते थे। वे अकेले कभी मुझपर हमला नहीं करते थे, फलस्वरूप मैं बुरी तरह पिटकर घर आता था-पूरा चेहरा लहूलुहान, कपड़े फटे हुए और धूल-मिट्टी से लथ-पथ।

नानी देखते ही घबराकर लगती थी हाय-तोबा मचाने :

"बदमाश कहीं का! फिर दंगा कर आया? ठहर मैं तुझे ठीक करती हूँ!..."

नानी मेरा चेहरा धोकर नीलों पर ताँबे का सिक्का, मलहम या कोई दवा बाँध देती और कहती :

"तुझे क्या हो जाता है रे? घर में इतना सीधा-साधा, पर गली में जाते ही शैतान सवार हो जाता है तेरे ऊपर। छि! आने दो नाना को, तेरा बाहर निकलना ही बन्द करवा दूँगी।"

नाना आते ही नील देखकर सारा मामला समझ जाते, पर इसके लिए वह दिल से कभी गुस्सा न होते। वह बड़बड़ाकर कहते :

"अच्छा! आज फिर तमगे ले आये? शाबाश मेरे सूरमा! लेकिन आज से चेत जाओ-खबरदार, जो फिर सड़क पर पैर रखा! समझे?"

जब सड़क शान्त रहती, तो स्वयं मुझे ही बाहर जाने की इच्छा न होती। पर लड़कों के खेलने-हँसने की आवाज़ कान में पड़ते ही नाना की चेतावनी हवा हो जाती और मैं बाहर निकल जाता। मार खाने का मुझे कभी मलाल न होता, पर एक चीज़ थी, जो मुझे बर्दाश्त न होती। वह थी लड़कों की हृदयहीनता, जिसके विभिन्न रूपों से मैं खूब परिचित हो चुका था और जिन्हें देखकर मैं आपे से बाहर हो जाता था। वे मुर्गों और कुत्तों को लड़ा देते, बिल्लियों को बाँधकर उन्हें यंत्रणाएँ देते, यहूदियों की बकरियाँ हाँक देते और पियक्कड़ भिखमँगों या "इगोशा, तेरी झोली में मौत" नामक एक पागल की खिल्ली उड़ाते।

इगोशा दुबला-पतला, लम्बा आदमी था। उसके चेहरे की हड्डी-हड्डी दिखाई पड़ती थी, जिसपर सख्त बालों वाली दाढ़ी उगी थी। वह सदा मैला-कुचैला वेष बनाये रहता था। भेड़ की खाल का लम्बा कोट पहने वह सड़क पर अज़ीब ढँग से डोलता हुआ चलता था। चलते वक़्त उसकी नज़र सदा ज़मीन पर होती थी। उसका भावशून्य चेहरा और छोटी-छोटी उदास आँखें मेरे मन में भयपूर्ण आदर पैदा करतीं। मुझे लगता कि यह आदमी गम्भीर चिंतन में लीन है, कुछ खोज रहा है और इसलिए उसे छेड़ना नहीं चाहिए।

पर दूसरे लड़के ढेले लेकर पीछे दौड़ पड़ते और उसकी झुकी पीठ पर निशाने साधते। कुछ देर तो वह खामोश रहता, मानो ढेले लगे ही नहीं। इसके बाद वह

हठात् रुक जाता, मानो नींद से चौंक उठा हो, गर्दन उठाकर चारों ओर देखता और काँपते हाथों से अपनी रोयेंदार टोपी को सँभालता।

लड़के शोर मचाना शुरू करते :

"इगोशा! तेरी झोली में मौत! कहाँ चले, इगोशा! देख, तेरी झोली में मौत बैठी है!"

झोली थामकर इगोशा पत्थर या मिट्टी का ढेला उठा लेता और मुँह से कुछ बड़बड़ाते हुए अपने लम्बे, बेढँगे हाथ को घुमाने लगता। उसके शब्द-भण्डार में कुल तीन गालियाँ थीं, उन्हें ही वह दुहराता, पर लड़कों का भण्डार अनन्त था। कभी लँगड़ाता हुआ उनके पीछे दौड़ता, पर अपने लम्बे कोट में फँसकर घुटनों के बल गिर पड़ता। तब वह अपने मैले-कुचैले हाथों से, जो सूखी लकड़ियों के समान थे, सहारा लेकर उठता। लड़के ढेलों की बौछार कर देते। जो अधिक साहसी थे, वे उसके माथे पर धूल डालकर भाग जाते।

लेकिन सड़क पर सबसे दर्दनाक नज़ारा उस वक़्त उपस्थित होता, जब हमारा भूतपूर्व मिस्तरी ग्रिगोरी इवानोविच आता। उसकी आँखें जाती रहीं थीं और अब वह भीख माँगकर गुजारा करता था। उसके लम्बे, शान्त व्यक्तित्व में अब भी निराली शान थी। एक नाटी, बूढ़ी औरत उसका हाथ थामे शहर में घुमाती रहती थी। हर घर के सामने खड़ी होकर और हमेशा किसी दूसरी तरफ देखते हुए बुढ़िया पतली आवाज़ में पुकारती :

"ईसा के नाम पर, एक अंधे भिखारी की मदद करो, बाबा!.."

ग्रिगोरी इवानोविच खुद कुछ न बोलता। उसके काले चश्मे की नज़र दीवार या खिड़की पर या सामने खड़े आदमी के ऊपर टिक जाती और वह रंग से दगीले हाथ अपनी चौड़ी दाढ़ी पर फेरता जाता। मुँह से वह एक शब्द भी न कहता। मैंने बहुत बार उसे देखा, पर सदा मौन, मानो होंठ सी दिये गये हों। उसकी यह चुप्पी मेरे कलेजे को सबसे अधिक ठेस पहुँचाती। मैं कभी उसके नज़दीक न जाता-मेरी हिम्मत ही न होती, लेकिन उसे देखते ही मैं दौड़कर नानी को खबर देता :

"ग्रिगोरी आ रहा है।"

नानी व्यथापूर्ण उत्तेजना के साथ और दीर्घ निःश्वास छोड़ते हुए कहती :"ले, यह जाकर उसे दे आ।"

मैं झल्लाकर रुखाई से इनकार कर देता। वह खुद बाहर जाती और फाटक पर खड़ी होकर देर तक उससे बातें करती। वह हँसकर दाढ़ी हिलाता जाता, पर बोलता शायद ही कभी।

कभी-कभी नानी उसे रसोईघर में बुलाकर भोजन कराती थी। एक दिन उसने मेरे बारे में पूछा। नानी ने मुझे पुकारा, पर मैं लकड़ियों के पीछे छिप गया। उसके सामने जाने की मेरी हिम्मत ही नहीं होती थी। लगता था कि लाज से गड़ा जा रहा

हूँ। मैं जानता था कि नानी को भी ऐसा ही लगता है। केवल एक बार हम लोगों के बीच ग्रिगोरी के बारे में बातें हुई। नानी उसे फाटक के बाहर पहुँचाकर आँगन में से आ रही थी, उसकी आँखों में आँसू थे और माथा शर्म से नत। मैंने पास जाकर उसका हाथ अपने हाथों में ले लिया। वह शान्त स्वर में बोली :

"तू उसे देखते ही छिप क्यों जाता है? वह बड़ा नेक आदमी है और तुझे दिल से मानता है..."

"नाना उसे क्यों नहीं खाना देते?" मैंने पूछा।

"नाना?"

उसने पास सटकर मुझसे कहा :

"मेरी यह बात गाँठ बाँध ले! भगवान हम लोगों को एक दिन इसका बदला देगा..."

उसकी बात भविष्यवाणी सिद्ध हुई। दस साल बाद, जब नानी जीवन-लीला समाप्त कर परलोक सिधार चुकी थी, नाना कंगाल और विक्षिप्त होकर एक टुकड़ा रोटी के लिए दर-दर की भीख माँगा करते और दरवाज़ों-खिड़कियों के नीचे खड़े होकर पुकारते थे :

"कोई एक टुकड़ा कचौड़ी दे-दे बाबा, बस एक टुकड़ा!.. ऊँह, क्या... लोग हैं!"

यही दर्दनाक "ऊँह, क्या... लोग हैं!!" उनके पिछले दिनों की एकमात्र यादगार बाकी रही थी।

इगोशा और ग्रिगोरी इवानोविच के अलावा बदचलन बुढ़िया वोरोनीखा भी आया करती थी। उसपर नज़र पड़ी कि मैं घर के अन्दर हवा। वह त्योहारों पर आती थी-लम्बी-तड़ंगी, केश बिखरे हुए, शराब के नशे में चूर। उसकी चाल भी अज़ीब थी। लगता था कि उसके पाँव ज़मीन को छूते ही नहीं, आँधी की तरह उड़ती, सप्तम सुर में अपने अश्लील गीत गाती वह आती थी। उसे देखते ही राह चलनेवाले भाग खड़े होते, कोई दुकान में घुस जाता और कोई मकानों के फाटक के पीछे या कोने में छिप जाता। उसके आगमन पर सड़क साफ हो जाती। उसका चेहरा नीला और गुब्बारे की तरह सूजा हुआ था। बड़ी भूरी आँखें, जो बाहर निकली पड़ती थीं, डरावने ढँग से नाचती थीं। कभी-कभी वह ज़ोर-ज़ोर से चीखते और रोते हुए कहती :

"कहाँ हो तुम मेरे बच्चो?"

मैंने नानी से इसका मतलब पूछा। पहले तो वह बोली कि "यह सब तेरे जानने की चीज़ नहीं है," पर बाद में उसने उसकी कहानी सुना ही दी : उसका पति वोरोनोव सरकारी अफसर था। तरक्की पाने के लिए उसने जोरू को अपने हाकिम के हाथ बेच दिया, जो उसे लेकर दो साल के लिए दूसरी जगह चला गया। उसके दो बच्चे थे-एक बेटा, एक बेटी। जब वह लौटकर आयी, तो दोनों मर चुके थे और पति जुए

में सरकारी रुपया हार जाने के कारण जेल चला गया था। शोक में उसने शराब पीना और दुराचारी जीवन बिताना शुरू कर दिया। अब पुलिस हर त्योहार की शाम को उसे सड़क से हटा देती है...

बाहर के मुक़ाबले घर में ज्यादा अच्छा लगता था। दोपहर के भोजन के बाद का समय खासतौर पर बहुत सुखद होता था। उस वक़्त नाना याकोव मामा के यहाँ चले जाते थे और नानी खिड़की के दासे पर बैठकर कहानियाँ कहती या पिताजी के संस्मरण सुनाती थी।

जिस मैना को बिल्ले से छुड़ाया गया था, उसे नानी ने पाल लिया था। उसका टूटा हुआ पंख कतर लिया गया था। नानी ने उसके टूटे पाँव में होशियारी से एक लकड़ी बाँध दी थी। ऐसे उसे चंगी करके नानी उसे बोलना सिखाने लगी थी। खिड़की की देहरी पर वह पिंजड़े के सामने बैठ जाती और घण्टों मैना को नये-नये शब्द सिखाया करती :

"बोल मैना! 'पंछी को खाना दो!'"

मैना मसखरों की तरह गोल-गोल आँखें मटकाती, अपने लकड़ी के पैर से पिंजरे की पेंदी पर ताल देती और गर्दन निकालकर नीलकण्ठ, कोयल, बिल्ली या कुत्ते की बोली बोलती थी। पर आदमी की बोली सीखने में उसे कठिनाई होती थी।

नानी गम्भीर होकर कहती : "बहुत अंटसंट बक चुकी; अब बोल : 'पंछी को थोड़ा खाना दो'।"

नटखट चिड़िया अगर कोई ऐसा वाक्य बोल देती, जो नानी की सिखायी बोली से थोड़ा भी मिलता-जुलता होता, तो नानी की खुशी का ठिकाना न रहता। वह हँसकर अपने हाथ से उसे दलिया खिलाती और कहती :

"शैतान कहीं की! बोलना चाहे, तो तू सब कुछ बोल सकती है।"

और सचमुच उसने उसे इन्सानों की तरह बोलना सिखा ही दिया। कुछ दिनों में मैना खाना माँगने और नानी को देखकर "हैलो" कहने लगी।

पहले तो मैना का पिंज़रा नाना के कमरे में टँगा रहता था, पर कुछ दिनों बाद उन्होंने उसे कोठे पर निर्वासित कर दिया। कारण यह हुआ कि वह नाना की नक़ल करने लगी थी। नाना अपनी प्रार्थना के प्रत्येक शब्द का स्पष्ट उच्चारण करते थे। मैना पिंजरे के बाहर अपनी पीली चोंच निकालकर इन शब्दों को दोहराने लगती।

नाना को यह बहुत बुरा लगता। एक दिन प्रार्थना रोककर उन्होंने पैर पटकना शुरू किया और गुस्से से चिल्लाकर बोले :

"निकालो शैतान की बच्ची को यहाँ से, नहीं तो इसकी गर्दन मरोड़ दूँगा!"

सचमुच उस घर के हमारे जीवन में दिलबहलाव और मनोरंजन की कमी न थी, पर कभी-कभी एक अज्ञात आकांक्षा घने बादल की तरह मेरे ऊपर छा जाती। ऐसा लगने लगता मानो कोई बड़ा बोझ सीने पर रख दिया गया हो और मैं डूबा जा रहा

हूँ किसी अंधकारपूर्ण अतल में, जहाँ न कुछ दिखाई देता है, न सुनायी, भावना कुण्ठित हो गयी है और ज़िन्दगी अंधी तथा शरीर निःसत्व।

8

नाना ने एक दिन अचानक मधुशालावाले के हाथ मकान बेच दिया और कनात्नया सड़क पर दूसरा घर खरीद लिया। यह सड़क कच्ची, पर स्वच्छ और शान्त थी। उसमें हरी घास उगी हुई थी। वह खेतों में जाकर विलीन होती थी। किनारे-किनारे छोटे-छोटे और खूबसूरत रंगबिरंगे मकानों की कतार थी।

नया मकान पुराने से अधिक खुशनुमा और बहारदार था। सामने का भाग गहरे लाल रंग से रंगा हुआ था। इस लाल पृष्ठभूमि में नीचे की तीन खिड़कियों की नीली झिलमिली और कोठे की जालीदार खिड़की खूब जँचती थी। छत के बायें भाग में एल्म और लाइम वृक्षों की घनी हरियाली की नक्काशीदार छाँह फैली हुई थी। आँगन और बाग में कई सघन कुंज थे, जो मानो आँख मिचौनी खेलने के लिए ही बनाये गये थे। बगीचा बड़ा रमणीक था। आकार में वह बड़ा न था, पर भाँति-भाँति के वृक्षों और वनस्पतियों की घनी झाड़ियों के कारण खूब हरा-भरा लगता था। एक कोने में छोटा-सा, साफ-सुथरा गुसलखाना बना हुआ था, जो खिलौने जैसे प्रतीत होता था। दूसरे कोने में एक चौड़ा और छिछला गढ़ा था, जिसमें घास-पात उग आये थे। उसके अन्दर से पुराने गुसलख़ाने के जले हुए अवशेष अब भी झाँक रहे थे। बगीचे के बायी ओर कर्नल ओव्स्यान्निकोव का अस्तबल था, दाहिनी ओर बेतलेंग परिवार की इमारतें, पीछे की ओर मोटी, लाल मुँहवाली पेत्रोव्ना ग्वालिन का घर था, जो हर बात पर हल्ला मचाया करती थी और देखने में घण्टे की तरह गोल-मटोल थी। काई और घास से आच्छादित उसका जीर्ण-शीर्ण छोटा-सा घर ऐसा लगता था जैसे धरती में धँसकर, धरती के साथ एकाकार हो गया हो। उसमें दो खिड़कियाँ थीं, जो पीछे मैदान की ओर खुलती थीं। खुले मैदान के बीच कई सूखे, गहरे नाले थे। उस पार जंगल का सिलसिला आरम्भ हो जाता था। जंगल की नीली धूमिल रेखाएँ दूर क्षितिज पर दृष्टिगोचर होती थीं। दिन भर इस मैदान में फौज़ के सिपाही कवायद किया करते थे। पतझड़ की धूप उनकी संगीनों से प्रतिबिम्बित होकर आँखों को चकाचौंध कर देती थी।

हमारा नया मकान अज़नबी किरायेदारों से भरा हुआ था। सामने के हिस्से में फौज़ का आदमी रहता था। वह तातार जाति का था। उसकी नाटी, गोल-मटोल बीवी दिन भर हँसती और हो-हल्ला किया करती थी तथा सुन्दर, बहुत सजावटवाला गिटार बजाती रहती थी। अपनी ऊँची टनकदार आवाज़ में अक्सर वह यह गीत गाती थी :

जिससे घिनाओ, उससे भला प्यार निभाना?
ओय-होय! ना-ना-ना!
जो अक़्ल ठिकाने हो तो कर कोई बहाना
कोई गोरी छोटी कहीं से और ले आना!
मैं तो मनाऊँ मिल जाये मकसूद तुम्हारी
मकसूद तुम्हारी महबूब तुम्हारी
मैं तो मनाऊँ मिल जाये वह रूप की जोती
रूप की जोती,
हाँ बड़े आब का मोती
बिलकु-उ-उ-उ-उल अनो-ो-ो-ोखा मोती।

गेंद की तरह गोल उसका सैनिक पति खिड़की के करीब बैठा नीले चेहरे को गुब्बारे की तरह फुलाये और अजीब-सी लाल आँखों को मस्ती से नचाते हुए पाइप पिया करता था। पाइप के धुएँ से वह कुत्ते की सी आवाज़ में ज़ोर से खों-खों किया करता था।

भण्डारघर और अस्तबल के ऊपर बने गरम कमरों में दो गाड़ीवान और लम्बा, संजीदा चेहरेवाला एक तातार अर्दली रहता था, जिसका नाम था वलेय। एक गाड़ीवान को लोग प्योत्र काका कहकर पुकारते थे। वह नाटा और कुछ-कुछ साँवला बूढ़ा आदमी था। दूसरा उसका भतीजा था स्त्योपा, जो गूँगा था। स्त्योपा बड़ा साफ-सुथरा रहता था। उसका चेहरा काँसे की थाली जैसा लगता था। ये तमाम लोग हमारे लिए अज़नबी थे, जिनके अन्दर नवीन सम्भावनाएँ निहित थीं।

घर के पिछले हिस्से में रसोईघर के बगलवाले कमरे में रहनेवाला किरायेदार इन सभी लोगों से अधिक दिलचस्प था। उसे लोग 'बहुत खूब' कहा करते थे। उसका कमरा लम्बा था। उसमें दो खिड़कियाँ थीं, जिनमें से एक आँगन और दूसरी बगीचे की ओर खुलती थी।

वह छरहरे बदन का आदमी था, उसकी पीठ झुकी हुई थी और अपनी काली दाढ़ी वह बीच से सँवारता था। उसका चेहरा पीला लगता था। वह चश्मा पहनता था। आँखों से भलमनसाहत टपकती थी। साधारणतः वह लोगों से बहुत कम बोलता था और ज्यादातर अपने ही काम में तल्लीन रहता था। चाय या खाना तैयार होने की सूचना मिलने पर वह हमेशा जवाब देता था :

"बहुत खूब!"

नानी पीठ पीछे, अकसर मुँह पर भी उसे 'बहुत खूब' कहा करती थी। वह कहती :

"अलेक्सेई, जा 'बहुत खूब' से कह दे कि चाय तैयार है।"

या भोजन के वक़्त कहती :

"थोड़ा और लो 'बहुत खूब'! आज खा नहीं रहे हो तुम।"

उसके कमरे में लकड़ी के बक्सों और तरह-तरह की सामान्य क़िताबों का अम्बार लगा हुआ था। उस तरह की क़िताबें मैंने पहले नहीं देखी थीं। कमरे में चारों ओर रंग-बिरंगे द्रवों से भरी बोतलें तथा ताँबे, लोहे और जस्ते के टुकड़े बिखरे पड़े थे। चमड़े की भूरी जैकेट और हल्के सलेटी रंग का चाखानेदार पतलून पहने, रंग के दागों से सना हुआ दुर्गन्ध छोड़ता, व्यग्र और ढीला-ढाला यह व्यक्ति सवेरे से शाम तक अपनी रसायनशाला में व्यस्त रहता-कभी जस्ता या ताँबा गलाता और कभी किसी चीज़ को काँटी पर तौलता। आप ही आप वह कुछ बोलता भी रहता। प्रायः उसकी उँगलियाँ जल जातीं और वह उन्हें फूकने लगता। कभी दीवार पर टँगे नक्शों को देखता। चश्मे को पोंछते हुए वह नक्शों के पास मुँह सटा देता। उसकी खड़िया जैसी नाक प्रायः नक्शे से छिप जाती। कभी वह कमरे के बीचोंबीच या खिड़की की बगल में खड़ा हो जाता-निश्चल, आँखें बन्द किये, सिर उठाये, मूक और बुत बना।

मैं आँगन के उस पारवाले ओसारे की छत पर चढ़ जाता और वहीं से खुली खिड़की से उसे देखा करता। मेज पर स्पिरिट का लैम्प नीली रोशनी उगल रहा होता और वह उसपर झुका हुआ किसी रहस्यमय व्यापार में तल्लीन रहता। कभी एक फटी-सी कापी में वह कुछ नोट करता और फिर से काम में लग जाता। उसके चश्मे का शीशा नीली आभा लिए हुए बर्फ़ के टुकड़ों की तरह चमकता था। इस आदमी के इस जादूभरे काम को मैं कुतूहल में गिरफ़्तार, छत पर चढ़ा, घण्टों उसकी खिड़की में टक लगाये देखा करता।

कभी वह अपनी खिड़की में आकर खड़ा हो जाता। उस वक़्त वह चौखट में जड़ी आदमकद तस्वीर जैसा लगता। पीछे हाथ बाँधे, वहाँ खड़ा वह छत को निहारा करता। उसकी मुद्रा से यही ज्ञात होता था कि उसने मुझे देखा नहीं है। मुझे यह बड़ा अपमानजनक लगता। वह अचानक दौड़कर मेज के करीब जाता और बहुत झुककर वहाँ कुछ खोजने लगता।

अगर वह धनी और रोब-दाब वाला आदमी होता, तो सम्भवतः मैं उससे डरता, पर वह गरीब था। उसकी कमीज का मैला और पैबन्द मुड़ा-चिमुड़ा कालर चमड़े की जैकेट से बाहर झाँका करता; पतलून पैबन्द और दागों से भरा हुआ था; पैरों में मोजा नदारद था और जूते घिस चुके थे। अतः उससे डरने की कोई बात न थी। गरीब खतरनाक और डरावने नहीं हुआ करते, यह मैंने पहले ही समझ लिया था और ऐसा समझने का खास कारण यह था कि नानी ऐसे लोगों को दया और नाना तिरस्कार की दृष्टि से देखा करते थे।

घर में कोई आदमी न था, जो 'बहुत खूब' को चाहता हो। सभी उसपर हँसते थे। फौजवाले की बीवी उसे खड़िया नाकवाला कहा करती थी। प्योत्र काका उसे

दवाफ़रोश और जादूगर कहते थे और नाना कीमियागर। उनकी राय थी कि वह भूत-प्रेत सिद्ध करता है।

मैंने नानी से पूछा :

"वह क्या काम करता है?"

उसने खीझकर जवाब दिया :

"यह सब जानने से तुझे मतलब? हर चीज़ में अपनी नाक मत घुसेड़ा कर!"

एक दिन मैंने साहस बटोरा और उसकी खिड़की के पास गया और जैसे-तैसे अपनी घबराहट पर काबू पाते हुए पूछा :

"आप क्या कर रहे हैं?"

वह चौंक पड़ा और चश्मे के भीतर से मुझे बड़ी देर तक देखता रहा। फिर अपनी काली, जली उँगलियों को मेरी ओर करके बोला :

"ऊपर आ जाओ..."

उसने दरवाज़े के बजाय खिड़की के रास्ते मुझे अन्दर बुलाया, इस चीज़ ने एकबारगी उसे प्रति मेरी श्रद्धा बढ़ा दी। एक बक्स पर बैठकर उसने मुझे अपने सामने खड़ा किया और दायें-बायें घुमाकर मुझे देखा और तब पूछा :

"तुम कहाँ से आये हो?"

यह प्रश्न मुझे बड़ा अजीब लगा, क्योंकि हर रोज़ नाश्ते, खाने और चाय के वक़्त मैं उसी की बगल में बैठा करता था। मैंने जवाब दिया :

"मैं इस घर का नाती हूँ..."

"ओ! ठीक," वह बोला और फिर मौन हो गया-अपनी उँगलियों में ध्यान केन्द्रित किये हुए।

मैंने सोचा इसे और समझाकर बात कहनी चाहिए। बोला :

"पर मैं काशीरिन नहीं हूँ, पेशकोव हूँ..."

"पेशाकोव?" उसने गलत उच्चारण के साथ नाम को दुहराया और बोला, "बहुत खूब।"

इसके बाद मुझे एक ओर हटाया, उठा और अपनी मेज की तरफ जाते हुए बोला :

"तो, यहाँ चुपचाप बैठे रहो..."

मैं बड़ी देर तक बैठा उसके प्रयोग देखता रहा। ताँबे के टुकड़े को चिमटी से थामकर उसने उसका बुरादा बनाना शुरू किया। जब काफी मात्रा में बुरादा तैयार हो गया, तो उसने उन सुनहले कणों को झाड़कर एक जगह जमा किया और एक मोटे-से प्याले में डाल दिया। तब एक डिब्बे से नमक जैसी सफेद कोई बुकनी निकाली और उसे बुरादों में मिलाकर दोनों के ऊपर एक काला द्रव पदार्थ छिड़क दिया। प्याले से भाप निकलने जैसी आवाज़ उठी और लगा फेन और धुआँ उठने। उसकी कड़वी गन्ध

से मुझे खाँसी आने लगी। जादूगर ने गर्व के साथ पूछा :

"क्यों अच्छी नहीं लग रही महक?"

"बिल्कुल ठीक! यह बहुत अच्छी बात है, भाईजान!"

लेकिन मुझे उसमें गर्व करने जैसी कोई बात नहीं मालूम हुई। मैंने रुखाई से जवाब दिया :

"महक यदि बुरी है, तो अच्छी तो न हुई।"

उसने आँख मटकाते हुए कहा : "सच? लेकिन हमेशा ऐसा नहीं होता, भाईजान! अच्छा यह बताओ, नकिलबोन्स* खेलते हो?"

"डिब्स* न?" मैंने पूछा।

"हाँ, डिब्स ही।"

"खेलता हूँ।"

"अच्छा, मैं तुम्हारे लिए हड्डी में सीसा भर दूँ?"

"ज़रूर।"

"तो लाओ हड्डी।"

यह कहकर वह धुएँवाला प्याला लिए मेरे पास आया और एक आँख से मेरी ओर ताक़ते हुए बोला :

"अगर मैं तुम्हारे लिए इसे भर दूँ, तो वादो करो कि फिर यहाँ नहीं आओगे।"

उसके इस प्रस्ताव से मुझे बड़ी चोट लगी। मैंने छूटते ही जवाब दिया :

"मैं यों ही तुम्हारे यहाँ कभी नहीं आऊँगा..." यह कहकर मैं बगीचे में निकल गया।

बगीचे में नाना सेब के वृक्षों में खाद डाल रहे थे। पतझड़ आरम्भ हो चुकी थी। पत्ते झड़ने भी लगे थे।

मुझे कैंची थमाकर नाना ने रसभरी की झाड़ियाँ छाँटने को कहा।

मैंने सवाल किया :

"'बहुत खूब' क्या बना रहा है?"

उन्होंने बिगड़कर कहा :

"वह कोठरी को चौपट किये दे रहा है। फ़र्श जल चुका है और दीवार के कागज पर भी जगह-जगह दाग लग गये हैं, एक जगह कागज ही नोच डाला है उसने। अब तो हम उसे कमरा खाली कर देने को कहनेवाले हैं।"

रसभरी की झाड़ियों को छाँटते हुए मैंने सहमति प्रकट की।

दरअसल मैंने जल्दबाजी से काम लिया था।

बरसात की शामों में यदि नाना बाहर चले जाते, तो नानी रसोईघर में दावत

*''नाकिकलबोन्स'' अथवा ''डिब्स'' बच्चों का एक खेल है, जो भेड़ की हड्डियों से खेला जाता है।

किया करती थी। उसमें घर के सभी किरायेदारों को न्योता दिया जाता था। दोनों गाड़ीवान, अर्दली तथा कभी-कभी हमारी एक मनचली किरायेदारिन को भी बुलाया जाता था। मस्त तबीयतवाली पेत्रोव्ना भी अक्सर आती। इनके अलावा 'बहुत खूब' भी आता और आकर, अलावघर के सिरे पर मौन और निश्चल बैठ जाता। गूँगा स्त्योपा तातार वलेय के साथ ताश का रंग जमाता। वलेय खेलते-खेलते स्त्योपा की चपटी नाक पर चपत लगाकर कहता :

"शैतान कहीं का!"

प्योत्र काका अपने साथ बड़ी-सी सफेद डबलरोटी और रसभरी का मुरब्बा लेकर आते। रोटी के टुकड़े करने के बाद उन पर मुरब्बे की मोटी तहें लगाते और तब एक-एक टुकड़ा हथेली पर रखकर हर मेहमान की ओर बढ़ाते हुए अदब से कहते :

"लीजिये, खाइये!"

टुकड़ा उठाया जाने पर वह अपनी काली हथेली को गौर से देखते और यदि कहीं थोड़ा-सा मुरब्बा लगा रह जाता, तो उसे जीभ से चाट जाते।

पेत्रोव्ना अपने साथ चेरी की शराब लाती और मनचली किरायेदारिन अखरोट और मिठाइयाँ। इस तरह पूरी दावत का इंतजाम हो जाता। मेरी नानी के लिए दिल बहलाव का इससे अधिक रुचिकर साधन और न था।

ऐसी ही एक दावत उस घटना के थोड़े ही दिन बाद हुई, जब 'बहुत खूब' ने मुझे इस बात के लिए घूस देनी चाही थी कि मैं फिर कभी उसके कमरे में न आऊँ। बाहर झड़ी लगी हुई थी। हवा पेड़ों को झकझोर रही थी। उनकी डालियाँ घर की दीवार को खरोंच रही थीं। गर्म रसोईघर और भी सुखद लग रहा था। सब लोग उस दिन खास तौर पर शान्त और रंग में थे। आज नानी ने भी अपनी कहानियों का खज़ाना खोल दिया था।

अलावघर की सीढ़ियों पर पैर रखे वह उसके सिरे पर लोगों की ओर झुकी बैठी थी और टीन का एक छोटा-सा चिराग सभी पर रोशनी डाल रहा था। रंग में आने पर वह अलावाघर के ऊपर जा बैठती। उसका कहना था कि सुननेवाले नीचे और कहनेवाला ऊँचाई पर रहे, तो बड़ी आसानी होती है।

मैं उसके पैरों के निकट चौड़ी पैड़ी पर बैठा था। 'बहुत खूब' का सिर ठीक मेरे नीचे था। नानी योद्धा इवान और साधु मिरोन की कहानी सुना रही थी। लय के साथ उसकी सुरीली आवाज़ प्रवाहित हो रही थी :

जुग-जुगन्तर बीते, एक था गोरदिओन,
महापातकी महा-अधरमी एक था गोरदिओन।
काजल-काला उसका अन्तर, दिल था उसका पत्थर,
साँच-सचाई की गन्ध न थी दया-धरम से सूना,

दुबका पाप के बिल के अन्दर, जैसे रहे छछूँदर,
हर नेकी से रहा घिनाता पापी गोरदिओन,
पर सबसे बद उसको लगता था तपसी मिरोन।
वह तपसी जो छिमा-प्यार का पूजक सच्चा नर था,
ईसा की सच्चाई पर जिसका तन-मन न्योछावर था।
सो, रनपति उस गोरदिओन ने उस दिन हाँक बुला भेजा
अपना रनबाँकुरा सिपाही, जिसका नाम इवानुश्का।
"अभी चला जा ऐ इवान, बुड्ढे
मिरोन के बासे पर,
झटपट काटकर ला दे उस सतजुगी
अहंकारी का सिर-
किसी बात से ज़रा न डर, एक
बार में काटके सिर
पकी हुई दाढ़ी से धर, लाके यहाँ
पर हाजिर कर!
मिले शिकारी कुत्तों को तो
महामहोच्छव का यह औसर!"
झटपट चल पड़ा इवान हुक्म का बन्दा,
हुक्म बजाने, करने पाप का धन्धा,
मन-मन तीता, मन ही मन पछताता,
"हे भगवान, न अपने मन से जाता-
यह पातक, यह ईस-बदा अपराध,
मेरे हाथों और किसी की साध!"
सहन तले उसने मन मार,
छिपा धरी बाँकी तलवार
आया तपसीजी के पास,
झुककर बहुत किया अरदास
"सतजुगिया बाबा परनाम,
कुसल-छेम तो ठीक तमाम?
कृपा बनाये हैं जगदीश? बरसे
है दिन-रैन असीस?
बिहुंसे अन्तरजामी बरबस
सतजुगिया मिरोनजी तापस!"
कहते भये बचन अति गूढ़,

"सुन ले रे रनबँका मूढ़
सच मैं समझ न पाऊँ काहे,
तू यों धोखा देना चाहे,
ईसा जो कि मसीहा हमारा,
सो घट-घट का जानन-हारा
भगतबछल सो सबका नाथ,
नेकी-बदी उसी के हाथ
सो जाने तेरी बदनीयत,
इसमें शक न शुबह की इल्लत!"
सकते में पड़ गया इवान!
लज्जा से गड़ गया इवान!
डरा कि गोरदिओन का क्रोध,
कहीं हमीं से ले परिसोध
चमड़म्यान में से झटकार,
खैंच लई बाँकी तलवार
बेझिझक झटके से माँज,
बार-बार झटके से माँज
रगड़-रगड़ कर बारम्बार,
चमकायी जहरीली धार
"मैंने तो सोचा था, बाबा,
सहन तले तलवार को दाबा,
तेरी आँख न लख पायेगी,
दुखबर्शन से बच जायेगी
अनजानापन ही वर होगा,
तेरे लिए ही बेहतर होगा,
सो तूने जो ली ली देख,
तो फिर बुड्ढे घुटने टेक,
आदिसोत पर ध्यान लगा
कर ले अन्तिम अरज-दुआ,
माँग दुआ जग की खातिर,
जग के सब जन की खातिर
माँग दुआ मेरी खातिर,
माँग दुआ अपनी खातिर!
फिर लेकर तेरी आसीस,

काँटू तेरा जर्जर सीस!
सतजुगिया तपसी परबीन,"
घुटने टेक भये लौलीन
प्रभु से करने लगे अरदास,
नन्हें बलूत बिरवे के पास
हरी डाल का हरा चँवर,
डुला किया सिर के ऊपर
सतजुगिया बाबा मुसकायें,
मीठे-मीठे बैन सुनायें
"एक बात सुन ऐ इवान,
जुग-जुग होगी बाटजुहान
जगके सब जन की खातिर,
तेरी और अपनी खातिर
दुआ करूँ तो बेर लगे,
जुग-जुगाँत की देर लगे
इससे भला कि टीम न टाम,
सिर काटा और काम तमाम
जल्द मामला रफा करे,
व्यर्थ न मालिक खफा करे
सिर लेकर हो नौ-दो-ग्यारह,
हो जाये फिर तो पौ बारह"
आग-बबूला हुआ इवान,
घुड़का उनपर भौंहे तान
एड़ी लहर कपार चढ़ा,
डींगभरा यह वचन कढ़ा :
"मुँह से निकल पड़ी जो बानी,
उसमें सहूँ न आनाकानी
दुआ करो मैं राह तकूँगा,
जुग-जुग तक भी बैठ सकूँगा,"
तपसी ध्यान लगा बैठे,
लौ की धूनी जगा बैठे
घड़ी लगी दो-घड़ी लगी,
अहर-पहर की लड़ी लगी,
साँझ पड़ी झुटपुटा हुआ,

तपसी तप में जुटा हुआ,
रात हुई अधरात हुई,
पुनः सुबह की बात हुई
ध्यान लगा सो लगा रहा,
पूजा में मन पगा रहा,
बीते दिन, बीतीं रातें,
कितनी बीतीं बरसातें,
सरदी आयी, गयी बहार,
गरमी गयी औ' गयी फुहार,
बरस गये, जुग बीत गये
कितने कालघट रीत गये
हिला न तपसी का आसन,
घुटने टिके रहे पाहन,
बढ़ बलूत आकास लगा,
पाकुहों से बन-बाग उगा
जंगल बढ़ घनघोर हुए,
जीवजन्तु चहुँ ओर हुए
दुआ मगर बढ़ती ही गयी,
ऊँचे-ऊँचे चढ़ती ही गयी,
इस तरह आज तक जंगल में
तपसी मिरोन तप करते हैं
अनथके दुआएँ करते हैं, अनवरत
जाप-जप करते हैं,
जगती के सब उनकी खातिर
वह ईसदुहाई करते हैं,
हम अधम पापियों पर प्रभु
की सहाय-गुहराई करते हैं,
यह भीख माँगते रहते हैं वह
क्वाँरी माता मरियम से
माता, जगके सब नर-नारी
पर तेरी मुस्काहट बरसे!
उनके ही पास पड़ाव तान
रहता है रनबँका इवान
इसकी बाँकी तलवार म्यान

सड़ कर है माटी के समान
औंठिया कवच व जिरह-बख्तर
झरते रहते हैं बिझियाकर,
फेंटे, पेटी रनके बाने, कब के
सड़े खुदा जाने!
खुद भी गरमी से सड़ा-सड़ा,
फिर भी पूरा बेसड़े पड़ा,
कीड़ों ने लगभग निगल लिया,
फिर भी पूरा न अहार किया,
भेड़िये बराये रहते हैं, भालू
कतराये रहते हैं,
अंधड़ बच-बच कर कहते हैं,
बरफान बचाये रहते हैं,
पाले-बनौरियाँ लू-भऊक,
सब उसे बराबर कहते हैं,
हिलना-डुलना उसका मुहाल है,

लुंज-पुंज सा बुरा हाल है
उठने की कौन कहे,
कर तक उठा नहीं सकता सिर तक
औ' मैं जानूँ यह मिली सजा
चूँ उसने बदी को कान दिया,
चूँ और के चाहे चाह करी
चूँ धरम की ना परवाह करी,
अब भी वह सतजुगिया तपसी
गुहारते खैर सभी जन की,
दुआएँ बहती रहती हैं निरन्तर
कि तर जावें हमारे जैसे पामर,
बही जातीं खुदा के पास ऊपर
नदी बहती कि जैसे ता-समुन्दर।

कहानी शुरू होते ही 'बहुत खूब' न जाने क्यों अत्यन्त उत्तेजित हो गया। वह अपने हाथों को अजीब तरह से नचाने, चश्मा उतारने-चढ़ाने या गीत की ताल पर उन्हें हिलाने लगा! उसकी गर्दन ऊपर-नीचे हो रही थी तथा उँगलियाँ बार-बार आँखों

पर जा रही थीं। माथे और गालों से पसीना जारी था, जिसे वह पोंछ रहा था। अगर कोई ज़रा भी हिलता-डुलता, खांसता या फ़र्श पर पाँव रगड़ता तो वह "शी-शी" कर उठता।

नानी का गीत खत्म होते ही वह हाथ झुलाता हुआ फुर्ती से उठा और अजीब ढँग से कमरे में चक्कर काटता हुआ अपने आप बकने लगा :

"लाज़वाब चीज़ है! इसे तो कापी में उतार लेना चाहिए। कितनी सच्ची कहानी है..."

मैंने देखा वह रो रहा था। आँखों से आँसुओं की अविरल धारा प्रवाहित हो रही थी। मुझे उसका व्यवहार विचित्र और मर्मबेधी मालूम हुआ। रसोईघर में चक्कर काटते हुए वह बार-बार अटपटे ढँग से उछला। चश्मे को वह कानों पर चढ़ाने की कोशिश कर रहा था, पर हर बार नाकाम रहता था। प्योत्र काका हँस पड़े। दूसरे लोग तमाशा देख रहे थे-मौन, हैरान। नानी ने जल्दी से कहा :

"कापी में उतारना चाहते हो, तो उतार लो। कोई हर्ज नहीं। मैं तो ऐसी और भी बहुत कहानियाँ जानती हूँ..."

उसने उत्तेजित स्वर में जवाब दिया :

"और नहीं; मुझे तो बस यही चाहिए। इसमें रूसी मिट्टी की मादक गन्ध है।"

फुदकते-फुदकते वह रसोईघर के बीचोंबीच रुक गया और दाहिने हाथ को झुलाते तथा काँपते बायें हाथ में चश्मा पकड़े लगा भाषण देने। भाषण पुरज़ोर और लम्बा था। बीच-बीच में पैर पटककर और आवाज़ तेज़ कर वह अपनी बातों पर ज़ोर देता जाता था। वह बार-बार यही कहता था :

"दूसरों के विवेक के सहारे नहीं जीना चाहिए।"

यक़ायक़ उसकी आवाज़ टूटी, वह चुप हो गया। उसकी दृष्टि लोगों के चेहरों पर गयी और शर्मिन्दा होकर तथा सिर झुकाये वह वहाँ से चला गया। सभी मुस्कराते और झेंप अनुभव करते हुए एक दूसरे का मुँह देखने लगे। किसी की समझ में नहीं आ रहा था कि माज़रा क्या है। नानी दीर्घ निःश्वास छोड़ती हुई खिसककर अलावघर की छाया में जा बैठी।

पेत्रोव्ना ने अपने मोटे लाल होंठों पर हाथ फेरते हुए पूछा :

"लगता है कि किसी बात से जल-भुन गया है।"

प्योत्र काका बोले :

"ऐसी कोई बात नहीं है। यह तो ऐसे ही..."

नानी अलावघर से नीचे उतरी और समोवार गर्माने लगी। प्योत्र काका ने शान्त स्वर में कहा :

"पढ़े-लिखे लोगों का यही हाल होता है।"

वलेय ने राय जाहिर की :

"शादी न करने से ही ऐसा होता है।"

सब लोग हँस पड़े। प्योत्र काका ने कहा :

"आँसू तक आ गये उसकी आँखों में! जैसे कि पहले रास्ते पर फूल बिछाये जाते हों और आज केवल काँटे रह गये थे।"

इसके बाद रसोईघर का वातावरण अनमना हो गया। मेरा मन गहरी उदासी से टीसने लगा। 'बहुत खूब' के व्यवहार ने मुझे चक्कर में डाल दिया था। मुझे उसपर दया आ रही थी। उसकी गीली आँखें भुलाये न भूलती थीं।

उस दिन वह रात भर कहीं बाहर रहा और अगले दिन दोपहर भोजन के बाद लौटा, गुमसुम, परेशान और बुरी तरह झेंपता हुआ।

कसूर करने पर छोटे बच्चे जैसे करते हैं, उसी तरह वह नानी से बोला :

"कल मैंने नाटक कर दिया। तुम नाराज़ तो नहीं हो?"

"मैं क्यों नाराज़ होने लगी?"

"इसलिए कि मैं दावत में भाषण देने लगा।"

"उससे किसी का कुछ बिगड़ा तो नहीं..."

मुझे लगा कि नानी उससे डरती है। वह उससे नज़र नहीं मिला पा रही थी और उसकी बोली में असाधारण नरमी थी।

वह पास आकर बहुत ही सरलता से बोला :

"मेरा अपना कोई नहीं है और अकेलेपन से मेरा दम घुटता है। ऐसे आदमी का यही हाल होता है। जब दिल का गुबार नहीं निकल पाता, तो प्रायः बेमौके ही बाँध टूट जाता है। ऐसे समय आदमी पेड़ और पत्थर को भी अपनी आत्मा की पुकार सुनाने को तैयार हो जाता है..."

नानी उससे दूर हटते हुए बोली :

"तुम बहू क्यों नहीं ले आते?"

उसके माथे पर बल पड़ गया। ज़ोर से हाथ झुलाते हुए उसने कहा,"ओह" और बाहर निकल गया।

जब वह ओझल हो गया, तो नानी ने नाक में एक चुटकी नास डाली और बिगड़कर मुझसे बोली :

"तू उसके साथ मत रहा कर। वह न जाने कैसा आदमी है..."

पर मैं फिर भी उसकी ओर खिंचे बिना न रह सका।

उसने जब यह कहा था कि "मेरा कोई नहीं है," उस समय उसके चेहरे का भाव मेरे मन में गड़ गया था। उसमें कुछ बात थी जो मेरे हृदय को छू गयी और मैं उसके पीछे हो लिया।

मैंने उसके कमरे में झाँककर देखा। कमरा खाली था। केवल दुनिया भर के अजीब और बेकार सामान उसमें भरे पड़े थे-कमरे के मालिक की ही तरह अजीब

और बेकार। मैं बाग में गया। वहाँ वह कोनेवाले गढ़े में एक अधजले शहतीर पर बैठा हुआ था-कुहनियाँ घुटनों पर टेके, हाथ गर्दन पर बाँधे, झुका हुआ। शहतीर पर धूल जमी थी। उसका एक सिरा घास और काँटों के अन्दर से आकाश की ओर झाँक रहा था। स्पष्टतः वह आराम से बैठने की जगह न थी, पर इस बात ने मुझे उसकी ओर और भी आकर्षित किया।

कुछ देर तक तो वह घुग्घू की तरह मेरी ओर देखता रहा, मानो मैं हूँ ही नहीं! फिर हठात् चिढ़ी हुई आवाज़ में बोला :

"मुझे बुलाने आये हो?"

"नहीं।"

"फिर क्या है?"

"कुछ भी नहीं।"

उसने अपना चश्मा उतारकर रुमाल से, जिसपर बहुत-से लाल और काले धब्बे लगे थे, पोंछना शुरू किया। फिर बोला :

"अच्छा, आ जाओ यहाँ।"

मैं जाकर उसकी बगल में बैठ गया। उसने मुझे ज़ोर से चिपटा लिया। बोला :

"यहाँ बैठो। हम दोनों इसी तरह बैठे रहेंगे। बोलेंगे नहीं, समझ गये न?..." फिर कहा : "तुम धुन के पक्के हो?"

"हाँ।"

"बहुत खूब!"

हम दोनों बहुत देर तक मौन बैठे रहे। शाम का वक़्त था और शाम भी अनोखी, जैसी गर्मियों के अन्त में हुआ करती है-शान्त और लजीली। फूल-पत्तों की मुस्कान विदाई लेने लगती है और वातावरण में अजीब उदासी छा जाती है। धरती से ग्रीष्म की भीनी सुगन्ध विदा हो जाती है। उसका स्थान ले लेती है अप्रिय सीलभरी गन्ध। वातावरण विलक्षण रूप से पारदर्शी हो जाता है और गुलाबी आकाश में डोमकौओं की क्रीड़ा देखकर मन में न जाने क्यों उच्छ्वास का वेग उठने लगता है। हर चीज़ ऐसी गहन निस्तब्धता में डूब जाती है कि पत्ते की सरसराहट या पंछी के पंखों की फड़फड़ाहट भी चौंका देने को काफी होती है। दो क्षण के लिए आदमी की तल्लीनता भंग हो जाती है, पर फिर वही अतल मौन। खामोशी सारी पृथ्वी को बाँहों में भर लेती है और आत्मा में बस जाती है।

ऐसे क्षणों में बड़े ही पवित्र विचारों का उदय होता है, पर वे मृगतृष्णा की स्वच्छ और सूक्ष्म होते हैं, शब्दों की पकड़ में नहीं आते। टूटते नक्षत्र की तरह क्षण भर के लिए धरती और आकाश को आलोकित कर वे लुप्त हो जाते हैं और उन्हीं की तरह आत्मा को मौन-व्यथा से भर देते हैं अथवा अपनी प्यारभरी थपकियों से उसे आलोड़ित कर देते हैं। हृदय तरल होकर विशिष्ट आकार ग्रहण कर लेता है। ऐसे ही क्षणों में

चरित्र का निर्माण होता है।

अपने साथी की गरम देह से सटकर बैठा मैं आँखों से सेब की डालियों की नक्काशी के उस पार का दृश्य पी रहा था। अरुण आकाश में लालों का झुण्ड उड़ रहा था, चुड़ुक्कों की एक टोली शलजम की क्यारियों में बीज की तलाश में सूखे पत्ते नोच रही थी। डरावनी शक्लों वाले सफेद बादलों की टेढ़ी-मेढ़ी पाँत खेतों के उस पार तैरती चली जा रही थी। नीचे कौओ की जमात काँव-काँव करती कब्रिस्तान में बसेरा लेने के लिए उड़ी जा रही थी। इस दृश्य में रस था, सहज बोधगम्यता थी।

मेरा साथी बीच-बीच में दीर्घ निःश्वास छोड़कर बोल उठता :

"कितना सुन्दर, कितना अच्छा है! मेरे भाई, तुम्हें ठण्ड तो नहीं लग रही है? काफी सर्दी है।"

धीरे-धीरे अंधकार छा गया और आकाश और धरती उसमें डूब गये। उसने कहा :

"बस, काफी है! आओ चलें..."

बाग के फाटक पर पहुँचकर वह रुक गया और बोला :

"तुम्हारी नानी बहुत अच्छी है। सचमुच इस दुनिया में एक से एक विलक्षण व्यक्ति भरे पड़े हैं।"

इसके बाद आँख बन्द कर वह मुस्कराया और स्पष्ट, मधुर शब्दों में नानी के रात के गीत की कड़ियाँ दुहराने लगा :

औ' मैं जानूँ यह मिली सजा
चूँ उसने बदी को कान दिया
चूँ और के चाहे चाह करी
चूँ धरम की ना परवाह करी...

मुझे आगे ठेलते हुए उसने कहा :

"इस गीत को याद रखना... अच्छा, तुम्हें लिखना आता है?"

"नहीं।"

"तो सीख डालो लिखना। और सीखकर नानी के सभी गीत लिख लेना। यह बहुत ज़रूरी है।"

इसके बाद से हम दोनों में गाढ़ी दोस्ती हो गयी। अब जब इच्छा होती, मैं 'बहुत खूब' के कमरे में पहुँच जाता। चिथड़ों से भरे एक बक्स पर बैठकर मैं चुपचाप उसके प्रयोगों को देखा करता। वह जस्ते का एक टुकड़ा लेकर गलाता या ताँबा गरम करता। जब लाल हो जाता, तो छोटी-सी निहाई पर रखकर खिलौने जैसी एक हथौड़ी से उसे पीटकर पत्तर बनाता, बालू के कागज, तरह-तरह की रेतियों और आरियों से काम करता। एक आरी तो बाल की तरह महीन थी। हर चीज़ को वह ताँबे की बारीक काँटी पर तोलता जाता। चीनी मिट्टी के मोटे-मोटे प्यालों में वह विभिन्न तरल

पदार्थों को मिलाता। उनके धुएँ से कमरे में तेज़ दुर्गंध फैल जाती। बीच-बीच में वह एक मोटी-सी क़िताब से कुछ देखता जाता। उस समय उसके माथे पर बल पड़ जाता; वह आप ही कुछ बोलता, लाल होंठों को चबाता या खरखरी आवाज़ में गुनगुनाता-"ओ, सारोन का गुलाब..."

ऐसे मौकों पर मैं चुप्पी भंगकर पूछ बैठता :

"क्या बना रहे हो?"

"अरे, एक चीज़, मेरे भाई..." वह जवाब देता।

"क्या चीज़?"

"अब तुम्हें कैसे बताऊँ क्या चीज़..."

"नाना कहते हैं कि तुम शायद जाली सिक्के बनाते हो..."

"नाना ऐसा कहते हैं? छिः। यह सब मूर्खता की बातें हैं। रुपया भी, भाई जान, कोई चीज़ है-तुच्छ!"

"रुपये के बिना क्या तुम रोटी खरीद सकते हो?"

"यह तो तुमने ठीक कहा। बिना रुपये के रोटी नहीं खरीदी जा सकती..."

"यही तो बात है। अच्छा, क्या रुपये के बिना गोश्त खरीदा जा सकता है?"

"नहीं, गोश्त भी नहीं..."

वह हँसने लगा। उसकी वह शान्त हँसी मुझे बहुत अच्छी लगती थी। हँसते हुए वह कान के पीछे ऐसे गुदगुदाने लगा, जैसे पिल्ले को गुदगुदाते हैं। बोला :

"तुमसे, भाईजान, जीतना कठिन है। तुम हमेशा मुझे निरुत्तर कर देते हो। इसलिए अब बातचीत खत्म..."

कभी-कभी काम रोककर वह मेरे साथ खिड़की के दासे पर आ बैठता। वहाँ हम सेब के पत्तों का झड़ना या छत और आँगन में, जहाँ घास-पात उग आया था, पानी का बरसना देखा करते। 'बहुत खूब' बहुत कम बोलता, पर जो बात करता, जँचते शब्दों में। ज्यादातर वह इशारों से ही काम चलाता। किसी चीज़ की ओर मेरा ध्यान आकर्षित करना होता, तो धीरे से कोहनी मारता और तिरछी आँख से उधर इशारा करता।

हमारे आँगन में देखने लायक कुछ विशेष न था। पर उन इशारों और यदा-कदा के दो संक्षिप्त शब्दों ने हर चीज़ में विलक्षणता उत्पन्न कर दी। वे सदा के लिए मेरी याद में टँक गये। एक दिन एक बिल्ली आँगन में दौड़ी जा रही थी। राह में एक जगह पानी जमा था। बिल्ली रुककर उसमें अपनी परछाई देखने लगी और उसने दूसरी बिल्ली को मारने के लिए पंजा उठाया। 'बहुत खूब' ने इसपर टीका की :

"जानते हो, बिल्लियाँ बड़ी गर्वीली और शँकालु होती है..."

एक दिन मामाई नामक लाल-सुनहरा मुर्गा उड़कर बाग की बाड़ पर चढ़ गया, जमकर बैठ गया, पंख फड़फड़ाये, तो गिरते-गिरते बचा और झल्लाकर गर्दन बढ़ाते

हुए कुड़-कुड़ करने लगा। 'बहुत खूब' ने टीका की :

"अकड़ जनरल की, मगर अक़्ल नदारद।"

अर्दली वलेय बूढ़े घोड़े की तरह भद्दे ढँग से आँगन का कीचड़ पार कर रहा था। गालों की उभरी हड्डियों वाला अपना चेहरा फुलाये उसने आँखें सिकोड़कर आकाश की ओर देखा। पतझड़ की धूप की एक पतली रेखा उसके सीने पर पड़ी, जिससे उसकी वर्दी का पीतल का बटन चमक उठा। उसने मुड़ी उँगलियों से बटन को टटोला। इधर 'बहुत खूब' ने टीका की :

"ऐसे देख रहा है मानो तमगा हो!"

जल्द ही मुझे पता चला कि 'बहुत खूब' के प्रति मेरा स्नेह अत्यन्त प्रगाढ़ हो चुका है। वह हमारे सुख-दुःख का अभिन्न साथी बन गया था। वह स्वयं चुप रहना पसन्द करता था, पर मेरे भीतर जो होता, उसे कह डालने से उसने मुझे कभी नहीं रोका। इसके विपरीत, नाना हमेशा मुझे टोक दिया करते थे। वह बीच ही में बोल उठते :

"तू बड़ा बकवादी है; बन्द कर बक-बक।"

नानी अपने ही विचारों में इतनी डूबी रहती कि दूसरों के विचार सुनने-समझने की क्षमता ही न थी।

लेकिन 'बहुत खूब' सदा बड़े ध्यान से मेरी बातें सुनता और प्रायः मुस्कराकर कहता :

"मगर भैया, यह तो तुम मन से गढ़कर कह रहे हो..."

उसकी टीका संक्षिप्त, सारगर्भित और सामयिक होती। ऐसा लगता मानो वह अन्तर्यामी है और मुँह से बात निकलने के पहले ही ताड़ जाता है कि मैं असत्य और अनावश्यक चर्चा कर रहा हूँ। ऐसी अवस्था में उसके मुँह से छः शब्द निकलते, तलवार की धार की तरह और उस अनावश्यक चर्चा की गर्दन धड़ से जुदा हो जाती :

"तुम झूठ बोल रहे हो, भैया!"

यह मुझे जादू जैसा लगता था। प्रायः मैं जानबूझकर उसकी इस विलक्षण शक्ति का इम्तहान लेता था। मैं गढ़कर कोई बात कहना शुरू कर देता और ऐसे सुनाता, मानो वह बिल्कुल सच हो। लेकिन कुछ ही क्षण सुनने के बाद वह सिर हिलाकर कह उठता :

"तुम झूठ बोल रहे हो, भैया!"

"तुम कैसे जानते हो?" मैं पूछता।

"मुझे खूब मालूम है..."

नानी जब सेन्नाया चौक के नल पर पानी लाने जाती, तो अक्सर मुझे भी साथ ले लेती थी। एक दिन हम लोगों ने देखा कि पाँच शहरी आदमी एक देहाती को पीट रहे हैं। बेचारे को ज़मीन पर पटककर वे कुत्तों की तरह उसे नोच रहे थे। नानी

ने झट बहंगी से बालटी उतारी और उसी के डण्डे को घुमाती हुई दौड़ी। उसने चिल्लाकर मुझसे भाग जाने को कहा।

पर मैं डर गया और उसके पीछे दौड़ने लगा। शत्रु पर मैं भी ढेले बरसाने लगा और नानी ने बहंगी के डण्डे से उनकी मरम्मत शुरू की। दूसरे लोग भी आ गये और शहरवाले भाग खड़े हुए। बेचारे देहाती का मुँह बुरी तरह कुचल गया था। नानी उसके मुँह पर पानी डालने लगी। वह अपनी मैली उँगलियों से कटा हुआ नथुना पकड़े ज़ोर-ज़ोर से खाँस और रो रहा था। उसके घावों से खून का फौवारा छूट रहा था, जो उँगलियों के बीच होकर नानी के चेहरे और छाती को लाल कर रहा था। उस दृश्य की याद से मैं आज भी काँप उठता हूँ। नानी भी रो रही थी। उसकी पूरी देह सिहर रही थी।

घर लौटकर मैं अपने किरायेदार दोस्त के पास दौड़ा और उसे वह किस्सा सुनाने लगा। वह काम छोड़कर मेरी बात सुनने लगा। लम्बी रेती हाथ में नंगी तलवार की तरह तनी हुई थी। चश्मे के अन्दर से वह मेरी ओर एकटक देख रहा था। फिर टोककर असाधारण स्वर में बोला :

"शाबाश, बिल्कुल सच कह रहे हो तुम! बहुत खूब!"

मेरी आँखों के सामने वह दृश्य अब भी नाच रहा था, इसलिए उसके टोकने का ख़याल किये बिना मैं बोलता गया। पर वह मेरे कन्धे पर अपना हाथ रखकर चहलकदमी करने लगा।

"बस अब काफी हो गया। तुम्हारी बात खत्म हो चुकी, समझे न?"

मैं चुप हो गया। पहले तो मुझे उसका इस तरह टोकना कुछ अखरा, पर ज़रा सोचने के बाद मैंने महसूस किया कि उसने कहानी पूरी हो जाने के ठीक बाद में टोका था। मैं आश्चर्यचकित रह गया।

"ऐसी बातों पर बहुत ज्यादा न सोचा करो। उन्हें भुला ही देना उचित है," उसने कहा।

उसके मुँह से अचानक ऐसी उक्तियाँ निकल जातीं, जो मुझे जन्म भर न भूलेंगी। एक बार मैं उसे अपने शत्रु क्लूश्निकोव के बारे में बता रहा था। क्लूश्निकोव नोवाया सड़क के छोकरों की उस टोली में शामिल था, जिससे मेरी प्रायः मुठभेड़ हुआ करती थी। वह खूब मोटा-ताजा था और उसका सिर भी खूब बड़ा। न वह मुझसे पार पाता, न मैं उससे। मेरी समझ ही में न आता कि उसे किस तरह पछाड़ूँ। अपनी यही समस्या मैं बयान कर रहा था। 'बहुत खूब' सुनता रहा और सुनकर बोला :

"जिस ताक़त की तुम बात कर रहे हो, वह बेमानी है। असली ताक़त है फुर्ती। फुर्ती से काम लेनेवाला ही दरअसल ताक़तवर होता है-समझे न?"

अगले रविवार को मैंने खूब फुर्ती से मुक्का चलाना शुरू किया। क्लूश्निकोव बात की बात में चित्त हो गया। उस दिन से 'बहुत खूब' की बातों का वजन मेरे

लिए बहुत बढ़ गया। एक बार उसने कहा :

"असली काम यह है कि आदमी चीज़ों की पकड़ सीखे। और यह काम बड़ा ही मुश्किल होता है।"

मैं उसकी बात का अर्थ नहीं समझा। लेकिन इस तरह की उसकी सभी बातें मेरे मस्तिष्क में बैठ गयीं। इसका कारण यही था कि वे पहेली की तरह थीं, सहज और रहस्यमय। वे मस्तिष्क को जकड़ लेती थीं। पकड़ने ही की बात लीजिये : ढेला, रोटी का टुकड़ा, प्याली या हथौड़ी को पकड़ने में सीखना ही क्या होता है? फिर भी चीज़ों की पकड़ मुश्किल है-है न?

'बहुत खूब' दिनोंदिन हमारे घर में सभी की आँख का काँटा बनता जा रहा था। यहाँ तक कि मनचली किरायेदारिन की बिल्ली भी, जो सभी से हिली-मिली रहती थी, दूसरों की तरह उसकी गोद में नहीं जाती थी। वह पुचकारता, तो बिल्ली उसके नजदीक नहीं आती थी। इसके लिए मैं कान ऐंठकर उसकी खबर लेता और लगभग रुआँसा होकर उसे यह समझाने की कोशिश करता कि इस आदमी से डरने की ज़रूरत नहीं है।

उसका कहना था कि उसके कपड़ों से तेज़ाब की गन्ध उड़ती है, इसीलिए बिल्ली उसके नज़दीक नहीं आती। लेकिन दूसरे लोगों और मेरी नानी का कुछ और ही कहना था, जो मैं जानता था। वे लोग उससे बैर रखते थे और यह मुझे अन्यायपूर्ण और दुखद लगता।

नानी बिगड़कर कहती :

"तू क्यों हमेशा उसकी दुम बना रहता है? वह तुझे भी अपनी ऊट-पटाँग विद्या सिखा देगा..."

मेरा कमीना, लालमुँहा नाना मुझे उसके कमरे में जाने के कारण बेरहमी से पीटा करता था। स्वभावतः 'बहुत खूब' को मैंने नहीं बताया कि उसके पास जाने की मुझे मनाही है, पर लोग उसके बारे में क्या कहते हैं, यह मैं उसे बता देता था। मैंने कहा :

"नानी तुमसे डरती हैं वह कहती है कि तुम जादू करते हो। नाना का भी यही ख़याल है। वह कहते हैं कि तुम ईश्वर को नहीं मानते और लोगों के लिए खतरनाक हो..."

उसने अपना सिर ऐसे हिलाया, मानो मक्खी उड़ा रहा हो। उसके पीले चेहरे पर मुस्कान खेल गयी, जिसे देखकर मेरे हृदय में असह्य व्यथा हुई। वह शान्त स्वर में बोला :

"ये बातें मुझसे छिपी नहीं है... लेकिन बहुत कष्टदायक है न?"

"हाँ," मैंने कहा।

"सचमुच बहुत कष्टदायक हैं, भैया..."

आखिर उन लोगों ने उसे भगाकर ही दम लिया।

एक दिन नाश्ते के बाद मैंने देखा कि वह कमरे के फ़र्श पर बैठा अपना सामान बाँधता हुआ "ओ, सारोन का गुलाब" गीत गुनगुना रहा है। मुझे देखकर वह बोला :

"मैं तो चला, भैया!"

"क्यों?"

जवाब देने से पहले वह एक क्षण ध्यानपूर्वक मेरी ओर देखता रहा। फिर बोला :

"तुमको नहीं मालूम? यह कमरा तुम्हारी माँ के लिए चाहिए..."

"यह किसने कहा?"

"तुम्हारे नाना ने..."

"वह झूठ बोलते हैं!"

'बहुत खूब' ने मुझे अपने पास खींच लिया और जब मैं उसकी बगल में फ़र्श पर बैठ गया, तो शान्त स्वर में बोला :

"नाराज़ मत होना! मैंने समझा था कि तुम्हें मालूम है, पर बताना नहीं चाहते हो। और यह मुझे अच्छा नहीं लगा, भैया..."

मुझे ठेस-सी लगी और तक़लीफ हुई।

उसने मुस्कराकर अस्फुट स्वर में कहा :

"एक बात सुनोगे। मैंने तुमसे कहा था न कि मेरे पास मत आया करो?"

मैंने हामी भरी।

"उस वक़्त यह बात तुम्हें बहुत बुरी लगी थी न?"

"हाँ..."

"उस वक़्त भी मुझे तुम्हारा आना नापसन्द नहीं था। मैं जानता था कि मेरे पास आओगे, तो तुम्हें डाँट पड़ेगी। ऐसा ही हुआ न? समझ गये न कि मैंने ऐसा क्यों कहा था?"

वह इस तरह बोल रहा था, मानो मेरा हमउम्र हो। उसके शब्दों से मुझे बड़ी सांत्वना मिल रही थी। ऐसा लग रहा था कि जो बात वह कह रहा है, वह बहुत दिनों से मेरे अंतस्तल में सँजोकर रखी हुई थी।

"यह मैं बहुत दिनों से जानता हूँ," मैंने कहा।

"ठीक। तो भैया, तुम तो जानते ही हो..." यह कहकर उसने गला साफ किया।

मेरा हृदय असह्य पीड़ा से टीस रहा था। मैंने पूछा :

"सभी लोग तुमसे चिढ़ते क्यों हैं?"

उसने मुझे कसकर अपने साथ चिमटा लिया और आँख मारकर बोला :

"क्योंकि मैं उन लोगों जैसा नहीं हूँ। समझे न? यही असल बात है। मैं उनसे भिन्न हूँ..."

मेरी समझ में न आया कि क्या कहूँ। सिर्फ उसके कोट की आस्तीन खींचता

रहा। उसने कहा :

"दिल में किसी तरह का गुस्सा मत रखना," उसने दोहराया और फिर कान में कहा,"और रोना भी नहीं..."

पर खुद उसके धुँधलाये चश्मे के नीचे से आँसू टपकने लगे।

हम दोनों, पहले की तरह, बहुत देर तक चुप बैठे रहे। केवल बीच-बीच में एकाध शब्द बोल लेते थे। बस, एकाध शब्द।

उसी दिन शाम को सब से प्रेमपूर्वक विदा लेकर और मुझे एक बार ज़ोरों से कलेजे लगाकर वह चला गया। मैं चुपके से फाटक के बाहर आ गया। सामान से लदी उसकी गाड़ी सड़क की बर्फ़ जमी लीक पर धचके के साथ चल रही थी और वह ऊपर बैठा हिल रहा था। उसकी पीठ फिरते ही नानी गंदे कमरे की सफाई करने लगी। मैं जानते-बूझते हुए इधर से उधर दौड़कर उसके काम में बाधा डालने लगा।

बार-बार मुझसे टकराने के बाद वह ज़ोर से बोली :

"भाग यहाँ से!"

"तुमने उसे क्यों निकाल दिया?"

"तुझे इन बातों से मतलब?" वह बोली।

"तुम सभी लोग मूर्ख हो," मैंने कहा।

नानी एक भीगा चिथड़ा लेकर मुझे मारने लगी। चिल्लाकर बोली :

"तुझे आज क्या हो गया है रे? तेरा माथा फिर गया है!"

"तुम नहीं, बाकी सभी मूर्ख हैं!" मैंने संशोधन किया। पर इससे भी वह शान्त नहीं हुई।

रात के भोजन के समय नाना बोले :

"धन्यवाद दो प्रभु को। आखिर वह निकला यहाँ से। मैं तो उसे देखता था, तो मेरे कलेजे पर आरा चलने लगता था। भगाकर ही दम लिया बच्चू को।"

गुस्से के मारे मैंने एक चम्मच तोड़ डाला। उसके लिए बाद में मेरी अच्छी मरम्मत हुई।

इस प्रकार उन अगणित लोगों में से पहले व्यक्ति से मेरी मित्रता का अन्त हुआ, जो देश के सर्वश्रेष्ठ सपूत होते हुए भी अपने ही वतन में अज़नबी-से हैं...

9

मैं अपनी उपमा मधुमक्खी के छत्ते से दे सकता हूँ, जिसमें देश के अगणित साधारण प्राणियों ने अपने ज्ञान और दर्शन का मधु लाकर संचित किया है। सबों की बहुमूल्य देन से मेरे चरित्र का विकास हुआ। अक्सर देने वालों ने गन्दा और कड़वा मधु दिया, फिर भी था तो वह ज्ञान-मधु ही।

'बहुत खूब' के चले जाने के बाद प्योत्र काका के साथ मेरी मित्रता हो गयी। वह नाना की तरह दुबले और साफ-सुथरे, लेकिन कद-काठी में उनसे कहीं छोटे थे। उन्हें देखकर मुझे ऐसा लगता था मानो किसी बालक ने खेल में बूढ़े के कपड़े पहन लिए हैं। उनका चेहरा ताँत की बारीक बुनावटवाली टोकरी जैसा लगता था, जिसके अन्दर से कुछ-कुछ पीली झलक लिये दो हँसती आँखें यों झाँका करती थीं जैसे पिंजड़े में बन्द दो पंछी। उनके धूमिल बाल घुँघराले थे, दाढ़ी भी। वह पाइप पीते थे, जिसमें से बालों की तरह धूमिल और घूँघरदार धुआँ उठता था। वह लच्छेदार और मुहावरेदार भाषा में बोलते थे। वह बात तो करते सुरीली टनटनाती और प्यारी आवाज़ में, पर मुझे सदा ऐसा लगता था कि वह लोगों की हँसी उड़ा रहे हैं। वह अपनी कहानी यों कहते थे :

"मैं जिस जमींदारिन के यहाँ दास था, उसका नाम था तात्यान अलेक्सेयेव्ना। वह मुझसे बोली : 'तुमको लोहार का काम करना होगा,' मैंने लोहार का काम सीख लिया, पर फौरन ही कहा गया, 'देखो, माली के लिए सहायक की ज़रूरत है।' मुझे भला क्या एतराज हो सकता था? कहावत है : जिसकी बन्दरी वही नचावे। पर वह काम मुझसे निभा नहीं। तब मालकिन का हुक्म हुआ : 'प्योत्र, मछली पकड़ना सीख।' जो हुजूर का हुक्म। बंसी लेकर नदी पर डेरा डाल दिया मैंने। कुछ दिनों में मछलियों के धन्धे में मजा भी आने लगा। लेकिन बेगम ने कोचवानी का काम सम्भालने के लिए मुझे शहर भेज दिया। चलो यह भी ठीक। कोचवानी ही सही, जो मर्जी सरकार की। सरकार की मर्जी फिर बदलने ही वाली थी कि भूदासों की मुक्ति का क़ानून पास हो गया। मैं रह गया शहर में घोड़े के साथ और आज तक बेगम की मर्जी पालने के बदले घोड़े को पाल रहा हूँ।"

घोड़ा बूढ़ा और उजले रंग का था। उसे देखकर ऐसा मालूम होता था कि नशे में किसी रँगसाज ने चितकबरा ब्रुश छिड़क दिया हो। अंजर-पंजर देह और बाकुड़ी टाँगे-खूब बनावट थी उस घोड़े की। सिर की जगह हड्डी का बड़ा-सा टोकरा था, जिसमें से दो झिल्लीदार आँखें झाँक रही थीं। गर्दन की जगह चमड़े और नसों का लम्बा थैला था, जिसके परले छोर पर सिर इस तरह लटका हुआ था, मानो उदासी के भार से अब गिरा तब गिरा। प्योत्र काका घोड़े को बहुत मानते थे। उन्होंने उसका नाम रखा था 'तान्का' और कभी उसपर हाथ नहीं उठाते थे। मेरे नाना ने एक बार उनसे पूछा :

"घोड़े को आदमियों का नाम क्यों दे रखा है तुमने?"

उसने जवाब दिया,"आप सरासर भूलकर रहे हैं, वासीली वासील्येविच! 'तान्का' तो किसी आदमी का नाम नहीं होता-वह तो 'तात्याना' होता है!"

प्योत्र काका भी पढ़ना-लिखना जानते थे और धार्मिक पुस्तकों का उन्हें अच्छा ज्ञान था। नाना और उनके बीच अक्सर इस बात पर बहस हुआ करती थी कि कौन

सन्त सबसे सिद्ध है। बाइबिल में जिन पापियों का प्रसंग है, उन्हें दोनों जी भरकर कोसा करते थे, खास कर एब्सैलोम को। कभी-कभी वे व्याकरण को लेकर उलझ पड़ते थे। नाना कहते थे 'दुष्टपन', 'अराजकपन', 'मूर्तिपूजकपन' आदि और प्योत्र काका का कहना था कि इन शब्दों का शुद्ध रूप होना चाहिए,'दुष्टताई', 'अराजकताई', 'मूर्तिपूजकताई'।

नाना तमतमाकर कहते, "इसमें क्या है-अपना-अपना तरीका है। तुम्हारा 'ता-ई' मेरे लिए 'पन' है।"

लेकिन प्योत्र काका पर कोई असर न पड़ता-बैठे धुएँ के गोले उड़ाते रहते। अन्त में वह एक रद्दा रखते :

"और आपका 'पन' ही कौन बड़ा खूबसूरत है? भगवान की नज़र में उसका मोल दो कौड़ी भी नहीं। वह जब आपकी प्रार्थना सुनता होगा, तो मन ही मन कहता होगा : प्रार्थना है तो, भाई, काफी लम्बी, पर दो कौड़ी की।"

नाना अपनी हरी आँखों को गुस्से से चमकाते हुए मेरी ओर मुड़कर चिल्लाते :

"अलेक्सेई, तू यहाँ क्या कर रहा है? भाग यहाँ से!"

प्योत्र को सफाई बहुत पसन्द थी-अस्तव्यस्तता से सख्त नफरत। आँगन में वह चलते तो राह में पड़े लकड़ी के टुकड़ों, हड्डियों और ढेलों को ठेलकर किनारे कर देते और बिगड़कर कहते :

"दुनिया भर की बेकार चीज़ों का यहीं ढेर लगा रखा है।"

वह बहुत बातूनी थे। यों वह सहृदय और खुशमिजाज लगते थे। लेकिन कभी-कभी उनकी आँखों के ऊपर एक झिल्ली-सी छा जाती थी और वह मुर्दे की तरह घूरने लगते थे। उस वक़्त वह अन्धेरे कोने में अपने गूँगे भतीजे की तरह मूक बैठ जाते और ज़रा भी छेड़ने से तुनक उठते। मैं पूछता :

"क्या बात है, प्योत्र काका? यहाँ क्यों बैठे हो?"

वह रूखी आवाज़ में जवाब देते :

"जाओ बाबा, अपना काम देखो।"

हमारे पड़ोस में एक रईस आकर बसा। वह अजीब आदमी था। उसके माथे पर एक बड़ा-सा गुमटा था। पर्वों-त्योहारों के दिन वह छर्रेवाली बन्दूक लेकर खिड़की के करीब बैठ जाता और कुत्ता, बिल्ली, मुर्गा, कौआ या अच्छा न लगनेवाला आदमी, जो भी सामने आ जाता, उसी पर बन्दूक चला देता। एक दिन उसने 'बहुत खूब' को भी इसी तरह अपना निशाना बनाया। छर्रे उसकी चमड़े की जैकेट से टकराकर नीचे गिर पड़ी। कुछ जेब में चले गये मुझे याद है कि उनको हथेली पर रखकर वह उलट-पुलटकर गौर से उनका निरीक्षण करता रहा था। नाना ने कहा था कि पुलिस में रिपोर्ट कर दो। पर उसने छर्रों को रसोईघर के कोने में फेंकते हुए जवाब दिया था :

"इसकी ज़रूरत नहीं है।"

एक बार उस निशानेबाज ने नाना की टाँग को अपनी बन्दूक का निशाना बनाया। कुछ छर्रे उनकी पिण्डलियों में घुस गये। नाना गुस्से से आग-बबूला हो गये। उन्होंने पुलिस में रिपोर्ट कर दी और गवाह जुटाने लगे। इसके बाद एक ही दिन में वह आदमी कहीं लापता हो गया।

उसकी बन्दूक छूटते ही प्योत्र काका रविवारवाली चौड़े छज्जे की अपनी बदरंग टोपी पहनकर जल्दी से फाटक के बाहर निकल आते। गली की पटरी पर आकर वह अपने दोनों हाथ पीछे की ओर कोट के नीचे छुपा लेते, जिससे कोट मुर्गे के दुम की तरह ऊपर उठ जाता। फिर सीना तानकर निशानेबाज की खिड़की के नीचे से निकलते। एक बार गुज़र जाते और कुछ न होता, तो फिर उसी तरह सीना ताने हुए लौटते। इस प्रकार कई बार वह निशानेबाज की खिड़की के नीचे से निकलते। हमारे मकान में रहनेवाले सभी लोग तमाशा देखने के लिए बाहर जमा हो जाते। फौजवाला और उसकी स्वर्णकेशी बीवी अपने कमरे की खिड़की से सिर निकालकर झाँकना शुरू कर देते। बेतलेंग परिवार के मकान के भी लोग बाहर आ जाते। केवल कर्नल ओव्स्यान्निकोव के यहाँ ऐसे मौके पर भी चहल-पहल का कोई चिह्न नज़र न आता।

कभी-कभी प्योत्र काका की कोशिश बेकार सिद्ध होती : निशानेबाज शिकार को नामंजूर कर देता, पर कभी दोनाली बन्दूक धाँय-धाँय कर छर्रा उगल देती।

प्योत्र काका वैसे ही निडर, चहलकदमी करते हुए लौट आते और बड़ी शान से ऐलान करते :

"कोट में लगा।"

एक दिन छर्रा गर्दन और कन्धे में घुस गया। नानी ने सुई से उसे निकालते हुए पूछा :

"तुम क्यों उस जंगली को उकसाते हो? किसी दिन आँख-वाँख में छर्रा लग जायेगा, तो पता चल जायेगा।"

प्योत्र काका ने तिरस्कारपूर्ण स्वर में कहा :

"तुम्हें तो कुछ मालूम ही नहीं, अकुलीना इवानोव्ना। उसे निशाना लगाना आता ही कहाँ है!"

"फिर भी तुम मौका क्यों देते हो उसे? उसे तो अच्छा ही लगता होगा।"

"अच्छा लगता होगा? मैं तो रईसजादे को चिढ़ाने के लिए ऐसा करता हूँ।"

निकाले हुए छर्रों को अपनी हथेली पर निहारते हुए वह बोले :

"इसे क्या खाक निशानेबाजी कहा जाये? अलबत्ता निशानेबाजी मामोंत इल्यीच जानता था। उन दिनों हमारी मालकिन तात्यान अलेक्सेयेव्ना का उसके साथ इश्क चल रहा था। उनका यही दस्तूर था, अर्दलियों के माफिक मर्द भी बदला करती थीं। मामोंत इल्यीच फौजी अफसर था। बन्दूक के ऐसे-ऐसे करतब दिखाता था कि लोग

दाँतों तले उँगली दबा लेते। चालीस कदम गिनकर वह इग्नाश्का को खड़ा कर देता। इग्नाश्का वज्रमूर्ख था। उसकी पेटी में एक बोतल बाँध दी जाती और वह दोनों पाँव फैलाकर खड़ा हो जाता और हें-हें हँसता रहता। बोतल टाँगों के बीच लटकने लगती। तब मामोंत इल्यीच निशाना दागता था और गोली सीधी बोतल में, ठाँय। क्या मजाल कि इधर से उधर हो जाये। एक बार मक्खी या किसी चीज़ ने इग्नाश्का को काट लिया और वह ज़रा हिल गया। गोली मूर्ख के घुटने के जोड़ को पार कर गयी। डाक्टर बुलाया गया। उसने आव देखा न ताव झट टाँग काट डाली। पलक मारते ही किस्सा तमाम। कटी टाँग ज़मीन में गाड़ दी गयी..."

"और इग्नाश्का का क्या हुआ?"

"वह चंगा हो गया। जिसके पास दिमाग ही नहीं, उसे टाँग या हाथ की क्या ज़रूरत? वह तो बुद्धूपन की कमाई खाता है। ऐसों को सभी मदद देने को तैयार रहते हैं, क्योंकि उनसे किसी को नुकसान नहीं पहुँचता। कहा भी है-'बुद्धू काम का सुद्धू।'"

नानी पर इस कहानी का कोई असर नहीं हुआ। वह ऐसी दर्जनों कहानियाँ जानती थी। पर मेरे रोंगटे खड़े हो गये। मैंने पूछा :

"क्या रईस लोग आदमी को जान से मार सकते थे?"

"क्यों नहीं? उन्हें कोई हर्जाना जो नहीं देना पड़ता था! कभी-कभी तो रईसजादे एक दूसरे पर ही हाथ साफ किया करते थे। एक बार एक नया फौजी तात्यान अलेक्सेयेव्ना के यहाँ आकर ठहरा था। उससे मामोंत की ठन गयी। दोनों ने अपनी-अपनी पिस्तौल निकाल ली और बगीचे में चले गये। वहीं, झील के किनारेवाले रास्ते में नये फौजी ने मामोंत पर ऐसा निशाना लगाया कि गोली कलेजे के पार हो गयी। इस तरह मामोंत साहब सुरधाम सिधारे और नये फौजी का तबादला हुआ-वह गये काकेशिया। क़िस्सा खत्म, पैसा हजम! इस तरह वे लोग एक दूसरे का खात्मा करने से भी बाज़ नहीं आते थे। फिर किसानों या किसानों जैसे ऐरे-गैरे नत्थू खैरों की क्या गिनती थी। जितनों को चाहो पटापट उड़ा दो। आजकल तो और भी आसान हो गया है, क्योंकि अब तो गुलाम रहे नहीं। पहले तो रईस लोग यह भी सोचते थे कि यह अपनी मिल्कीयत है। पर अब तो इस बात का भी ख़्याल नहीं रहा।"

नानी टोककर बोली :

"उस वक़्त भी वे बहुत ज्यादा ख़याल नहीं करते थे।"

प्योत्र ने कहा :

"ठीक ही कहती हो। उस वक़्त मिल्कीयत तक थी, पर कौड़ियों के मोल!"

मेरे साथ प्योत्र काका का व्यवहार सदा अच्छा होता था। मुझसे जब बात करते तो वयस्कों की तुलना में सहृदयता से और आँख मिलाकर। लेकिन उनमें कोई ऐसी बात थी, जो मुझे अच्छी नहीं लगती थी। लोगों को रोटी-मुरब्बा देते वक़्त मेरी रोटी

पर वह अधिक मुरब्बा लगाते थे। बाजार जाते, तो मेरे लिए मिठाइयाँ लाते और मुझसे हमेशा शान्त और संजीदा स्वर में बोलते। पूछते :

"क्यों दोस्त, बड़े होने पर क्या बनने का इरादा है? सिपाही या दफ्तर का बाबू?"

"सिपाही।"

"वही अच्छा है। आजकल सिपाही होने में ज्यादा तक़लीफ नहीं है। पादरी का काम भी मज़ेदार है-बस कह लिया, 'ईश्वर तू धन्य है' और काम बन गया। बल्कि सिपाही से पादरी का काम ज़्यादा हल्का है। सबसे आसान काम मछली मारना है। उसमें कुछ सीखने की ज़रूरत नहीं केवल आदत डाल लेनी चाहिए।"

वह मछलियों की बड़ी अच्छी नक़ल करते थे-रोहू किस तरह चारे पर चक्कर काटती है, या कतला और नैन काँटे में फँसने पर कैसे छटपटाती हैं।

एक दिन ढाढ़स देते हुए वह कहने लगे :

"नाना की मार पड़ती है, तो बुरा लगता है न? लेकिन इन बातों का बुरा नहीं मानते। नाना मारते हैं तो तुम्हारे भले ही के लिए। और यह मार तो लड़कों का खेल है। असल मार तो तुमने देखी ही नहीं है। हमारी तात्यान अलेक्सेयेव्ना ने तो मारने-पीटने के काम के लिए एक खास आदमी रख छोड़ा था। ख्रिस्तोफोर उसका नाम था। वह इतना मशहूर था कि इलाके भर के जमींदारों की ओर से उसके लिए माँग आया करती थी। लोग कहला भेजते थे : 'तात्यान अलेक्सेयेव्ना कृपा कर अपने ख्रिस्तोफोर को भेज दीजिये, हमारे आदमियों को पीटना है'। और वह बेचारी ख्रिस्तोफोर को भेज देती थी।"

वह निर्लिप्त भाव से अपनी जमींदारिन के घर दासों की पिटाई का वर्णन किया करते थे : हवेली के ऊँचे स्तम्भों वाले बरामदे में वह लाल कुर्सी पर ठाठ से बैठी हुई है-सर से पैर तक दूध जैसी सफेद पोशाक पहने। केवल कन्धे पर एक नीला गुलूबन्द है। और ख्रिस्तोफोर से दास-दासियों को पिटवा रही है।

"ख्रिस्तोफोर रियाज़ान के इलाक़े का रहनेवाला था-लेकिन लगता था बंजारे या उक्रइनी जैसा। उसकी मूँछें एक कान से दूसरे कान तक फैली हुई थीं, पर दाढ़ी सफ़ाचट, जिससे चेहरा नीला लगता था। वह बुद्धू जैसा लगता था। कहना कठिन है कि पैदायशी ऐसा था या बना हुआ, क्योंकि बनने में भी मजा था-बुद्धू के सब कसूर माफ। रसोईघर में जाकर वह किसी बर्तन में पानी भर लेता और मक्खी, तिलचटा या गुबरैला पकड़कर उसमें डाल देता और डालकर देर तक छड़ी से उसे गोते देता रहता। कभी-कभी अपनी ही गर्दन से चिल्लड़ निकालता और उसे पानी में डुबो देता..."

ऐसी कहानियाँ मेरे लिए नयी नहीं थीं। नाना और नानी अक्सर इस तरह के किस्से सुना चुके थे। थोड़े हेर-फेर के बावजूद मूलतः सभी में मानव यंत्रणा और अपमान का एक-सा प्रसंग रहता था। मैं इन कहानियों से ऊब चुका था। मैंने कहा :

"कुछ दूसरी चीज़ सुनाइये।"

प्योत्र काका ने चेहरे की तमाम झुर्रियाँ मुँह के पास बटोर लीं और उन्हें दोनों आँखों की तरफ बिखेरते हुए बोले :

"तुम बड़े लालची मालूम होते हो। लेकिन खैर, दूसरी चीज़ ही सुनो। हमारे यहाँ एक बावर्ची था..."

"किसके यहाँ?" मैंने पूछा।

"जमींदारिन तात्यान अलेक्सेयेव्ना के यहाँ।"

"तुम उसे तात्यान क्यों कहते हो? वह तो औरत थी-तात्याना?"

"हाँ, औरत ही थी वह, पर मूँछों वाली औरत। उसके होंठ पर काली रेखा थी। जन्म से वह काली जर्मन थी। काले जर्मन हबशियों की तरह होते हैं। तो वहाँ एक रसोइया था-बड़ी मज़ेदार कहानी है..."

मज़ेदार कहानी यह थी कि रसोइया एक बार मांस के समोसे बना रहा था, पर वे खराब हो गये। उसे एक बार में सारे समोसे खा जाने की सज़ा दी गयी। नतीजा यह हुआ कि उसे दस्त आने लगे।

मैंने खीझकर कहा :

"इसमें मज़ेदार क्या हुआ?"

"तो मजेदार क्या होता है, तुम्हीं बताओ।"

"मैं नहीं जानता..."

"नहीं जानते तो चुप रहो।"

इसके बाद उनकी नीरस कहानियों का ताँता फिर शुरू हो गया।

पर्वों-त्योहारों के अवसर पर मिख़ाईल मामा का उदास लद्धड़ साशा और याकोव मामा का चुस्त और चालाक साशा नाना के घर आ जाया करते थे। एक दिन हम तीनों आँगन के किनारेवाली कोठरियों की छतों पर कूद-फाँद रहे थे। बेतलेंग परिवार के आँगन में कोई आदमी लकड़ियों के ढेर पर बैठा हुआ कुत्ते के पिल्ले से खेल रहा था। वह हरा लम्बा कोट पहने हुए था, जिसके किनारे पर लोमड़ी के मुलायम बाल लगे थे। उसकी छोटी पीली चाँद झलक रही थी। मेरा एक ममेरा भाई बोला कि किसी उपाय से इसका एक पिल्ला उड़ाना चाहिए। हम लोगों ने फौरन इसकी तरकीब सोच निकाली। तय किया कि दोनों ममेरे भाई गली से होकर बेतलेंग वालों के फाटक के पास खड़े रहेंगे। इधर से मैं उस आदमी को डराऊँगा। जब वह भागेगा, तो दोनों साशा आँगन में घुसकर एक पिल्ला उड़ा देंगे।

"उसे डराया किस तरह से जाये?"

एक साशा ने सुझाया :

"ऊपर से उसकी गंजी चाँद पर थूक देना।"

किसी की गंजी चाँद पर थूकना बहुत बड़ा अपराध हो सकता है, मैं यह नहीं जानता था। मैं इससे कहीं अधिक भयानक अपराधों के बारे में सुन चुका था और

उन्हें आँखों से देख चुका था। अतः इस काम को पूरा करने में मुझे ज़रा भी हिचक नहीं हुई।

उसके बाद तो जैसे तूफ़ान मच गया। बेतलेंग वालों के घर से बहुत-से मर्दों और औरतों ने आकर हमारे आँगन को घेर लिया। सबके आगे एक सुन्दर युवक अफ़सर था। मेरे ममेरे भाई गली में यों घूम-फिर रहे थे, जैसे कुछ जानते ही न हों। नाना के सभी कोड़े मेरी पीठ पर बरसे, और कस-कसकर, क्योंकि बेतलेंग जैसे रईस परिवारवालों को तुष्ट करने का सवाल था।

मार से घायल होकर मैं रसोईघर के चबूतरे पर लेटा हुआ था। प्योत्र काका मुझे देखने आये। वह त्योहार की बढ़िया पोशाक में थे और बड़े ख़ुश नज़र आ रहे थे। बोले :

"शाबाश मेरे शेर। खूब किया। उस बूढ़े बकरे के लिए वही सज़ा चाहिए। उसका पूरा कुनबा थूकने लायक है। उसकी खोपड़ी पर एक ईंट ही क्यों नहीं गिरा दी? और मजा आता।"

मुझे हरे कोटवाले उस भलेमानस का गोल, लोमहीन, बालकों जैसा चेहरा याद आ गया। सर पर थूक गिरा, तो बेचारा पिल्ले की तरह चीं-चीं करता हुआ पीली चाँद को अपने छोटे-छोटे हाथों से पोंछने लगा था। उस वक़्त मैं शर्म से गड़ गया था। मुझे अपने ममेरे भाइयों पर बेतरह गुस्सा आया था। लेकिन अपने सामने खड़े इस गाड़ीवान के टोकरी के समान बुने हुए चेहरे को देखते हुए मैं यह सब भूल गया। चेहरा हिल रहा था और वैसा ही घृणित और डरावना लग रहा था जैसा पीटते वक़्त नाना का।

मैंने दोनों हाथों और पैरों से प्योत्र को ठेलते हुए चिल्लाकर कहा :

"भागो यहाँ से।"

वह हँसे और मटकी मारते चबूतरे से नीचे उतर गये।

उस दिन के बाद उनसे बात करने को जी नहीं हुआ। मैं उनसे कतराने लगा और साथ ही चौकन्ना रहने लगा, क्योंकि आशंका थी कि वह कोई दुष्टता कर बैठेंगे।

इस कांड के कुछ ही दिनों बाद एक और काण्ड हो गया। कर्नल ओव्स्यान्निकोव की रहस्यमय नीरव कोठी के बारे में मुझे बहुत दिनों से गहरा कुतूहल था। मुझे लगता था कि वह भूरा मकान परियों के देश का भाग है, जहाँ विलक्षण प्राणी रहते हैं।

बेतलेंग परिवार का मकान दूसरी ही तरह का था। वहाँ सदा चहल-पहल रहा करती थी। उस घर में कई सुन्दरियाँ थीं और उनसे प्रेमालाप करनेवाले विद्यार्थियों और अफसरों का वहाँ बराबर ताँता लगा रहता था। सदा धमाचौकड़ी मची रहती थी-नाचना, गाना, हँसना, बोलना, हर तरह का कोलाहल। उस मकान की आकृति से ही चुलबुलेपन की बास आती थी। उसकी खुली खिड़कियों के अन्दर से गमलों

में रखे पौधों की हरियाली झाँका करती थी और खिड़कियाँ बड़ी सजीव मालूम होती थीं। मेरे नाना इस घर से चिढ़े रहते थे। उसमें रहनवालों को वह "अधर्मी और निर्लज्ज" कहा करते थे। खास कर स्त्रियों के बारे में, वह एक गन्दे शब्द का प्रयोग करते थे, जिसका अर्थ प्योत्र काका ने मुझे बड़ा रस लेते हुए समझाया था।

इसके विपरीत ओव्स्यान्निकोव घराने के शान्त, कठोर मकान से वह बहुत प्रभावित थे।

वह एकमंजिली इमारत थी, जो सुथरे खुले आँगन में, जिसपर घास का कालीन बिछा था, दूर तक फैली हुई थी। आँगन के बीचोंबीच एक कुआँ था, जो खम्भों पर खड़ी छत से ढँका हुआ था। घर गली से दूर हटकर बना हुआ था, मानो गली की ज़िन्दगी से मुँह चुराना चाहता हो। सामने के भाग में मेहराबदार, तंग और ज़मीन से ऊँचाई पर नक्काशीवाली तीन खिड़कियाँ थीं। उनके शीशों पर सूर्य की किरणें इन्द्रधनुष की तरह सतरंगी मालूम पड़तीं। फाटक के दूसरी ओर अनाजघर बना हुआ था। उसमें भी मुख्य हवेली के जोड़ की तीन खिड़कियाँ थीं, लेकिन दिखावे भर की। भूरी दीवार पर 'चौखट' तथा 'शीशा' रंगकर हूबहू खिड़की की शक्ल दी गयी थी। न जाने इन नकली खिड़कियों को देखकर क्यों मन कुण्ठित हो जाया करता था। पूरा अनाजघर मानो इस बात की पुष्टि करता था कि हवेली आम लोगों की नज़रों से दूर, अलग रहस्यमय जीवनयापन करना चाहती है। पूरी कोठी खाली अस्तबल और बड़े फाटकवाले बग्घी-घरों समेत यों खड़ी थी, मानो मन में किसी बात की टीस छिपाये हो, या उसमें अभिमान भरा हो।

आँगन में कभी-कभी एक लम्बा, दाढ़ीहीन बूढ़ा लँगड़ाता हुआ घूमता दिखाई पड़ता था। उसकी श्वेत नुकीली मूँछें काँटों जैसी लगती थीं। एक और, गलमुच्छों तथा टेढ़ी नाकवाला बूढ़ा अक्सर अस्तबल से एक भूरे घोड़े की लगाम थामे निकलता। घोड़े की छाती सँकरी और टाँग पतली थीं। बाहर आकर घोड़ा चारों ओर देखता और मठ की विनम्र भक्तिन की तरह सिर हिलाता था। लंगड़ा बुड्ढा ज़ोर से घोड़े की पीठ थपथपाता और पुचकारता। इसके बाद फिर उसे अँधेरे अस्तबल में पहुँचा देता। मैं सोचता कि बुड्ढे को किसी जादूगर ने हवेली में कैद कर रखा है। वह भागना चाहता है, लेकिन बेबस है।

तीन छोटे-छोटे लड़के सुबह से शाम तक उस आँगन में खेला करते थे। तीनों की पोशाक एक-सी होती थी-भूरा पतलून, जैकेट और एक ही तरह की टोपी। तीनों का रंग-रूप भी एक समान था-गोल चेहरा और भूरी-भूरी आँखें। मैं उन्हें केवल उनके कद से पहचान सकता था।

बाड़ में एक दरार थी। उसी से मैं उन लड़कों का खेलना देखा करता था। पर मेरी ओर उनका ध्यान कभी न जाता, जिससे मैं खिन्न रहता। उनका पारस्परिक सद्भाव और नये-नये खेल, जो मैंने कभी नहीं खेले थे, देखने में बड़े अच्छे लगते।

उनका पहनावा और एक दूसरे के प्रति सौहार्द बड़ा ही मनभावना मालूम देता था। सबसे छोटा, गोल-मटोल, नटखट और गेंद जैसा था। बड़ा भला लगता था वह। दोनों बड़े भाई उसका बहुत ख़याल रखते थे। वह गिर जाता, तो दोनों बड़े लड़के, जैसा कि स्वाभाविक है, हँस पड़ते, पर इस हँसी में ओछापन न होता। फौरन सहारा देकर वे उसे उठाते और उसके हाथों और घुटनों को पत्ते या रुमाल से झाड़ देते। मँझला कहता :

"बड़ा लद्धल है!.."

तीनों न कभी लड़ते-झगड़ते, न एक दूसरे को छकाने की कोशिश करते। और तीनों ही स्वस्थ, सुघड़ और फुर्तीले थे।

एक दिन मैंने पेड़ पर चढ़कर सीटी बजानी शुरू की। सीटी की आवाज़ सुनकर तीनों खड़े हो गये और एक दूसरे से सटकर मेरी ओर देखने लगे। फिर उनमें कुछ सलाह होने लगी। मैंने सोचा कि वे ढेलेबाजी शुरू करेंगे, इसलिए नीचे उतरकर जल्दी-जल्दी जेब में रोड़े भर लिये। फिर चढ़ा, तो वे आँगन के दूर कोने में अपने खेल में मशगूल हो चुके थे। मुझे अफ़सोस हुआ। पर मैं अपनी तरफ से युद्ध का ऐलान नहीं करना चाहता था। इसी बीच किसी ने खिड़की से पुकारा :

"बच्चो! चलो अन्दर। जल्दी!"

कलहंसों की टोली की तरह वे धीरे-धीरे घर की ओर रवाना हो गये।

मैं अक़्सर बाड़ के पास पेड़ पर बैठकर उन्हें देखा करता था। मन में यह आशा रहती थी कि वे मुझे भी खेलने को बुलायेंगे, पर उन्होंने कभी ऐसा नहीं किया। मैं पेड़ पर बैठा कल्पना में डूब जाता था-मैं भी उनके साथ खेल रहा हूँ। खेलते-खेलते उनके हँसने पर मैं भी हँस पड़ता, या कुछ कह देता। वे तीनों विस्मय से मेरी ओर देखने या आपस में बात करने लगते। मैं झेंपकर नीचे उतर आता।

एक दिन वे लोग आँखमिचौनी खेलने लगे। मँझला भाई 'चोर' बना था। वह अनाजघर के एक कोने में दोनों हाथों से आँख दबाकर खड़ा था। बाकी दोनों भाई छिपने चले गये। बड़ा भाई अनाजघर के छप्पर के नीचे रखे स्लेज में घुस गया, पर छोटा कुएँ का चक्कर काट रहा था। उसकी समझ में नहीं आ रहा था कि कहाँ छिपे।

'चोर' चिल्लाया, "एक... दो..."

घबराहट में छोटा कुएँ पर चढ़ गया और रस्सी पकड़कर खाली बालटी में बैठ गया। बालटी उसे लेकर कुएँ में चली गयी। केवल अन्दर की दीवारों से उसके टकराने का झनझन शब्द सुनाई पड़ा।

मुझे काटो तो लहू नहीं। अब भयानक काण्ड हो जायेगा, यह समझते मुझे देर न लगी। चिल्लाकर मैं आँगन में कूद पड़ा :

"लड़का कुएँ में गिर गया!.."

मेरे कुएँ तक पहुँचते-पहुँचते मँझला लड़का भी वहाँ पहुँच चुका था। उसने रस्सी थाम ली थी। पर बोझ उससे सम्भल नहीं रहा था। वह खुद भी खिंचा जा रहा था, फिर भी कसकर रस्सी को थामे हुए था। उँगलियाँ कटी जा रही थीं। तब तक मैंने भी रस्सी पकड़ ली। इस बीच बड़ा भाई भी दौड़ आया और तीनों ने मिलकर बाल्टी ऊपर खींच ली।

"कृपया सावधानी से," बड़ा भाई बोला।

लड़का निकल आया। वह बुरी तरह डर गया था। दाहिने हाथ की उँगलियाँ फट गयी थीं और उनमें से खून निकल रहा था। एक गाल भी बुरी तरह छिल गया था। कमर तक कपड़े पानी से तर थे। चेहरा फक। पर वह मुस्कराया और काँपता हुआ बोला :

"मैं... मैं... लुढ़क गया..."

मँझला भाई बोला :

"बला बुद्धू है।" और उसे गले लगाकर रुमाल से उसके चेहरे का खून पोंछने लगा। बड़े ने माथे पर बल डालकर कहा :

"अब तो पकड़े जायेंगे। चलो घर चलें।"

मैंने पूछा :

"तुम लोगों की पिटाई होगी क्या?"

उसने सिर हिलाया और अपना हाथ मेरे हाथ की तरफ बढ़ाते हुए बोला :

"तुमने बड़ी फुर्ती दिखायी।"

उसकी प्रशंसा से मैं बाग़-बाग़ हो गया और उसका हाथ अपने हाथ में लेने की सुधि ही न रही। मैं सम्भलूँ तब तक उसने मंझले से कहा :

"जल्दी चला, नहीं तो सर्दी लग जायेगी इसे। घर में इतना ही कहेंगे कि गिर पड़ा। कुएँ का नाम लेने की ज़रूरत नहीं है।"

छोटा सिर हिलाकर बोला :

"ठीक है। हम लोग कह देंगे कि मैं गड्ढे में गिर पड़ा।"

और वे चले गये।

सारी बातें आनन-फानन हो गयीं। मैंने ऊपर देखा, तो जिस डाली पर मैं बैठा हुआ था, वह अब भी हिल रही थी, उसके पीले पत्ते झड़कर नीचे गिर रहे थे।

एक हफ़्ते तक तीनों भाई आँगन में नहीं दिखाई पड़े। फिर जब वे आये, तो हमेशा से अधिक उत्साह में थे। बड़े ने मुझे देखते ही मैत्रीपूर्ण स्वर में कहा :

"आओ, हम लोगों के साथ खेलो।"

हम लोग पुरानी स्लेज में चढ़ गये और वहाँ बड़ी देर तक एक दूसरे को देखते हुए बातें करते रहे।

मैंने पूछा :

"तुम लोगों को मार पड़ी थी?"

"खूब अच्छी तरह," बड़े ने जवाब दिया।

मुझे आश्चर्य हुआ कि इन बच्चों को भी मेरी तरह मार पड़ती है। यह मुझे अन्याय लगा।

छोटे ने पूछा :

"तुम चिड़ियों को क्यों पकड़ते हो?"

"उनका गाना सुनने के लिए।"

वह बोला :

"मत पकड़ा करो उनको। उन्हें उड़ने देना चाहिए।"

"ठीक है अब कभी नहीं पकड़ूँगा।"

"नहीं, पहले एक पकड़कर मुझे दे देना।"

"कौन-सी?"

"जो गानेवाली हो, पिंजड़े में रखने लायक।"

"लाल लोगे?"

"बिल्ली उसको खा जायेगी," मँझला बोला, "और बाबूजी नहीं रखने देंगे।"

"ठीक कहते हो," बड़े ने कहा।

"तुम्हारी माँ नहीं है?" मैंने सवाल किया।

"नहीं," बड़े ने जवाब दिया। पर मझले ने भूल सुधारते हुए कहा :

"माँ है। पल वह हमाली नहीं है। हमाली मल गयी।"

"ऐसी माँ को सौतेली माँ कहते हैं," मैंने कहा और बड़े ने सिर हिलाकर सहमति प्रकट की :

"ठीक है।"

तीनों थोड़ी देर के लिए विचार में डूब गये।

सौतेली माँ क्या होती है, यह मैंने नानी की कहानियों से अच्छी तरह जान लिया था, इसलिए तीनों भाइयों की चुप्पी को मैं आसानी से समझ गया। तीनों एक दूसरे से सटकर बैठे थे, जैसे मटर के तीन दाने। मुझे उस सौतेली माँ की कहानी याद आ गयी, जो डायन थी और जिसने कपटजाल फैलाकर असली माँ की जगह ले ली थी। अतः मैंने तीनों भाइयों को सांत्वना देने की कोशिश की :

"घबराने की कोई बात नहीं, तुम्हारी अपनी माँ फिर लौट आयेगी।"

बड़े ने कन्धे झटककर कहा :

"जो मर गया, वह कैसे लौट आयेगा? मरा आदमी फिर नहीं आता..."

नहीं आता? क्या बात कही? कितनी बार अमृत की दो बूँदें पड़ते ही मामूली मुर्दे की बात कौन कहे, जिनकी बोटी-बोटी अलग कर दी गयी थी, वे भी उठ बैठे। कितनी बार तो ऐसा हुआ कि मौत ईश्वर ने नहीं भेजी थी। वह डायन या जादूगर

के टोने का नतीज़ा थी।

मैं बड़े उत्साह से नानी की कहानियाँ सुनाने लगा। पर बड़े ने मुस्कराकर कहा :

"यह सब हम लोग सुन चुके हैं। यह तो परियों की कहानियाँ हैं।"

बाकी दोनों भाई बड़े ध्यान से मेरी बातें सुन रहे थे। छोटे की भौंहे सिकुड़ी हुईं और होंठ सटे हुए थे। मँझले की एक कोहनी घुटने के ऊपर थी और दूसरा हाथ छोटे भाई के गले में, जिससे वह मुझसे सटा हुआ था।

बातों में काफी शाम हो गयी। गुलाबी बादल घरों की छतों पर झुक आये। अचानक सफेद मूच्छों वाला एक बुड्ढा वहाँ आ पहुँचा। वह पादरियों जैसा लम्बा भूरा कोट पहने था और उसके सिर पर रोंयेदार टोपी थी। मेरी ओर उँगली दिखाकर वह बोला :

"यह कौन है?"

बड़े ने खड़े होकर मेरे नाना के घर की ओर इशारा किया और बोला :

"उस घर में रहता है..."

"यहाँ किसने इसको बुलाया?"

तीनों लड़के चुपचाप स्लेज से उतरकर घर के अन्दर चले गये। उन्हें जाता देख मुझे शाम को गंज में घुसते हुए कलहंसों की याद आ गयी।

बुड्ढे ने कसकर मेरे कन्धों को पकड़ लिया और आँगन पार कर फाटक पर पहुँचा दिया। मैं डर से रोने-रोने को हो रहा था, लेकिन वह इतनी तेज़ी से जा रहा था कि रो पड़ने के पहले ही मैं फाटक के बाहर हो गया। वहाँ वह मुझे डाँटकर बोला :

"ख़बरदार जो फिर अन्दर पैर रखा!"

मैंने गुस्से से ज़वाब दिया, "मैं तुमसे मिलने थोड़े ही आया था, बुड्ढे कहीं के!"

उसने फिर मुझे पकड़ लिया और घसीटता हुआ गली की पटरी पर ले चला। बार-बार हथौड़े की-सी चोट करता हुआ वह एक ही प्रश्न दुहरा रहा था :

"तुम्हारा नाना घर पर है?"

मेरी बदक़िस्मती! नाना घर पर मौजूद थे। बुड्ढा तैश में था और नाना उसके सामने खड़े थे-गर्दन सीधी किये, दाढ़ी की नोक ऊपर उठी हुई और ताँबे के सिक्कों जैसी गोल-गोल तथा ज्योतिहीन आँखों में झाँकते हुए जल्दी-जल्दी कह रहे थे :

"माफ कीजिये, कर्नल साहब! इसकी माँ दूसरे शहर चली गयी है, मैं काम में रहता हूँ और दूसरा कोई देखनेवाला है नहीं।"

कर्नल साहब एक बार शेर की तरह गरजे, जिससे घर हिल गया और लकड़ी के खम्भे की तरह मुड़कर चले गये। कुछ देर बाद मैं बोरे की तरह प्योत्र काका की गाड़ी में फेंक दिया गया।

घोड़े को खोलते हुए काका ने पूछा :

"फिर पिटाई हुई? इस बार क्या हुआ था?"

जब मैंने सारी बात कह सुनायी, तो वह गुस्से से तमककर बोले :

"तुम ऐसे लोगों से दोस्ती करने गये क्यों थे? वे लोग रईसों के साहबज़ादे हैं, भैया! उनसे मिलने का नतीज़ा देख लिया न? अब सूद समेत इसका बदला लेना।"

वह इसी तरह की बक-बक करते रहे। मेरे ऊपर चोट का असर था, इसलिए शुरू में मैंने उनकी बातें बहुत ध्यान से सुनीं पर उनका टोकरी की तरह बुना हुआ चेहरा इतने वीभत्स रूप से काँपने लगा कि मुझे सहसा याद आया कि आज उन लड़कों की भी मेरी ही तरह पिटाई हुई होगी और बेचारों ने मेरा कुछ नहीं बिगाड़ा था।

"उनसे क्यों बदला लूँगा," मैंने कहा, "वे भले लड़के हैं और तुम जो कुछ कह रहे हो, वह सब झूठ है।"

उन्होंने घूरकर मेरी ओर देखा और सहसा ज़ोर से चिल्लाये :

"उतरो मेरी गाड़ी से।"

"गधा कहीं का!" नीचे कूदते हुए मैंने कहा।

वह आँगन में मेरे पीछे दौड़ने लगा, पकड़ने में असफल रहा, भागता और चिल्लाता रहा :

"क्या कहा मैं गधा हूँ? मैं झूठा हूँ? ठहर तो..."

नानी आवाज़ सुनकर ओसारे में निकली। मैं उसके नजदीक चला गया। प्योत्र ने शिकायत की :

"इस छोकरे ने मेरे नाक में दम कर दिया है। मैं इसकी पंचगुनी उम्र का हूँ, पर यह मुझे गन्दी-गन्दी गालियाँ देता है..."

मुँह पर सरासर झूठ सुनकर मेरी अक़्ल गुम हो जाती थी। उस वक़्त भी मेरी समझ ही में न आया कि क्या कहूँ। पर नानी ने दृढ़ता के साथ जवाब दिया :

"प्योत्र, तुम भी कैसी बातें करते हो? मैं हरगिज़ नहीं मान सकती कि यह तुम्हें गन्दी-गन्दी गालियाँ देता है।"

पर नाना होते, तो उस गाड़ीवान की बात फौरन मान लेते। उस दिन से प्योत्र और मुझमें अनबन रहने लगी। भीतर ही भीतर दोनों में जँग छिड़ गयी। वह मौका पाता, तो मुझे धक्का देता या मेरे ऊपर घोड़े की लगाम चला देता, पर ऐसा बनकर जैसे गलती हो गयी हो! मेरी पालतू चिड़ियों का उसने पिंजड़ा खोल दिया और एक दिन तो उनपर बिल्ली लगा दी। हमेशा बढ़ा-चढ़ाकर नाना से मेरी शिकायत करता। मैं भी उसके साथ हमउम्र का सा सलूक करता था-मानो वह कोई लड़का हो, जिसने बूढ़े का नकली वेश धारण कर रखा हो। मैं चुपके से उसकी चप्पल का चमड़ा ढीला कर देता, जब वह उसे पहनकर बाहर निकलता, तो टूट जाती। एक दिन मैंने उसकी टोपी में काली मिर्च की बुकनी छिड़क दी, जिसके फलस्वरूप वह एक घण्टे तक

छींकता रहा। मेरा भी जहाँ तक वश चलता, ईंट का जवाब पत्थर से दिया करता था। पर्व-त्योहारों पर वह अक्सर छिपकर दिन भर मेरे पीछे लगा रहता था और कई बार "रईसजादों के साहबज़ादों" के साथ मुझे खुफिया तौर से मिलते देखकर उसने नाना से जाकर चुगली खा दी।

उन लड़कों के साथ मेरी दोस्ती जारी थी और इसमें अब मुझे अधिकाधिक आनन्द आने लगा था। नाना के मकान और ओव्स्यान्निकोव की बाड़ के बीच एक जगह छोटा कोना था, जहाँ दो पेड़ और घनी झाड़ी उग आयी थी। झाड़ी के नीचे बाड़ में मैंने छोटा-सा छेद कर लिया था, जिसमें से तीनों भाई-अकेले या एक साथ दो आकर मुझसे चुपके-चुपके बातें किया करते थे। बातचीत के वक़्त कम से कम एक आदमी पहरा देता, ताकि कर्नल हम लोगों को देख न ले।

वे लोग अपने नीरस जीवन का ब्योरा सुनाते थे। उसे सुनकर मेरा चित्त खिन्न हो जाता। कभी चिड़ियों की बातें होतीं और कभी कोई अन्य बालोचित प्रसंग छिड़ जाता। पर जहाँ तक मुझे याद है, तीनों भाई कभी अपनी सौतेली माँ या बाप की चर्चा नहीं करते थे। अक्सर वे मुझसे केवल कहानियाँ सुनाने को कहते और मैं नानी से सुनी कहानियाँ सुना देता। अगर बीच में कुछ भूल जाता, तो उन्हें रोककर फ़ौरन नानी के पास दौड़ जाता। नानी खुशी से भूला टुकड़ा याद करा देती।

मैं अक़्सर उन्हें अपनी नानी के बारे में बताया करता था। एक दिन बड़े लड़के ने दीर्घ निश्वास छोड़ते हुए कहा :

"नानियाँ सभी अच्छी होती हैं। हम लोगों की भी ऐसी ही अच्छी नानी थी..."

वह "था", "हुआ करता था", "कभी हमारी भी थी" आदि शब्दों का इतनी बार और इस ढँग से प्रयोग करता था, मानो ग्यारह साल का बालक नहीं, सौ बरस का बूढ़ा हो। उसके हाथ नाजुक और उँगलियाँ लम्बी और पतली थीं। यह मुझे अभी तक याद है। वह खुद लम्बा, पतला और नाजुक था-आँखें गिरजाघर के दीप की तरह निर्मल और लजीली। मुझे उसके दोनों भाई भी बड़े प्यारे लगते थे। सबों ने मेरा दिल जीत लिया था। मुझे प्रेरणा होती कि उनकी भलाई का कोई काम करूँ। पर सबसे अधिक स्नेह मुझे बड़े के प्रति था।

हम लोग बातचीत में इस तरह लीन हो जाते कि प्योत्र काका के आने का पता न चलता। वह पीछे से आकर कहते।

"एँ-एँ-एँ! फिर?"

हम सभी चौंक पड़ते।

मैंने अनुभव किया था कि इन दिनों प्योत्र काका पर चिड़चिड़ेपन के अक़्सर दौरे पड़ते थे। वह काम से लौटते, तो मैं फौरन ताड़ जाता कि आज पारा कितनी डिग्री पर है। साधारणतः वह फाटक धीरे-से खोलते, जिससे क़ब्जे से लम्बी चूँ-चूँ की आवाज़ निकलती थी। पर जिस दिन पारा गरम रहता था, उस दिन फाटक की

चूल ऐसे छोटी-सी चूँ करती मानो दर्द से एकबारगी कराह उठी हो।

उनका गूँगा भतीजा शादी करने के लिए देहात चला गया। प्योत्र अस्तबल के ऊपर के एक कमरे में अकेले रहने लगे। कमरे की छत नीची थी। उसमें सिर्फ़ एक खिड़की थी। अलक़तरे, पुराने चमड़े, तम्बाकू और पसीने की अजीब गन्ध से कोठरी भरी रहती थी। इस गन्ध के कारण मैं उसके अन्दर पैर नहीं रख सकता था। इन दिनों वह रात को सोते वक़्त लैम्प जलता छोड़ देते थे। नाना इससे बहुत नाराज़ होते थे। वह कहते :

"प्योत्र! किसी दिन तुम घर जला डालोगे।"

उसने उनकी नज़र बचाते हुए कहा :

"नहीं, इसका खतरा नहीं है। मैं सोते वक़्त लैम्प को पानी के बर्तन में रख देता हूँ।"

आजकल वह हम लोगों से नज़र चुराने लगे थे और नानी की दावतों में भी नहीं शरीक होते थे, न मुरब्बा बाँटते थे। चेहरा सूख गया था, झुर्रियाँ गहरी हो गयी थीं और चलते वक़्त बीमारों की तरह लड़खड़ाते थे।

एक रोज़ रात को खूब बर्फ़ गिरी थी। नाना तथा मैं सबेरे उठते ही उसे कुदाल से हटा रहे थे कि फाटक पर खटका हुआ और पुलिस का एक सिपाही बड़े रोब से अन्दर दाखिल हुआ। फाटक बन्द कर वह उसी से सटकर खड़ा हो गया और अपनी मोटी भूरी उँगली से उसने नाना को पास आने का संकेत किया। जब नाना नज़दीक गये, तो अपनी बड़ी-सी नाक उनके मुँह के पास सटाकर उसने कुछ कहा, जिसपर नाना विस्मित होकर बोले :

"यहाँ पर! कब? मुझे तो कुछ खबर नहीं है..."

और अचानक हास्यजनक ढँग से उछलकर वह चिल्लाने लगे :

"हे भगवान! नहीं? भला ऐसा भी..."

"श्श्श!" कहकर पुलिसवाले ने उन्हें सावधान होने का संकेत किया।

नाना घूमे और मुझे खड़ा देखकर बोले :

"जा! कुदाल घर में रख आ।"

मैं एक कोने में छिपकर दोनों की गतिविधि देखने लगा। वे अस्तबल के ऊपर गाड़ीवानवाले कमरे में घुसे। पुलिसवाला दाहिने हाथ का दस्ताना उतारकर उसे अपनी बायीं हथेली पर मारते हुए बोला :

"ताड़ गया मामले को! इसी लिए घोड़ा छोड़कर भाग गया।"

मैं रसोईघर में नानी को सारा हाल सुनाने दौड़ा। वह आटा गूँथ रही थी और मेरी बातों पर आटे से सना सिर हिलाती जा रही थी। बातें खत्म हो जाने पर अविचल स्वर में बोली :

"होगा, कहीं कुछ चोरी-वोरी की होगी? तू जाकर खेल। तुझे इन बातों से क्या?"

मैं फिर आँगन में पहुँचा, तो नाना नंगे सिर फाटक पर खड़े थे। टोपी हाथ में थी और आँखें आकाश की ओर। वह सीने पर सलीब का चिह्न बना रहे थे। चेहरा गुस्से से तमतमाया हुआ था और एक टाँग काँप रही थी।

मुझे देखकर ज़ोरों से पैर पटकते हुए बोले :

"तुझे घर में जाने को कहा था न?"

मेरे पीछे-पीछे वह भी रसोईघर में आये और नानी से बोले :

"वर्वारा की माँ! ज़रा इधर तो आना।"

दोनों बगल के कमरे में चले गये और कुछ देर तक खुसुर-फुसुर करते रहे। नानी बाहर आयी, तो उसके चेहरे पर नज़र पड़ते ही मैं समझ गया कि कोई भयानक वारदात हो गयी है।

"तुम क्यों इतनी घबराई हुई हो?" मैंने पूछा।

वह मन्द स्वर में बोली :

"तू अपना मुँह बन्द रख।"

इसके बाद दिन भर घर में भय और तनाव का एक रहस्यमय वातावरण छाया रहा। नाना और नानी भयभीत दृष्टि से एक दूसरे की ओर देखते और रह-रहकर आपस में ऐसे शब्द फुसफुसाते, जिनका मैं अर्थ नहीं निकाल पाता था और जिनकी वजह से मेरी शंका और बढ़ती जाती थी।

नाना ने भर्राये हुए गले से कहा :

"वर्वारा की माँ! देव-प्रतिमाओं के सभी दीप तो जला दो।"

सबों ने जल्दी-जल्दी खाना खाया, पर किसी को भूख न थी, मानो वे किसी के आगमन की प्रतीक्षा में हों। नाना ने 'ऊँह' किया, फिर गला साफ करते हुए बोले :

"शैतान से वास्ता रखनेवालों का यही हाल होता है। इसी को देखो-देखने में कैसा धर्मात्मा और ईमानदार मालूम होता था। कौन सोच सकता था कि पेट में पाँव हैं उसके?"

नानी ने लम्बी साँस खींची।

जाड़े का धुपहला दिन खत्म होने में ही न आता था और घर के भीतर के वातावरण में दम घुट रहा था।

शाम के करीब एक और पुलिसवाला आया। उसके केश लाल थे और वह खूब मोटा-ताज़ा था। रसोईघर की बेंच पर बैठकर वह ऊँघने लगा। बीच-बीच में खर्राटा भरकर वह सिर हिलाता।

नानी ने पूछा :

"इसका पता कैसे लगा?"

दो क्षण चुप रहकर उसने अपने रूखे कर्कश स्वर में जवाब दिया : "हम लोगों को सब कुछ पता लग जाता है।"

मैं खिड़की के करीब बैठकर पाला जमे शीशे पर सन्त जार्ज का अक्स उतारने के लिए मुँह से एक पुराना सिक्का सेंक रहा था।

सहसा फाटक पर किसी के पैरों की धमक सुनायी पड़ी और दरवाज़ा भड़ाक से खुल गया। देहरी पर पेत्रोव्ना खड़ी थी। उसने चिल्लाकर कहा :

"ज़रा दौड़ो, देखो तुम्हारे आँगन में क्या काण्ड हो गया है!"

यक़ायक़ उसकी दृष्टि पुलिसवाले पर पड़ी। उसे देखते ही वह उलटे पाँव ड्योढ़ी में भागी। पर सिपाही ने दौड़कर उसका घाघरा पकड़ लिया और खुद भी घबराये स्वर में बोला :

"रुको ज़रा! कौन हो तुम? क्या है आँगन में?"

वह धम से घुटनों के बल ज़मीन पर बैठ गयी और रोने लगी। रुँधे हुए कण्ठ से बोली :

"मैं गाय दुहने गयी तो देखती क्या हूँ कि काशीरिन के आँगन में किसी की टाँग बाहर निकली हुई है।"

"तू झूठ बोल रही है, हरामज़ादी!" नाना ने गुस्से से आग-बबूला होकर कहा। "पिछवाड़े की बाड़ इतनी ऊँची है कि तुझे उस पार से कुछ दिखाई नहीं दे सकता। उसमें छेद भी नहीं है। तू सरासर झूठ बोल रही है। वहाँ कुछ भी नहीं है।"

पेत्रोव्ना ने एक हाथ से अपना माथा पकड़ा और दूसरा नाना की ओर बढ़ाकर चिल्लायी :

"तुम सच कहते हो। मैं झूठ बोल रही थी। मैं जा रही थी कि अचानक मुझे तुम्हारी बाड़ की ओर किसी आदमी के पैरों के चिह्न दिखाई दिये और एक जगह की बर्फ़ रौंदी हुई है। मैं ऊपर चढ़ी तो देखती हूँ कि वह पड़ा हुआ है..."

"कौन?.."

यह 'कौन' एक डरावनी चीख की तरह निकला। इसके बाद सभी पागलों की तरह रसोईघर से आँगन की तरफ भागे। वहाँ कोनेवाले गढ़े में, जिसमें बर्फ़ भर गयी थी, प्योत्र काका पड़े हुए थे। उनकी पीठ अधजले शहतीर के सहारे टिकी हुई थी, सिर छाती के ऊपर लटक रहा था। दाहिने कान के नीचे एक लम्बा घाव था-जैसे किसी का खुला हुआ मुँह। उसके किनारे-किनारे नीले धब्बे थे, जो दाँतों की पाँत जैसे लग रहे थे। भय से मेरी आँखें मुँद गयीं। पलकों की ओट से मैंने देखा-उनकी छुरी घुटनों पर दाहिने हाथ की काली, ऐंठी उँगलियों की बगल में पड़ी थी। बायें हाथ पर बर्फ़ की एक तह जम गयी थी। उनके दुबले-पतले शरीर के नीचे की बर्फ़ गली हुई थी। छोटी-सी लाश मुलायम भुरभुरी बर्फ़ में गड़ गयी थी। इस अवस्था में उनका शरीर और भी बालकों जैसा लग रहा था। दाहिनी ओर बर्फ़ पर एक टेढ़ा-मेढ़ा लाल नक़्शा बन गया था, जो किसी पक्षी जैसा दिखाई पड़ रहा था। बायीं ओर बर्फ़ बेदाग, चिकनी चमक रही थी। माथा इस तरह झुका हुआ था मानो बन्दगी कर रहे हों।

घुँघराली दाढ़ी छाती से लगी हुई थी, नीचे छाती पर ताँबे का एक बड़ा सा क्रास पड़ा था, जिसके चारों ओर खून के धब्बे पड़ गये थे। उस हल्ले-गुल्ले से मेरा सिर चकराने लगा। पेत्रोव्ना का चीखना खत्म ही नहीं हो रहा था। पुलिसवाला वलेय से कहीं जाने को कह रहा था। और नाना चिल्ला रहे थे :

"पैरों के दाग़ न मिटने पायें।"

अचानक वह कुछ सोचने लगे और उन्होंने आँखें नीची कर लीं। और तब अधिकार के स्वर में ज़ोर से बोले :

"सिपाही जी! हल्ला-गुल्ला करने से कुछ लाभ नहीं। उसे तो ईश्वर ने अपने हाथ से सजा दे ही दी है। हम लोग बेकार ही प्रभु की करनी में दखल देना चाहते हैं। छिः!"

भीड़ में चुप्पी छा गयी। सभी निश्वास छोड़ते हुए मृत व्यक्ति को घूर रहे थे और सलीब का चिह्न बना रहे थे।

कुछ और लोग पेत्रोव्ना के मकान की तरफ से बाड़ लाँघकर बगीचे में आते और आपस में फुसफुसाते। फिर भी तब तक ख़ामोशी ही थी, जब तक कि नाना चारों ओर देखकर परेशानी से चिल्ला नहीं पड़े :

"भैया! यह क्या कर रहे हो तुम लोग-देखो तो रसभरी के तमाम पौधे कुचल डाले? क्या पड़ोसियों से ऐसे ही सलूक किया जाता है?"

नानी हाथ पकड़कर मुझे अन्दर ले गयी! मैंने पूछा :

"उसने क्या किया था?"

वह रोती हुई बोली,"देखा नहीं तूने?"

उस दिन बड़ी रात गये तक तरह-तरह के अज़नबी लोगों का हमारे रसोईघर तथा उसके पासवाले कमरे में आना-जाना लगा रहा। कमरे में पुलिसवालों का बोलबाला था। उनके अलावा एक और आदमी था, जो गिरजाघर का छोटा पादरी मालूम होता था। वह एक क़िताब में कुछ लिखता जा रहा था। बीच-बीच में टंकारपूर्ण स्वर में वह पूछता था :

"फिर क्या हुआ? फिर क्या हुआ?"

नानी प्यालियों में चाय ढालकर सभी को पिला रही थी। रसोईघर की मेज़ पर बड़ी-बड़ी मूच्छों वाला, गोल-मटोल चेचकरू आदमी बैठा था, जो खरखरी आवाज़ में कह रहा था :

"उसका असली नाम कोई नहीं जानता। इतना ही पता लग सका है कि वह येलात्मा का रहनेवाला था। उसका भतीजा गूँगा बना हुआ था। पकड़े जाने पर उसका मुँह खुल गया-उसने सारी कहानी सुना डाली। इन लोगों के साथ एक तीसरा भी था। उसने भी पुलिस में बयान दिया है। इन सबों का वर्षों से यही रोज़गार था। वे ज्यादातर गिरजाघरों पर ही हाथ साफ किया करते थे।"

पेत्रोव्ना पसीने से लथपथ हो रही थी, चेहरा लाल। उसके मुँह से निकला, "हे भगवान!"

मैं अलावघर पर लेटा हुआ था। वहाँ से नीचे बैठे सभी लोग नाटे, मोटे और बदसूरत दिखाई दे रहे थे...

10

एक शनिवार को मैं खूब तड़के उठकर पेत्रोव्ना के बाग में लाल चिड़िया पकड़ने गया। फंदा लगाकर मैं बड़ी देर से इंतजार कर रहा था, पर एक भी चिड़िया हाथ नहीं आ रही थी। वे लाल सीना ताने, गर्व से इधर से उधर फुदक रही थीं। चारों तरफ बर्फ़ की चादर फैली हुई थी। अपनी सुन्दरता के गर्व में डूबी ये चिड़ियां उस धवल चादर पर चहलकदमी कर रही थीं। कोई फुर्र से उड़कर झाड़ियों में घुस जाती, जिनकी डालियाँ बर्फ़ से झुकी जा रही थीं। डालियों पर झूमती बर्फ़ की नीली चमक के बीच वे चमकीले फूलों के समान सुन्दर मालूम पड़ रही थीं। यद्यपि शिकार हाथ नहीं लग रहा था, पर वहाँ का दृश्य इतना रमणीक और हृदयग्राही था कि मुझे अफसोस नहीं हो रहा था। सच तो यह है कि मैं सच्चा शिकारी था ही नहीं। शिकार पाने से ज्यादा शिकार करना ही मेरा उद्देश्य हुआ करता था। चिड़ियों के जीवन के रंग-ढँग और उनके केलि-कौतुक का परिवेक्षण करना ही मेरा प्रधान लक्ष्य होता था।

जाड़े का दिवस दर्पण जैसा स्वच्छ होता है। बर्फ़ीली चादर से ढँके मैदान के छोर पर अकेले बैठकर जाड़े के दिन की पारदर्शी खामोशी में चिड़ियों का कलरव, और जाड़े की पूर्वसूचना देनेवाली तीन घोड़ों की बर्फ़-गाड़ी की घंटियों की घुनन-घुन सुनना बहुत भला लगता है...

जब ठण्ड हड्डियों में घुसने लगी और ऐसा मालूम हुआ कि कान पाले से जम जायेंगे, तो मैंने जाल और पिंज़रा समेटा और बाड़ लाँघकर घर चला। हमारा फाटक खुला हुआ था और एक लम्बा-चौड़ा देहाती एक बड़ी, बन्द स्लेज को, जिसमें तीन घोड़े जुते हुए थे, हाँके बाहर चला जा रहा था। घोड़ों की देह से भाप उठ रही थी और देहाती मस्त होकर सीटी बजा रहा था। गाड़ी को देखकर न जाने क्यों मेरा कलेजा मुँह को आने लगा। मैंने गाड़ीवाले से पूछा :

तुम्हारी गाड़ी पर कौन आया है? वह मेरी ओर मुड़ा, उसने मेरी तरफ़ देखा, स्लेज में बैठा औ बोला :

"पादरी साहब।"

पादरी आया है, तो किसी किरायेदार के घर आया होगा-मैंने सोचा।

उधर देहाती घोड़ों को कोड़ा लगाते हुए बोला :

"चलो, बेटे!"

घोड़ों ने टाँगे हवा में उछालीं और गाड़ी की घण्टी घुनन-घुन कर बज उठी। जब गाड़ी निकल गयी, तो मैंने फाटक बन्द किया और अन्दर दाखिल हुआ। रसोईघर में पहुँचते ही बगल के कमरे में माँ की गम्भीर आवाज़ सुनायी पड़ी। वह कह रही थी :

"तो अब क्या होगा? मुझे फाँसी दे दोगे-यही न?"

मुझे कोट उतारने की भी सुधि न रही। हाथ का पिंज़रा फेंक-फाँक मैं ड्योढ़ी की ओर लपका। पर नाना ने मुझे पकड़ लिया। आँसू घोंटते हुए, आँखें फाड़कर उन्होंने मेरी ओर देखा और बोले :

"तेरी माँ आयी है। जा मिल ले उससे... पर ठहर!" यह कहकर उन्होंने मुझे इतने ज़ोर से झकझोर दिया कि मैं गिरते-गिरते बचा। इसके बाद मुझे दरवाज़े की तरफ ठेलते हुए कहा :

"जा! जा! अन्दर!"

दरवाज़े पर पहुँचकर मैं सकपका गया। पाले से ठिठुरी, काँपती उँगलियों से कुण्डी खिसक ही न रही थी। किसी तरह दरवाज़ा खुला तो मैं चौखट पर खड़ा रह गया-बुत बना-सा। माँ बोली :

"अच्छा! यह हैं हज़रत! कितना बड़ा हो गया है रे तू। चीन्ह नहीं रहा है मुझे? इस तरह कपड़े किसने पहनाये हैं? और कान तो, ज़रा देखो, बिल्कुल सुन्न हो रहे हैं? अम्मा, जल्दी से थोड़ी हंस की चरबी देना तो!"

वह देर तक मुझे सटाये, कमरे के बीच खड़ी होकर मेरे कपड़े बदलती और मुझे गेंद की तरह घुमाती रही। उसके लम्बे-चौड़े शरीर पर लाल रंग की मुलायम और गरम पोशाक थी, जो लबादे की तरह चौड़ी थी। उसमें बड़े-बड़े काले बटन टँके हुए थे, जो कन्धे से आरम्भ होकर तिरछी रेखा बनाते हुए कमर तक और फिर कमर से एक दम नीचे तक चले गये थे। ऐसी पोशाक मैंने पहले नहीं देखी थी।

उसका चेहरा छोटा तथा अधिक सफेद मालूम होता था। पर आँखें पहले से बड़ी और गहरी तथा बाल ज्यादा सुनहले लग रहे थे। मुँह बिचकाते हुए उसने मेरे कपड़े एक ओर फेंक दिये और उदात्त स्वर में बोली :

"अरे तू बोलता क्यों नहीं? माँ को देखकर खुशी नहीं हो रही है? ज़रा कमीज तो देखो इसकी? कितनी मैली है! छि!"

इसके बाद वह मेरे कानों पर हंस की चरबी मलने लगी। कान दुखने लगे, पर उसके शरीर से आनेवाली फूलों की ताजा सुगन्ध बहुत अच्छी लग रही थी। मैं और सटकर उसका चेहरा निहारने लगा। उत्तेजना के कारण मेरे मुँह से शब्द नहीं निकल रहे थे। नानी मेरी हरकतों पर टीका-टिप्पणी करती जा रही थी। वह शिकायत कर रही थी :

"यह बिल्कुल ढीठ हो गया है। अब तो नाना से भी नहीं डरता... तेरी ही उपेक्षा का यह फल है, वर्वारा!"

माँ ने जवाब दिया :

"शिकवा-शिकायत बन्द भी करो, माँ! सब ठीक हो जायेगा।"

माँ के आगे घर की सारी चीज़ें फीकी और पुरानी लग रही थीं। मैं स्वयं नाना से कम पुराना नहीं मालूम हो रहा था। माँ मुझे जाँघों में दबाये अपने गरम और भारी हाथ मेरे माथे पर फेर रही थी। बोली :

"इसके बाल कितने बढ़ गये हैं! कटवाने होंगे। और अब स्कूल में भी नाम लिखवाना होगा। पढ़ना चाहता है कि नहीं, रे?"

"मैं पढ़ गया हूँ," मैंने जवाब दिया।

"अभी कुछ और पढ़ना बाकी है... अरे, तू कैसा मजबूत हो गया है?"

यह कहकर और मेरे साथ खिलवाड़ करती हुई वह हँसने लगी। उसकी हँसी में स्नेह का सागर उमड़ा पड़ रहा था।

बूढ़े नाना कमरे में आये, गुस्से से तमतमाया चेहरा और लाल आँखें। माँ ने ठेलकर मुझे किनारे कर दिया और तीखेपन से बोली :

"क्या तय किया है? मैं चली जाऊँ यहाँ से?"

नाना खिड़की के पास खड़े होकर नाखून से बर्फ़ खुरच रहे थे-बिल्कुल मौन वातावरण में ऐसा तनाव आ गया कि मुझे लगा कि मेरे कान और आँखें सारे शरीर में फैल गयी हैं। जी हो रहा था खूब ज़ोर से चिल्ला पड़ूँ और न चिल्ला सकने के कारण कलेजा फटा जा रहा था। नाना रुखाई से बोले :

"अलेक्सेई, तू बाहर जा।"

माँ ने फिर मुझे अपने पास खींच लिया और बोली :

"क्यों?"

"तू कहीं नहीं जायेगी," नाना ने कहा। "मैं मना कर रहा हूँ..."

वह उठ खड़ी हुई और कमरे का चक्कर लगाने लगी, जैसे आकाश में सन्धाकालीन मेघ का टुकड़ा। नाना की पीठ के पास रुककर उसने कहा :

"बाबूजी, मेरी बात सुनिये..."

मुड़कर वह चीख उठे :

"चुप रह!"

माँ ने अविचल स्वर में कहा :

"देखिये, गरजिए नहीं मुझपर इस तरह।"

नानी, जो सोफे पर बैठी हुई थी, बरबस उठ खड़ी हुई और तर्जनी दिखाकर धमकाती हुई बोली :

"वर्वारा!"

और नाना हार खाकर कुर्सी पर धम से बैठ गये और लगे आप ही आप बड़बड़ाने :

"यह क्या हो रहा है? यह क्या हो रहा है? मैं कौन हूँ? यह कैसा खेल-तमाशा है?"

सहसा वह फिर परायी आवाज़ में चिल्ला उठे :

"वर्वारा! तूने हम लोगों का मुँह काला कर दिया!"

"तू बाहर जा," नानी मुझसे बोली।

खिन्न मन, मैं रसोईघर में चला गया और अलावघर पर जा बैठा। वहाँ से दूसरे कमरे की आवाज़ें सुनाई पड़ रही थी। कभी सब एक साथ ही उत्तेजित स्वर में बोलने लगते थे और कभी चुप्पी का आलम छा जाता था, मानो सब नींद में बेखबर हो गये हों। उनकी चर्चा का विषय यह था कि माँ ने एक बालक को जन्म दिया था, जिसे वह किसी के घर छोड़ आयी थी। लेकिन यह पता नहीं चल रहा था कि नाना किस बात के लिए नाराज़ हो रहे थे-इसलिए कि माँ ने बिना इजाज़त बालक पैदा किया है या इसलिए कि वह उसे दूसरे के यहाँ छोड़ आयी है?

अन्त में वह रसोईघर में आये-चेहरा लाल, बाल बिखरे हुए, पस्त। पीछे-पीछे नानी भी आयी। वह अपने ब्लाउज के छोर से आँसू पोंछ रहीं थी। नाना धड़ाम से बेंच पर बैठ गये और लगे दाँतों से होंठ चबाने, जो सफेद पड़ गये थे। नानी उनके सामने घुटनों के बल बैठ गयी। मन्द और दुखी स्वर में वह कहने लगी :

"बाबू, माफ कर दो उसे। ईसा के लिए उसे माफ कर दो। बड़े-बड़े डूब जाते हैं, वह बेचारी किस खेत की मूली है। रईसों और सेठों के घरानों में क्या ऐसी बात नहीं होती? बेचारी अबला है बाबू, माफ कर दो उसे। कौन है, जिसमें कमज़ोरी नहीं..."

नाना दीवार की ओर खिसक गये, नानी की ओर देखा, व्यंग्यपूवर्क मुस्कराये और रोनी आवाज़ में कहने लगे :

"बेशक, बेशक! भला तुम क्यों न माफ़ कर देने को कहोगी? कौन अपराध है, जो तुम माफ न कर दोगी? ऊँह। शर्म आनी चाहिए तुम्हें!"

इसके बाद झुककर उन्होंने उसके कन्धे पकड़ लिये और उन्हें झकझोरते हुए बोले :

"ऊपर भगवान है। उसे हम कौन मुँह दिखायेंगे? वह पाप का दण्ड दिये बिना नहीं रहता। हमारा-तुम्हारा क्या है। चला-चली की बेला आ गयी है, लेकिन अब भी चैन नहीं, न चैन की आशा है। गाँठ बाँध लो मेरी बात; भिखमँगों की मौत न मरे हम लोग तो कहना?"

नानी ने उनके हाथ पकड़ लिये और मधुर हँसी हँसती हुई बगल में बैठ गयी। बोली :

"भिखमँगा होना ही बदा होगा, तो हो जायेंगे। भाग्य से क्या डरना? तुम घर में रहोगे, मैं झोली लेकर निकल जाऊँगी। दो मुट्ठियों के लिए मुझे कोई दरवाज़े से नहीं

फेरेगा। भूखों नहीं मरेंगे हम लोग। इसलिए क्या रखा है इन बातों में? इनकी चिन्ता में देह घुलाना बेकार है।"

अचानक नाना के मुँह से एक अजीब-सी आवाज़ निकली और वह नानी के गले से चिपटकर बालक की तरह सिसकने लगे :

"तू भोंदू है, बिल्कुल भोंदू-मेरी अच्छी भोंदू। तू ही तो एक अपनी बची है। तेरी सिधाई पर ईसा की माता भी वारी जायेगी। सबकुछ खोकर भी तू सन्तोष का पाठ पढ़ाने को तैयार है। हम लोगों ने इन बच्चों के लिए कौन सा पाप नहीं किया। उनके लिए खून-पसीना एक किया। अब जबकि चला-चली बेला है, तो कुछ नहीं बच रहा। कुछ भी नहीं..."

अब और सहना मेरे लिए असह्य हो गया। मैं अलावघर के नीचे कूद पड़ा। आँखों से आँसुओं की धारा जारी थी। मैं दौड़कर नाना, नानी से सट गया। मेरी खुशी का ठिकाना न था-माँ लौट आयी थी और नाना तथा नानी अपार स्नेह से बातें कर रहे थे, अभूतपूर्व दृश्य था। दोनों ने मुझे अपनी बाँहों में भरते, अपने आँसुओं से तर करते और प्यार से पुचकारते हुए मुझे भी अपने दुःख का साझीदार बना लिया।

नाना मेरे गाल के पास मुँह सटाकर अस्फुट स्वर में कहने लगे :

"देखो इस नटखट को, यह भी आ गया। अब इसकी माँ आ गयी। अब बूढ़े, शैतान और गुस्सैल नाना को तू क्यों पूछेगा? लाड़ लड़ाने और प्यार से बिगाड़ने वाली नानी से भी अब क्यों दीठ मिलायेगा? अरे, तुम लोग..."

हम दोनों को एक किनारे करके नाना उठ खड़े हुए। रुष्ट स्वर में बोले :

"सभी हम लोगों को छोड़ना चाहते हैं। कोई नहीं चाहता कि बुड्ढे-बुढ़िया के पास रहें। सभी अलग रास्ता पकड़ना चाहते हैं... खैर, बुला लाओ उसे। वह भी सोच ले। जल्दी से बुलाओ!"

नानी चली गयी और नाना पूजावाले कोने में जा खड़े हुए और सिर नवाकर बोले :

"दयानिधान प्रभु! देखा न!"

इतना कहकर उन्होंने ज़ोर से छाती ठोकी। मुझे यह अच्छा नहीं लगा। ईश्वर के सामने इतने अभिमान से बोलना मुझे कभी नहीं भाया।

इतने में माँ आ गयी। उसकी खुशनुमा लाल पोशाक ने कमरे में उत्फुल्लता का वातावरण उत्पन्न कर दिया। वह मेज के पासवाली बेंच पर नाना और नानी के बीच बैठ गयी। उसकी चौड़ी लाल आस्तीनों ने दोनों की पीठ को ढँक लिया। वह अत्यन्त नरमी और गम्भीरता के साथ दोनों से बातें करने लगी। नाना और नानी मौन होकर उसकी बातें सुन रहे थे। माँ की बगल में दोनों इतने छोटे लग रहे थे, मानो वही माँ हो और वे दोनों बालक।

भावातिरेक से चूर होकर मैं अलावघरवाले चबूतरे पर ही नींद में बेखबर हो

गया।

उस दिन शाम को नाना और नानी अपनी सबसे अच्छी पोशाक पहनकर गिरजाघर की प्रार्थना में गये। नाना रँगरेजों के मुखिया की शानदार पोशाक और ऊपर से फर का कोट पहन हुए थे। उनकी ओर आँख मारकर नानी माँ से बोली :

"ज़रा देख तो अपने बाप को। बकरे की तरह कैसे साफ-सुथरे लगते हैं।"

माँ खुलकर हँस दी।

जब उसके कमरे में मैं और वह अकेले रह गये, तो वह पैर अपने नीचे मोड़कर सोफे पर बैठ गयी और मुझे बगल में बैठने का इशारा किया। बोली :

"इधर आकर बैठ। अपना हाल-चाल कह। खूब आराम से तो नहीं कटी होगी?"

हाल-चाल कैसा है, यह मैं स्वयं नहीं जानता था। माँ ने पूछा :

"नाना खूब मारते हैं न?"

"अब उतना नहीं मारते।"

"सच? अच्छा जो जी में आये, कहता चल।"

नाना के बारे में कुछ कहने को मेरा मन नहीं हुआ। इसलिए मैं उसे बताने लगा कि इसी कमरे में एक बड़ा ही अच्छा आदमी रहा करता था, लेकिन उसे कोई नहीं चाहता था और अन्त में नाना ने उसे निकाल दिया। स्पष्टतः यह कहानी माँ को पसन्द नहीं आयी। उसने कहा :

"कोई और बात बता।"

मैंने उसे पड़ोस के तीन लड़कों के बारे में बताया और कर्नल द्वारा उनके आँगन से अपने निकाले जाने की कहानी कही। माँ ने मुझे चिमटाते हुए कहा :

"छिः। वह आदमी है या जानवर?"

इसके बाद वह हठात् चुप हो गयी और माथे पर बल डालकर गर्दन हिलाते हुए फ़र्श की ओर देखने लगी। मैंने सवाल किया :

"नाना क्यों तुमसे इतना बिगड़े हुए हैं?"

"क़सूर मेरा ही है।"

"मैं भी यही समझता हूँ। तुम बच्चे को उनके पास क्यों नहीं लायी?.."

वह चौंक पड़ी। उसकी भौंहों पर बल पड़ गया और उसने होंठ काट लिये। पर दूसरे ही क्षण वह ठठाकर हँस पड़ी और उसने मुझे फिर चिमटा लिया। बोली :

"ज़रा भी अक़्ल नहीं है तुझे। ऐसी बातें नहीं किया करते, समझे न। इस बात को भूल जाना चाहिए।"

कुछ देर तक वह मुझसे कुछ कहती रही-अजीब तरह की कठोर, गम्भीर बातें-जिनका सिर-पैर मैं कुछ नहीं समझ सका। इसके बाद उठ खड़ी हुई और कमरे में चहलकदमी करने लगी। उसकी मोटी भौंहें हिल रही थीं और उँगलियों ठुड्डी से खेल रही थीं।

मेज पर मोमबत्ती जल रही थी। उसका प्रतिबिम्ब आईने में झलक रहा था। फ़र्श पर मैली परछाइयाँ हिल रही थीं, पूजा के कोने में प्रतिमा के सामने एक दीया जल रहा था। पाले से जमी खिड़कियाँ चाँदनी में रूपे की तरह चमक रही थीं। माँ चारों तरफ यों देख रही थी, मानो खाली दीवारों या छत में कुछ ढूँढ रही हो। उसने पूछा :

"तू कितने बजे सोता है?"

"थोड़ी देर बाद।"

"ठीक है। आज तो तू दोपहर में भी सोया है," उसने निश्वास छोड़ते हुए कहा। मैंने पूछा :

"तुम चली जाओगी?"

उसने चकित होकर कहा :

"जाऊँगी कहाँ?" इसके बाद मेरा सिर अपने हाथों में लेकर वह इतनी देर तक मेरी आँखों में टकटकी लगाये देखती रही कि मेरे आँसू न रुक सके। माँ ने पूछा :

"तू रो क्यों रहा है?"

"मेरी गरदन दुख रही है।"

पर दरअसल मेरा कलेजा दुख रहा था। एक टीस के साथ मेरा हृदय कह रहा था कि वह इस घर में टिकेगी नहीं। उसे जाना ही पड़ेगा।

फ़र्श के कालीन को पैरों से एक तरफ ठेलते हुए उसने कहा :

"बड़ा होने पर तू बिल्कुल अपने पिताजी की तरह लगेगा। नानी ने तुझे पिताजी के बारे में बताया है?"

"हाँ।"

"वह मक्सिम को जी-जान से प्यार करती थी। और वह भी उसे बहुत मानते थे।"

"मैं जानता हूँ," मैंने कहा।

माँ ने मोमबत्ती की ओर देखा और नाक-भौं सिकोड़कर उसे बुझा दिया।

"यह ज्यादा अच्छा है," उसने कहा।

बिना मोमबत्ती के कमरा और अधिक ताज़ा और स्वच्छ मालूम पड़ने लगा। ज़मीन पर फैली मैली परछाइयों की जगह छनकर चाँद की नीली रोशनी आ रही थी। खिड़की के शीशों पर सुनहला रंग प्रतिबिम्बित हो रहा था।

"यहाँ आने के पहले तुम कहाँ थीं?"

उसने कई शहरों के नाम बताये, मानो भूली-बिसरी कहानी सुना रही हो। साथ ही कमरे में बाज की तरह चक्कर काटती रही।

"यह पोशाक तुम्हें कहाँ मिली?"

"मैंने खुद तैयार की है। मैं अपना काम खुद करती हूँ।"

माँ औरों से कितनी भिन्न है, यह विचार मेरे लिए बड़ा सन्तोषदायक था।

लेकिन अफ़सोस की बात यह थी कि वह बोलती ही बहुत कम थी। मेरे पूछने पर ही वह कुछ कहती थी।

थोड़ी देर बाद फिर मेरे साथ सोफे पर आ बैठी और हम दोनों देर तक गुप-चुप, एक दूसरे से सटे बैठे रहे। इतने में नाना और नानी गिरजाघर से लौट आये-मोमबत्ती और लोहबान की महक में बसे, शान्त और स्थिर।

रात के भोजन के वक़्त खाने की मेज पर शान्ति और गम्भीरता का मधुर वातावरण छाया था। कोई ज़रूरत से अधिक नहीं बोल रहा था और जो बोलता था, वह भी बड़ी सावधानी से, मानो पास ही में कोई बालक सो रहा हो, जो ज़रा से खटके से भी जाग पड़ेगा।

नाना मुझे धार्मिक शिक्षा दे चुके थे। माँ ने अब मेरी सामान्य पढ़ाई की ओर ध्यान देना शुरू किया। उसने मेरे लिए नयी क़िताबें खरीद दीं, जिनमें से एक का नाम था "रूसी भाषा ज्ञान"। इस क़िताब से मैंने दो-तीन दिनों में सामान्य वर्णमाला सीख ली। अक्षर ज्ञान होते ही माँ को मुझे कविताएँ रटाने का विचार सूझा। उसका यह निर्णय हम दोनों के लिए निष्ठुर यातना बन गया।

पहली कविता, जो मुझे पढ़नी पड़ी, वह यह है :

सीधी-सादी राह बड़ी है,
जिसका ओर न छोर कहीं है
खेतों-खलिहानों से होकर,
बस्ती-बस्ती निकल गयी है
नहीं कुल्हाड़े, लगी कुदाल,
दी न किसी ने मिट्टी डाल
सुम और टापें कई हजार,
पड़ीं कि राह हुई तैयार।

इस कविता को सुनाते समय मैं सदा 'बड़ी' की जगह 'चढ़ी,' 'होकर' की जगह 'सोकर' और 'डाल' की जगह 'झाल' कह देता था। माँ रुष्ट होकर कहती :

"बेवकूफ! राह चढ़ेगी कैसे। कह : 'सीधी-सादी राह बड़ी!"

उसकी बात मेरी समझ में न आती हो, ऐसा न था, फिर भी मेरे मुँह से 'बड़ी' की जगह 'चढ़ी' निकल जाता। मैं स्वयं परेशान था।

माँ को गुस्सा आ गया। वह कहने लगी, तू जिद्दी है, बेवकूफ है आदि। उसका यह दोषारोपण मेरा कलेजा मसोसने लगा। मैंने पूरी कोशिश की कि उस क़म्बख़्त कविता के सही शब्द बरज़बान हो जायें। मन में मैंने उन्हें कई बार दुहरा भी लिया और बिल्कुल सही-सही। पर ज्योंही सुनाने की बारी आती थी, फिर शब्दों का घनचक्कर शुरू हो जाता था। इन पँक्तियों के प्रति प्रगाढ़ घृणा से मेरा रोम-रोम भर गया। मैंने

चिढ़कर उन्हें बिगाड़ना शुरू किया। अनुप्रासों की मैंने पूरी सूची तैयार कर ली और उन्हें बैठाने लगा। कविता जितनी ही अधिक ऊटपटाँग होती जाती, उतना ही मुझे अधिक सन्तोष प्राप्त होता।

इस मानसिक खेल का मुझे निष्ठुर परिणाम भी भुगतना पड़ा। एक दिन जब पढ़ाई बड़े सुचारु रूप से चल रही थी, माँ ने पाठ के अन्त में वही कविता सुनाने को कहा। मैंने सुनानी शुरू की, पर मेरे मुँह से कविता की जगह शब्दों का निरर्थक प्रवाह बह निकला :

टेढ़ी-मेढ़ी रेंग-रेंग
हींग बेचें तोंग बेंग
अरियाँ परियाँ आरपार
सरसर राह हुई तैयार।

मुझे कुछ देर के बाद होश आया कि मैं क्या कह रहा हूँ। माँ इस बीच मेज पर हाथ टिकाकर उठ खड़ी हुई। प्रत्येक शब्द पर ज़ोर देकर वह बोली :

"यह कविता कहाँ सीखी है तूने?"

अपने कारनामे पर मैं स्वयं स्तम्भित था। मैंने जवाब दिया :

"मैं नहीं जानता।"

"तू खूब जानता है! बता!"

"यों ही सीख ली।"

"यों ही! यों ही कैसे?"

"खेल में।"

"जा, फ़ौरन कोने में जा!"

"कोने में?"

"हाँ, कोने में मैं कहती हूँ न!" उसने आपे से बाहर होकर कहा।

"किस कोने में?"

वह मुँह से कुछ नहीं बोली, पर उसने मेरी ओर लाल आँखों से ऐसे देखा कि मेरी बची-खुची अक़्ल भी गुम हो गयी। वह क्या कह रही है और मैं क्या कह रहा हूँ, इसका बदहवासी के मारे मुझे होश नहीं रहा। पूजावाले कोने में छोटी-सी गोल मेज रखी थी, जिसपर सूखे सुगन्धित फूलों तथा पत्तियों वाला गुलदान रखा था। दूसरे कोने में एक सन्दूक था, जिसपर ऊनी आसनी बिछी हुई थी। तीसरे कोने में पलँग था और चौथे में दरवाज़ा। मैंने उसकी आज्ञा का मतलब समझने की जी-तोड़ कोशिश की, पर बेकार। मैंने कहा :

"तुम मुझे क्या करने को कह रही हो?"

वह धम से कुरसी पर बैठ गयी तथा अपना माथा और गाल मलने लगी। बोली :

"नाना ने तुझे कभी कोने में खड़ा किया है या नहीं?"

"कब?"

"कभी भी?" दो बार मेज पर हाथ पटकते हुए वह गरज़कर बोली।

"नहीं। मुझे तो याद नहीं है।"

"तू जानता है कि नहीं कि कोने में खड़ा करना एक सज़ा है?"

"नहीं। कोने में खड़ा करना सज़ा कैसे है?"

"हे भगवान, इस लड़के से पार पाना कठिन है," वह निश्वास छोड़कर बोली। "अच्छा यहाँ आ।"

मैंने पास आकर कहा :

"तुम मुझे डाँट क्यों रही हो?"

"तू क्यों हमेशा कविता को उलट-पलटकर पढ़ता है?"

मैंने उसे समझाने की कोशिश की कि मन में पढ़ने पर कविता ठीक-ठीक बोलता हूँ, पर ज़ोर से बोलते ही दूसरे शब्द निकलते हैं।

"तू बात बना रहा है?"

मैंने क़सम खायी कि ऐसी बात नहीं है। पर दूसरे ही क्षण मैं स्वयं सोचने लगा कि शायद मैं सचमुच ही बात बना रहा हूँ। हठात् थोड़ा रुककर मैंने पूरी कविता ठीक सुना दी, बिल्कुल ठीक। मैं स्वयं आश्चर्यचकित और अभिभूत हो गया।

यह अनुभव करते हुए कि मानो मेरा चेहरा अचानक सूज गया है, कान गर्म और भारी हो गये हैं, सिर में अप्रिय शोर हो रहा है, मैं शर्म से जलता हुआ माँ के सामने खड़ा था और आँसुओं से भीगी आँखों से मैंने यह देखा कि माँ चेहरा निराशा से कैसे काला पड़ गया है, होंठ भिंच गये हैं और माथे पर बल पड़ गया है।

उसने पूछा :

"इसका मतलब? इससे तो यही पता चलता है कि तू बात बना रहा था?" उसका स्वर अपरिचित-सा लग रहा था।

"मैं नहीं जानता। अनजाने..."

"तुझसे पार पाना कठिन है, भाई," उसने सिर नीचा करके कहा, "जा यहाँ से।"

वह मुझे नयी-नयी कविताएँ रटाने लगी, पर मेरा मस्तिष्क उन्हें स्वीकार करने से इन्कार कर देता था। छन्दों को तोड़-मरोड़कर उनकी जगह दूसरे शब्द बैठाने की आदत पड़ गयी, जो लाख कोशिश करने पर भी छूटने का नाम न लेती थी। सहज स्वाभाविक रूप से शब्द आप ही आप विकृत होने लगते थे। सही शब्दों की जगह दूसरे, नये शब्द रेल-पेल करते हुए आ जाते थे। अक्सर पूरी की पूरी पँक्ति परिवर्तित हो जाती थी। मुझे स्मरण है कि राजकुमार व्याजेम्स्की का एक दर्दीला पद मुझे खास तौर से परेशान किया करता था।

भोर-भोर से रात ढले तक हाय
बूढ़े-बुढ़ियाँ, बेवाएँ और अनाथ
. . . . . .
खिड़की तले खड़े टुकड़े के लिए पसारें हाथ!

मैं तीसरी पँक्ति हमेशा छोड़ दिया करता था :

गुहारते हैं दिन करुण असहाय।

माँ खीझ उठती थी। उसने मेरी स्मरण-शक्ति के कारनामों के बारे में नाना से कहा। वह क्रुद्ध होकर बोले :

"बात और कुछ नहीं है। लड़का बिगड़ गया है। उसकी स्मरण-शक्ति बिल्कुल ठीक है। सारे भजन उसे याद हैं, मुझसे भी बेहतर। उसकी याददाश्त पत्थर की लकीर की तरह ठोस है। एकाध बार कसकर पिटाई करो, बस ठीक हो जायेगा।"

मेरी नानी ने भी कहा :

"परियों की कहानियाँ और गीत सब उसे कंठस्थ हैं। गीत और कविता में फ़र्क ही क्या है?"

बात सच थी। मैं महसूस करता था कि क़सूर मेरा ही है। पर ज्योंही मैं कोई कविता रटने बैठता, दूसरे शब्द तिलचट्टों की फौज की तरह मेरे मस्तिष्क पर घेरा डाल देते :

साँझ सकारे मेरे द्वारे
लूले लँगड़े और बिचारे
रोयें बिलखें हाथ पसारें
अहर गुजारें पहर गुजारें
रोटी माँगें दाँत निपोर
ले जायें पेत्रोव्ना की ओर
उसकी गाय को रोटी टेके
और ठीक से पैसे लेके
पी-पी के बौरायें नीच
लोटें अली-गली के बीच।

रात को नानी की बगल में लेटकर मैं कभी क़िताबों की और कभी अपनी बनायी चीज़ें उसे सुनाया करता। कभी-कभी वह हँसने लगती; पर अधिकतर वह झिड़कियों से मेरा स्वागत करती। वह कहती :

"तू स्वयं देख ले कि चाहने पर सब कुछ कर सकता है। लेकिन बेचारे भिखमँगों का इस तरह मज़ाक बनाने का तुझे कोई अधिकार नहीं है। प्रभु ईसा स्वयं भिखमँगे

थे। यही हाल सभी सन्तों का भी था।"

जवाब में मैंने बड़बड़ाना शुरू किया :

उफ भिखमंगे।
गन्दे! नंगे!
घिन होती है!
नाना से भी!
जी में कुछ भिनभिन होती है!
हे भगवान!
इनसे कैसे छूटे जान?
जान बचे जैसे-तैसे भी
भिखमँगी से
औ' नाना की कड़ी छड़ी से!

नानी बिगड़कर बोली :

"दुष्ट कहीं का! बड़ों के बारे में इस तरह बोलने से जीभ में कीड़े पड़ जाते हैं। और नाना ने सुन लिया, तो खूब दुर्गति करेंगे तेरी।"

"सुनने दो," मैंने संक्षिप्त उत्तर दिया।

नानी ने मीठे स्वर में मुझे पुचकारते हुए कहा :

"तुझे कभी अपनी बेचारी माँ के लिए चिंता नहीं होती? उसकी ज़िन्दगी तो यों ही पहाड़ है। और तू है कि नयी आफ़त बनना चाहता है!"

"उसकी ज़िन्दगी क्यों पहाड़ है?"

"मुँह बन्द कर! ऐसी बातें अभी तेरे जानने की नहीं हैं।"

"मैं जानता हूँ-नाना ही..."

"मैंने कहा न, बन्द कर मुँह।"

मेरे मानसिक कष्ट का ठिकाना न था। ऐसा लगता था कि निराशा का सागर मुझे सदा के लिए निगल जायेगा। पर किसी कारण मैं इस बात को औरों से छिपाना चाहता था। अतः मेरा धड़का खुल गया और मैं अधिकाधिक उद्दण्ड होता गया। माँ पाठों की संख्या बढ़ाती जाती थी और वे दिनोंदिन मेरे लिए अधिक मुश्किल होते जाते थे। हिसाब मुझे बहुत आसान लगता था, पर लिखने का काम पहाड़ मालूम होता था तथा व्याकरण भी मुझे नहीं आता था। यह विचार कि माँ के लिए नाना के घर दिन गुजारना अत्यन्त कष्टकर है, मुझे शूल की तरह बेधा करता था। माँ हर रोज़ अधिकाधिक उदास रहने लगी थी। सब को वह इस तरह देखती मानो बैरी और बेगाने हों और घण्टों बगीचे में खुलनेवाली खिड़की के पास बैठी रहती और एकदम मुरझा-सी गयी थी। आने पर दो-चार दिन तक वह काफी फुर्तीली और ताज़ादम

दिखाई पड़ी थी, पर अब आँखों के नीचे काले गढ़े पड़ गये थे। अब पहनावा ठीक रखने या बाल काढ़ने की भी उसे सुध नहीं रहती थी। अक्सर वह सारा दिन अस्तव्यस्त-सी रहा करती-पुरानी वास्कट पहने, बाल बिखराये। उसका अनाकर्षक भेष में रहना मुझे बड़ा अखरता था, क्योंकि मेरे विचार से उसे सदा सुन्दर, रोबीली और साफ-सुथरी-सभी से बढ़-चढ़कर होना चाहिए था।

पढ़ाते-पढ़ाते वह शून्य दृष्टि से दीवार या खिड़की की ओर देखने लगती। सवाल पूछती तो अनमने स्वर में और जवाब मिलने के पहले ही अन्यमनस्क हो जाती। वह दिनोंदिन चिड़चिड़ी होती जा रही थी और बात-बात में मुझे डाँट बैठती थी। इससे भी मेरे दिल को ठेस लगती थी, क्योंकि माँ ऐसी होनी चाहिए थी कि सबसे नेक और अच्छी, जैसी परियों की कहानी में।

कभी-कभी मैं उससे सवाल करता :

"हम लोगों के यहाँ तुम्हारा मन नहीं लगता?"

"चुपचाप पढ़!!" वह झल्लाकर उत्तर देती।

मैंने देखा कि नाना कोई ऐसा काम कराना चाहते हैं, जिससे नानी और माँ दोनों घबड़ायी हुई हैं। अक्सर वह माँ के साथ कमरा बन्द करके चिल्लाते थे। उनकी आवाज़ गड़रिये निकानोर की लकड़ी की बाँसुरी के समान ही अप्रिय होती थी। ऐसे ही एक अवसर पर माँ ने ऐसे गरजकर जवाब दिया कि उसकी आवाज़ सारे घर में गूँज उठी। वह बोली :

"यह हरगिज़, हरगिज़ नहीं होगा!"

उसने बाहर निकलकर ज़ोर से दरवाज़ा बन्द कर दिया। नाना भीतर ही चिल्लाते रह गये।

यह घटना शाम को घटी थी। नानी रसोईघर में नाना के लिए कमीज सी रही थी और आप ही आप कुछ बड़बड़ाती जा रही थी। जब दरवाज़ा बन्द होने की आवाज़ आयी, तो वह बोली :

"हे भगवान! वह किरायेदारों के यहाँ चली गयी।"

नाना दौड़ते हुए रसोईघर में आये और उसके सिर पर एक थप्पड़ जड़ दिया। ऐसा करने से खुद उनका हाथ टीस उठा और उसे झटकारते हुए वह फुँकार छोड़कर बोले :

"डायन कहीं की! तू ही ने उसे सब बता दिया है।"

नानी ने अपने सिर का रुमाल सँभालते हुए शान्त स्वर में कहा :

"तुमको न अक़्ल आयी, न आयेगी! तुम चाहते हो कि मैं गूँगी बन जाऊँ, लेकिन कहे देती हूँ कि तुम जो चाल चल रहे हो, मैं वह न चलने दूँगी..."

नाना उसपर टूट पड़े और लगे मुँह पर थप्पड़ों और मुक्कों की वर्षा करने। नानी ने उन वारों को रोकने की कोशिश नहीं की, पर ज़बान नहीं बन्द हुई :

"और मारो, और मारो। मूर्ख कहीं के, जितना जी में आये पीट लो।"

मैं अलावघर के चबूतरे पर बैठा हुआ था। वहीं से मैं नाना के ऊपर तकिया, कम्बल और जूते फेंकने लगा, पर गुस्से में उन्होंने इधर ध्यान नहीं दिया। नानी ज़मीन पर गिर पड़ी और वह लातों से उसे पीटने लगे। पीटते-पीटते उन्होंने ठोकर खाकर पानी की बालटी गिरा दी। कमरे में पानी फैल गया। वह खों-खों करते हुए उठे, उठकर एक बार पागलों की तरह चारों ओर देखा और इसके बाद कोठे पर भागे। नानी कराहती हुई उठी और बेंच पर बैठकर अपने केश ठीक करने लगी। मैं कूदकर नीचे उतरा।

मुझे देखकर वह गुस्से से बोली :

"बेवकूफ कहीं का! तूने तकिया और कम्बल गन्दा कर दिया। उठा इन सब को। तुझे इन बातों में पड़ने को किसने कहा? और बुड्ढे का तो दिमाग ही फिर गया है।"

सहसा वह चीख उठी और घबराकर मुझे बुलाया। अपना सिर मेरे सामने करके वह बोली :

"ज़रा सिर को देख तो, क्यों इतने ज़ोर से दर्द हो रहा है?"

उसके केशों के घने गुच्छों को हटाकर मैंने देखा-बालों का एक क्लिप खाल में धँस गया था। उसे खींचा तो एक और क्लिप गड़ा नज़र आया। मेरी उँगलियाँ बेजान-सी हो गयीं।

"माँ को बुला लाना बेहतर होगा," मैंने कहा, "मुझे डर लग रहा है।"

"क्या कहता है रे-माँ को बुलायेगा?" नानी चिल्लाकर बोली, "यह तो कह कि खैरियत है कि वह यहाँ नहीं थी और उसे कुछ नहीं मालूम। और तू है कि उसे बुला लाना चाहता है! भाग यहाँ से।"

उसने स्वयं उन घने गुच्छों को टटोलना शुरू किया। हुनरमन्द, लैस बुननेवाली की उँगलियाँ बालों में दौड़ने लगीं। मैंने भी कलेजा कड़ा करके दो और क्लिप खोज निकाले। मैंने पूछा :

"बहुत दुख रहा है?"

"थोड़ा-सा। कल गुसलखाने में पानी गरम कर माथा धो डालूँगी।" फिर मुझे फुसलाते हुए बोली :

"लेकिन माँ से मत कहना। दोनों में यों ही नहीं पट रही है। समझा? नहीं कहेगा न? मेरा लाल दुलारा!"

"नहीं।"

"ठीक। भूलना मत। अच्छा ला, कमरा जल्दी से ठीक कर डालें। और मेरा चेहरा देख ले, उसपर निशान-विशान तो नहीं है? नहीं न? बिल्कुल ठीक..."

वह फ़र्श को साफ करने लगी। मेरे हृदय से आवाज़ निकली :

"तुम सचमुच महात्मा हो-इतनी मार और यंत्रणा सहने पर भी तुम्हारा यह व्यवहार!"

"क्या बकबक कर रहा है तू? सन्त और महात्मा क्या ऐसी ही जगहों में रहते हैं?"

वह घुटनों के बल होकर फ़र्श धो रही थी और मैं अलावघर की पैड़ी पर बैठकर यह सोच रहा था कि नाना को किस प्रकार इसका मजा चखाया जाये।

आज पहली बार उन्होंने इस भोंडे और भयानक ढँग से मेरे सामने नानी को पीटा था। कमरे में धीरे-धीरे अँधेरा छा रहा था और मेरी आँखों के सामने उनका लाल चेहरा और हिलते हुए लाल बाल नाच रहे थे। दिल गुस्से से जल रहा था और मैं सोच नहीं पा रहा था कि किस उपाय से ऐसा बदला लूँ कि उन्हें हमेशा के लिए पाठ याद हो जाये।

इस घटना के दो दिन बाद मैं उनके कोठेवाले कमरे में जा रहा था, तो देखा कि वह खुले सन्दूक के सामने फ़र्श पर बैठे कुछ कागज-पत्तर उलट रहे हैं। उनकी बग़ल में एक कुर्सी पर उनकी जंत्री खुली रखी थी। मोटे धूमिल कागज के बारह पन्ने अलग महीने की तारीखों के अनुसार चौकोरों में विभाजित थे और हर चौकोर में सन्तों के चित्र बने थे। नाना इस जंत्री को बड़ी हिफ़ाजत से रखते थे। जिस दिन वह मुझपर अधिक मेहरबान होते थे, उसी दिन उसे छूने की इजाज़त मिलती थी। उन आकर्षक छोटे-छोटे चित्रों से मुझे भी बड़ा स्नेह था, क्योंकि उनकी जीवनियाँ मैं कहानी के रूप में सुन चुका था। किरिक और उनकी उलीता, शहीद वर्वारा, पंतेलैमोन तथा अन्यों के जीवन वृत्तान्त से मैं खूब परिचित था। खास कर ईश्वर-भक्त अलेक्सेई के त्यागमय जीवन और उसके बारे में नानी के भावमय गीतों का मेरे ऊपर गहरा प्रभाव पड़ा था। इन सैकड़ों सन्तों को देखकर हृदय को बड़ी सांत्वना मिलती थी। ढाढ़स होता था कि संसार में त्यागियों का कभी अभाव नहीं रहा है।

मैंने निश्चय किया कि नाना की इस जंत्री को काट डालूँगा। जब वह एक नीला-सा कागज़, जिसपर उक़ाब का चित्र बना हुआ था, पढ़ने के लिए खिड़की के पास गये, तो मैं जंत्री लेकर नीचे भागा। वहाँ नानी की दराज से कैंची लेकर मैं अलावघर पर चढ़ गया और लगा सन्तों के सिर काटने। पहली पान्त का सिर धड़ से उड़ा लेने के बाद मुझे अफ़सोस होने लगा। मैं अब सिर छोड़कर पूरे चौकोर को काटने लगा। दूसरी पान्त की कटाई जारी ही थी कि नाना कमरे में दाखिल हुए। अलावघर की पैड़ी पर खड़े होकर उन्होंने पूछा :

"तू किससे पूछकर जंत्री उठा लाया है?"

अचानक उनकी दृष्टि कटे हुए चौकोर चित्रों पर पड़ी, जो चबूतरे पर बिखरे हुए थे। उन्होंने उन्हें उठाया, चेहरे के पास ले गये, फेंका, फिर से उठाया, उनके जबड़े भिंच गये, दाढ़ी हिलने लगी और उन्होंने इतने ज़ोर का फुँकारा छोड़ा कि सारे

कागज बिखर गये।

मेरी टाँग पकड़कर नीचे खींचते हुए वह गरजे :

"यह क्या कर डाला तूने?"

मैं हवा में फेंका गया, पर नानी ने मुझे सँभाल लिया।

"आज मैं तुझे जान से मार डालूँगा," कहते हुए नाना मेरे तथा नानी के ऊपर घूंसे बरसाने लगे।

इतने में माँ आ गयी और मुझे कोने में करके खुद सामने खड़ी हो गयी। नाना के मुक्कों को रोकते हुए चिल्लाकर बोली :

"दिमाग बेच दिया है क्या? ज़रा होश से काम लो।"

नाना खिड़की के पासवाली बेंच पर ढह पड़े और छाती पीटते हुए बोले :

"तुम लोग सत्यानाश कर डालोगे मेरा। तुम सभी मेरे बैरी हो गये हो।"

माँ ने शान्त स्वर में कहा :

"शर्म नहीं आती तुम्हें? तुम यह सब क्या नाटक करते रहते हो? छिः!"

नाना फिर गरजने और पैरों से बेंच पीटने लगे। उनकी दोनों आँखें बन्द थीं और दाढ़ी की नोक हास्यास्पद रूप से छत की ओर उठी हुई थी। मुझे ऐसा लगा कि वह माँ के सामने पागलों जैसा व्यवहार करने के कारण सचमुच लज्जित हैं और इसी लिए उनकी आँखें शर्म से बन्द हैं।

माँ ने बिखरे कागजों को बटोरते हुए कहा :

"मैं इन टुकड़ों को कपड़े पर चिपका दूँगी। जंत्री पहले से भी बेहतर और मजबूत हो जायेगी। बिल्कुल फट तो गयी है।"

वह नाना को उसी स्वर में समझा रही थी, जिस स्वर में पढ़ाई के वक़्त मुझे कठिन पाठ समझाया करती थी। अकस्मात् नाना उठ खड़े हुए, उन्होंने सावधानी से अपनी कमीज और वास्कट ठीक की तथा गला साफ करते हुए बोले :

"ठीक है, इन्हें आज ही चिपका देना। मैं बाकी पन्ने भी दे जाऊँगा..."

वह बाहर चले गये। जाने के पहले दरवाज़े पर रुककर मेरी ओर टेढ़ी उँगली दिखाते हुए बोले :

"इसकी खूब अच्छी तरह पिटाई होनी चाहिए।"

माँ ने कहा :

"ठीक बात है।" और मेरी ओर मुड़कर बोली :

"क्यों रे, तुझे यह बदमाशी कहाँ से सूझी?"

"मैंने जानकर किया है। अगर फिर नानी को मारेंगे, तो अब की मैं उनकी दाढ़ी ही कतर डालूँगा।"

नानी अपना फटा ब्लाउज उतार रही थी। मेरी बात सुनकर वह सिर हिलाती हुई बोली :

"क्यों रे, इसी तरह ज़बान बन्द रखना सीखा है तूने।" और फ़र्श पर थूककर कहा, "भगवान करे तेरी जीभ फूलकर तालू से सट जाये, जिससे तेरा बकवास करना ही बन्द हो जाये।"

माँ ने उसे ध्यान से देखा, रसोई में चक्कर लगाया और फिर मुझसे पूछा :

"नानी को कब मारा था नाना ने?"

नानी झट टोककर बोली :

"छिः वर्वारा! तू लाज धोकर पी गयी है। लड़के से ऐसी बातें पूछी जाती हैं? तुम्हें इन बातों में पड़ने से मतलब?"

माँ ने स्नेहपूर्वक उसे गले लगाते हुए कहा :

"अम्मा, मेरी प्यारी अम्मा..."

नानी रुँधे गले से बोली :

"छोड़ मुझे, बड़ी आयी अम्मा वाली!"

दोनों मौन होकर कुछ क्षण एक दूसरे को देखती रहीं और इसके बाद अलग-अलग हो गयीं : दरवाज़े के पार नाना चले जा रहे थे।

माँ जिस दिन आयी थी, उसी दिन से फौजवाले की मनचली बीवी से उसकी खूब पटने लगी थी। प्रायः हर रोज़ शाम को वह उसके यहाँ जाया करती थी, वहाँ बेतलेंग वालों के यहाँ से भी लोगों का आना-जाना हुआ करता था-सुन्दर जवान लड़कियाँ, छैले अफसर आदि। मेरे नाना को यह पसन्द नहीं था और अक्सर रात के भोजन के समय चम्मच से उधर इशारा करते हुए वह कहते थे :

"देख! आज फिर महफ़िल जमी हुई है। अब रात भर सोना हराम हुआ।"

शीघ्र ही उन्होंने किरायेदारों को नोटिस दे दिया। जब वे चले गये, तो वह दो गाड़ियों में तरह-तरह की कुर्सियाँ और मेजें ले आये और उन्हें खाली कमरों में भरकर ताला लगा दिया। हम लोगों से बोले :

"इन कमरों में कोई किरायेदार नहीं बसायेंगे। अब हम खुद ही दावत किया करेंगे।"

त्योहारों पर मेहमानों का जुटाव होने लगा। आनेवालों में नानी की बहन मात्र्योना इवानोव्ना भी थी। वह धोबिन थी। खूब लम्बी नाकवाली यह बुढ़िया बड़ी बक़वादी थी। वह धारीदार रेशमी पोशाक पहनकर और सिर पर सुनहरे रंग का रुमाल बाँधकर आती थी। उसके साथ उसके दोनों बेटे भी आया करते थे। एक का नाम था वासीली। वह नक्शानवीस था। बड़े-बड़े बाल और सलेटी रंग की पोशाकवाला यह नौजवान नेकदिल और खुशमिज़ाज था। छोटे भाई का नाम वीक्तोर था। उसका सिर घोड़े जैसा था और पतले चेहरे पर झाइयाँ थीं। ड्योढ़ी में गैलोश उतारते समय वह सर्कस के मसखरों की तरह चिल्लाता था :

"अन्द्रेई-पापा, अन्द्रेई-पापा..."

मुझे उसके ढँग पर आश्चर्य होता था और डर भी लगता था। याकोव मामा अपनी गिटार लेकर आते। उनके साथ गंजे सिर और चुप्पे स्वभाव का एक काना घड़ीसाज आता, जो अपने लम्बे काले कोट के कारण पादरी जैसा लगता था। वह हमेशा एक कोने में बैठता था। वहीं गर्दन एक ओर झुकाये और सफाचट चिबुक को उँगली पर टिकाये मुस्कराया करता था। उसका रंग साँवला था और कानी आँख सबको एकटक ताका करती थी। वह बहुत कम बोलता और कोई बात होती, तो कहता :

"कोई हर्ज नहीं, कोई हर्ज़ नहीं-तकलीफ करने की ज़रूरत नहीं है!.."

जब मैंने उसे पहले-पहल देखा, तो बरबस मुझे बहुत दिन पहले का एक दृश्य याद हो आया, जब हम लोग नोवाया सड़क वाले मकान में रहते थे। एक दिन सड़क पर ढोल-नगाड़ों की भयानक आवाज़ सुनायी पड़ने लगी और जेल से एक ऊँची, काली गाड़ी निकलकर चौक की तरफ चली। गाड़ी को चारों ओर से सिपाहियों तथा जनता की बड़ी भीड़ ने घेर रखा था। उसमें एक बेंच पर एक आदमी, जिसकी खोपड़ी गोल टोपी से ढँकी हुई थी और हाथ सांकलों से बँधे थे, बैठा हुआ था। जब उसकी देह हिलती, तो सांकलें खनखना उठतीं। उसके गले में एक काली तख़्ती लटक रही थी, जिसपर बड़े-बड़े सफेद अक्षरों में कुछ लिखा हुआ था। उसका सिर झुका हुआ था, मानो तख्ती के लेख को पढ़ रहा हो।

माँ ने घड़ीसाज से मेरा परिचय कराते हुए कहा :

"यह मेरा बेटा है।" पर मैं डर से ठिठक गया और हाथ मिलाने के बदले मैंने उसे पीठ के पीछे छिपा लिया।

वह बोला :

"तक़लीफ करने की ज़रूरत नहीं है।" बोलते वक़्त उसके मुँह का एक कोना डरावने ढँग से दाहिने कान की तरफ फैल गया। मेरी पेटी पकड़कर उसने फुर्ती से मुझे अपनी ओर खींच लिया और ऐसा तेज़ झटका दिया कि मैं लट्टू की तरह घूम गया। मेरा कमरबन्द छोड़ते हुए उसने प्रशंसासूचक स्वर में कहा :

"अच्छा लड़का है..."

मैं चमड़े की आराम-कुर्सी में जमकर बैठ गया, जो इतनी बड़ी थी कि आदमी उसमें मजे से सो सकता था। नाना हमेशा डींग मारा करते थे कि पहले यह आराम-कुर्सी जार्जिया के एक राजकुमार की होती थी। उस कोने में बैठकर मैं महफ़िल में रंग लाने की बड़ों की कोशिशें देखा करता था। मैं घड़ीसाज को भी निहारा करता था। वह बड़े रहस्यमय ढँग से अपने चेहरे का भाव परिवर्तित किया करता था। उसका चेहरा घिनौना और अजीब-सा था, जो निरन्तर पिघलकर बहता-सा ज्ञात होता था। जब वह मुस्कराता, तो उसके मोटे होंठ दाहिनी तरफ खिसक जाते और छोटी-सी नाक यों डोलने लगती, जैसे चाशनी में पकौड़ी। उसके बड़े-बड़े कान भी, जो सदा

खड़े रहते थे, डोलना शुरू कर देते। कभी वे उसकी सही-सलामत आँख की भौंह के साथ तनकर ऊपर चले जाते और कभी लटककर जबड़े की हड्डी से सट जाते। मुझे ऐसा लगता था कि चाहने पर यह आदमी अपने कानों से हथेलियों की भाँति अपनी नाक को ढक सकता है। कभी-कभी वह निःश्वास छोड़कर अपनी छोटी-सी काली जीभ बाहर निकालता, जो खरल की लोढ़ी की तरह गोल थी। उसे अपने मोटे, मोमजामे जैसे होंठों के चारों ओर फेरकर वह अन्दर वापस कर लेता था। मुझे उसकी इन क्रियाओं से हँसी से अधिक विस्मय हुआ करता था। इसी से मैं उसे एकटक देखता रह जाता।

मेहमान लोग चाय में 'रम' मिलाकर पीते थे, जिसकी महक जले प्याज जैसी होती थी। वे नानी की हलकी शराबों का भी मजा लेते जाते थे, जो सुनहले, हरे कोलतार जैसे काले रंगों की होती थीं। इसके अलावा दही और खशखशवाले शहद के पुए चलते थे। वे खाते-पीते, माथे से पसीना पोंछते और साथ-साथ नानी की रसोई की तारीफ़ करते जाते। जब पेट भर जाता, तो सब कुर्सी पर तन जाते-फूले हुए, चेहरे लाल। इसके बाद अलसाये-से याकोव मामा से गिटार पर कुछ सुनाने की फरमाइश होती।

वह झुककर तारों पर हाथ फेरना आरम्भ करते और साथ ही अप्रिय आवाज़ में गीत गुनगुनाना शुरू करते :

जैसे-तैसे जी लेते थे
रो-गरा के खा-पी लेते थे
हल्ला-गुल्ला भरपूर था
पर असल पहुँच से दूर था
कि आ-ा-ा-ाई-ई-ई-ई कजानवाली!
नये मर्द की खोज में मतवाली!

मुझे तो ऐसा लगता मानो इस गीत में उदासी का सागर लहरा रहा हो। मेरा मन व्यथा से भर जाता। नानी भी कहती :

"याकोव, कोई और गीत गाओ, कोई असली गीत।"

फिर अपनी बहन की ओर मुड़कर कह उठती :

"मात्र्योना, तुझे याद है न पहले जमाने के वे रसीले गीत?"

धोबिन तपाक से अपनी सरसराती पोशाक को ठीक करते हुए कहती :

"आजकल नये-नये गीत चलते है..."

मामा अधमुँदी आँखों से नानी की तरफ ताक़ते मानो वह दूर, बहुत दूर हो और गिटार के तारों पर अपनी निराशाभरी धुन बजाते जाते। उनका भद्दा-सा गीत जारी रहता।

ऐसे ही एक शाम को नाना घड़ीसाज के साथ किसी गुप्त मंत्रणा में लीन थे। बीच-बीच में वह उँगलियों से कोई चीज़ दिखाते जाते थे। घड़ीसाज ने माँ की दिशा में ताककर सिर हिलाया। उसके तरल चेहरे के भाव विलक्षण ढँग से परिवर्तित हो रहे थे।

माँ सदा की तरह सेर्गेयेव बँधुओं के बीच बैठी थी। वह शान्त, गम्भीर स्वर में वासीली से कुछ कह रही थी, जिसने निःश्वास छोड़कर जवाब दिया :

"हुँ! इसके बारे में सोचना पड़ेगा..."

वीक्तोर के चेहरे पर सन्तुष्ट मुस्कान फैल गयी और पाँव हिलाते हुए उसने सहसा पतली आवाज़ में गाना शुरू किया :

"अन्द्रेई पापा, अन्द्रेई पापा..."

सब लोग बातचीत बन्द कर उसकी ओर देखने लगे। उसकी माँ ने बड़े अभिमान के साथ लोगों को बताया :

'यह गीत उसने ठेठर* में सीखा है। वहाँ गाया जाता है...'

इस तरह की दो-तीन दावतों की मुझे खूब याद है, क्योंकि उनमें शाम कटनी मुश्किल हो गयी थी-इतनी उदास और निर्जीव थीं वे। इसके बाद एक इतवार को वही घड़ीसाज गिरजाघर की प्रार्थना खत्म होने के बाद दोपहर को हमारे पास आया। मैं माँ के कमरे में बैठा सिलाई में उसकी मदद कर रहा था। वह क़मख़ाब के एक कपड़े में जड़े नकली मोतियों को खोल रही थी। यक़ायक़ दरवाज़ा खुला और नानी ने सिर आगे बढ़ाकर घबराये स्वर में कहा :

"वर्वारा, वह आया है!" दूसरे ही क्षण सिर गायब हो गया।

माँ न चौंकी, न हिली। एक मिनट के बाद दरवाज़ा फिर खुला और नाना आकर बोले :

"वर्वारा, ज़रा कपड़े पहनकर बाहर आओ।"

माँ ने उनकी ओर देखने या उठने की कोशिश किये बिना पूछा :

"कहाँ?"

"पहले ही बहस मत करने लगो। चुपचाप चली आओ, भगवान तुम्हें सुखी करेगा। वह बहुत बढ़िया कारीगर है और स्वभाव का भी बड़ा भला है। वह हर तरह से अलेक्सेई का बाप होने योग्य..."

नाना असाधारण तपाक के साथ बोल रहे थे और बोलते समय हाथों से जाँघ पर ताल देते जा रहे थे। उनकी कोहनियाँ इस ढँग से काँप रही थीं, मानो हाथ आगे बढ़ना चाहते थे, पर वह ज़ोर लगाकर उन्हें रोके हुए हों।

माँ ने शान्त स्वर में कहा :

"मैं कह चुकी हूँ : यह हरगिज़, हरगिज़ नहीं होगा..."

---

*ठठेर-थियेटर का गंवारू अपभ्रंश।

नाना तेज़ी से उसकी ओर बढ़े। उनके हाथ आगे की ओर थे, जैसा अंधा मार्ग टटोल रहा हो। गुस्से से काँपते हुए वह गरजकर बोले :

"चलो, नहीं तो झोंटा पकड़कर ले चलूँगा..."

"क्या कहा, झोंटा पकड़कर ले जाइयेगा?"

माँ उठ खड़ी हुई-चेहरे का रंग फक और आँखों में चुनौती। अचानक वह अपने कपड़े उतारकर ज़मीन पर फेंकने लगी। जब तन पर केवल शमीज रह गयी, तो वह नाना से बोली :

"लो, अब घसीटकर ले चलो मुझे। कसम है तुम्हें।"

नाना दाँत निपोड़कर उसके मुँह के सामने मुट्ठियाँ भाजने लगे। बोले :

"वर्वारा! कपड़े पहन लो!"

माँ उन्हें ढकेलकर दरवाज़े की ओर बढ़ी और बोली :

"चलो, मैं चल रही हूँ।"

नाना सर्प की तरह फुँकराते हुए बोले :

"शाप दूँगा।"

"परवाह नहीं।"

वह दरवाज़ा खोलकर निकलने को हुई, पर नाना ने शमीज का कोना पकड़ लिया। वह घुटनों के बल गिर पड़े और फुसफुसाये :

"वर्वारा! शैतान की बच्ची! मुझे सब के सामने जलील मत कर!" और धीरे-धीरे दुःखभरे ढँग से ठुनकने लगे,"वर्वारा की माँ! ओ माँ!"

नानी ने पहले ही दौड़कर रास्ता रोक लिया था। जिस तरह मुर्गों को दरबे में हाँकते हैं, वैसे ही वह माँ को अन्दर हटा रही थी। वह बड़बड़ाती जा रही थी :

"वर्वारा! पागल हो गयी है क्या तू? जा घर में, बेशर्म कहीं की!"

माँ को कमरे में ढकेलकर उसने दरवाज़े की चटखनी चढ़ा दी और तब नाना की ओर मुड़ी। एक हाथ से सहारा देकर उसने उन्हें ऊपर उठाया और दूसरा हाथ नचाते हुए बोली :

"बुड्ढा पागल। दिमाग खराब हो गया है तेरा।"

कपड़े की गुड़िया की तरह उसने उन्हें सोफे पर बैठा दिया। उनका सिर गुड़िया की तरह लचक रहा था, होंठ खुले थे।

माँ को डाँटकर नानी बोली :

"पहन अपने कपड़े।"

माँ गिरे कपड़ों को बटोरते हुए बोली :

"मैं उसके पास नहीं जाऊँगी, नहीं जाऊँगी! जान लो तुम लोग!"

नानी ने मुझे सोफे से नीचे ठेलते हुए कहा :

"दौड़कर एक गिलास पानी ले आ!"

वह फुसफुसाकर बोली, पर स्वर में आदेश था, जिसकी अवहेलना करना असम्भव था। मैं ड्योढ़ी में दौड़ा। बाहरवाले कमरे में कोई चहलकदमी कर रहा था। उधर माँ की आवाज़ कान में आ रही थी। वह कह रही थी :

"कल मैं यहाँ से चली जाऊँगी।"

मैं रसोईघर में जाकर खिड़की के पास बैठ गया, स्वप्न में खोया-सा।

नाना काँखते-कराहते रहे और अस्फुट स्वर में नानी का बड़बड़ाना जारी था। उसके बाद दरवाज़े के ज़ोरों से बन्द होने की आवाज़ आयी और फिर भयानक सन्नाटा छा गया। यक़ायक़ याद आया कि मुझे पानी लेने के लिए भेजा गया है। झट से एक बर्तन में पानी भरकर मैं ड्योढ़ी की तरफ चला। सामनेवाले दरवाज़े से घड़ीसाज साहब निकले जा रहे थे। सिर उनका झुका हुआ था, हाथों से अपनी बालदार टोपी सहला रहे थे और गले से भर्रायी आवाज़ निकल रही थी। पीछे-पीछे नानी थी। दोनों हाथ सामने बाँधे, झुककर उसे विदाई देती हुई वह शान्त स्वर में बोली :

"आप खुद ही समझ सकते हैं-जबर्दस्ती तो किसी के दिल में आपके लिए जगह बनायी नहीं जा सकती!"

वह चौखट के पास लड़खड़ाया, फिर आँगन के पार हो गया। नानी दरवाज़े पर खड़ी होकर सलीब का चिह्न बनाने लगी। उसकी देह हिल रही थी-पता नहीं सिसकियाँ भरने के कारण या हँसी से।

मैं दौड़कर उसके पास गया और पूछा : "क्या बात है?"

उसने मेरे हाथ से लपककर पानी का बर्तन ले लिया, जिससे पानी छलककर मेरे पाँव पर गिर पड़ा।

"कहाँ चला गया था तू पानी लाने? जल्दी से दरवाज़ा बन्द कर दे," नानी बोली!

वह माँ के कमरे में लौट गयी और मैं रसोईघर में। वहाँ से उनके कराहने, निःश्वास छोड़ने और फुसफुसाने की आवाज़ें सुनायी पड़ रही थीं, मानो दोनों किसी भारी चीज़ को कमरे में खिसका रही हों।

आज मौसम बड़ा सुहाना था। चारों ओर जाड़े की घाम फैली हुई थी। उसकी चमकीली किरणें दोनों खिड़कियों के बर्फ़ जमे शीशे से कमरे के अन्दर झाँक रही थी। मेज पर खाना परोसा हुआ था। जस्ते की तस्तरियाँ किरणों के प्रकाश में चमक रही थी। शीशे की सुराही में सुनहले रंग का क्वास भरा था। दूसरी में नाना की वोद्का रखी थी, जिसमें स्वाद के लिए मसाले की सुगन्धयुत्त हरी पत्तियां डली थी। खिड़की के शीशे पर जमी बर्फ़ एक जगह गोलाकार पिघली हुई थी। उसके पार घरों की छतों पर बिछी बर्फ़ के चादर सूरज की रोशनी में जगमगा रही थी। पक्षियों के दरबे और चाहरदीवारी के खम्भों के ऊपर भी उसी तरह बर्फ़ की टोपियाँ जगमगा रही थी। खिड़की पर पिंजड़ों में मेरी पालतू चिड़िया धूप में खेल रही थी। कमरे में 'शैफिंचों' और 'बुलफिचों' का कलरव और 'गोल्डफिंच' की मीठी तान गूँज रही थी।

लेकिन शीत की सुनहली धूप और चिड़ियों के गान में मुझे तनिक भी रस नहीं आ रहा था। मन आज इस आनन्द का स्वागत करने को तैयार न था। जी में आया कि पिंजड़ों के द्वार खोल दूँ और कर दूँ पंछियों को आज़ाद। मैं पिंजड़ों को उतारने लगा। इतने में नानी दौड़ी हुई कमरे में आयी। उसे अचानक याद आया था कि अलावघर में केक गरमाने के लिए रख आयी थी। वह चिल्लाकर दौड़ी :

"सत्यानाश! मैं भी कैसी भुलक्कड़ हूँ!"

उसने अलावघर में से केक निकाल लिया। उसकी पपड़ी जलकर काली हो गयी थी। उसे हाथ से थपथपाते हुए उसने गुस्से से थूका :

"हो गया ख़त्म! अब खाओ गरम-गरम केक! सब शैतान हैं!.. सत्यानाश हो तुम्हारा!.. उल्लू कहीं का! तू वहाँ बैठा क्या ताक रहा है टुकर-टुकर!.. सबको उठा कर पटक दूँ।"

वह रोने लगी। केक की पपड़ी के टुकड़ों को उलटती-पुलटती, उँगलियों से ठोंकती, वह उन्हें आँसुओं से तर कर रही थी।

माँ और नाना अन्दर आये। नानी ने जले हुए केक को इतने ज़ोर से मेज पर दे मारा कि रकाबियाँ झनझना उठीं। बोली :

"देखो! तुमलोगों के कारण यह क्या हो गया है। सत्यानाश हो तुम्हारा!"

माँ अब स्वस्थ और प्रसन्नचित्त दिख रही थी। वह नानी को गले से लगाकर शान्त करने लगी। नाना थके-हारे से लग रहे थे। वह मेज पर बैठ गये, गमछा गले में लपेट लिया और सूरज की किरणों के कारण सूजी आँखों को सिकोड़ते हुए अस्फुट स्वर में बोले :

"छोड़ो भी! बहुत खाया है केक हम लोगों ने। ईश्वर आजकल कंजूस हो गया है। वर्षों का भुगतान मिनटों में चाहता है और सूद नदारद। वर्वारा! चलो इधर आकर बैठो... छोड़ो इन बातों को।"

ऐसा लगा कि उन्हें खब्त सवार हो गया है। जितनी देर तक खाना चलता रहा वह ईश्वर, अधर्मी अहाब और पिता होने की तकलीफों का बखान करते रहे। अन्त में नानी ने बिगड़कर उन्हें टोका :

"ओह! क्या बक-बक लगाये हुए हो तुम! चुपचाप खाओ भी।"

माँ हँसने लगी। उसकी उज्ज्वल आँखों में खुशी की झलक थी। मुझे हलकी थपकी देकर वह बोली :

"डर गया था न तू?"

नहीं, तब तो मैं बहुत नहीं डरा था, पर अब मुझे कुछ अजीब-सा लग रहा था, माज़रा समझ में नहीं आ रहा था।

पर्व-त्योहारों पर सभी खूब डटकर भोजन करते थे और बड़ी देर तक। आज भी वही हुआ। यह विश्वास करना कठिन था कि यही लोग केवल आधा घण्टा पहले

एक दूसरे पर गरज-बरस रहे थे, हाथापाई करने को तैयार थे, सिसक रहे थे और आँसू बहा रहे थे। न यही विश्वास होता था कि इन्होंने यह कुछ गम्भीरतापूर्वक किया था, कि इनके लिए रोना मुश्किल है। क्षण भर में घर में तूफ़ान मच जाता और क्षण में ही सब ऐसे शान्त हो जाते, मानो कुछ हुआ ही न हो। यह उस घर की आम कैफ़ियत थी। मैं भी उसका आदी हो गया था। पहले की तरह अब मैं इस सब से व्यथित नहीं होता था।

बहुत दिनों बाद मैंने महसूस किया कि रूसी अपनी ग़रीबी और नीरसता के कारण ऐसा करते हैं। व्यथा और रंज उनके मनबहलाव के जरिये हैं। बदनसीबी बच्चों की तरह उनका खिलौना है, जिससे अपनी बदकिस्मती पर उन्हें कम ही शर्म आती है।

जब जीवन की धारा एकरस बहती है, तो विपत्ति भी मन बहलाने का साधन बन जाती है। घर में आग लग जाना भी नवीनता का रस प्रदान करता है। कहावत भी है : "सादे चेहरे पर मस्सा भी अलंकार होता है।"

11

इस घटना के बाद परिवार में माँ की प्रतिष्ठा बढ़ गयी। वही घर की मुखिया बन गयी और नाना अपना स्थान खोकर शान्त और अलग-थलग हो गये, जो कि उनके चरित्र के प्रतिकूल था।

वह अब घर से बहुत कम बाहर निकलते थे और ज़्यादातर कोठेवाले कमरे में पड़े एक रहस्यमय पुस्तक पढ़ा करते थे, जिसका शीर्षक था-मेरे पिताजी की कुछ टिप्पणियाँ। इस क़िताब को वह अपने खास सन्दूक में ताला लगाकर बन्द रखते थे। मैंने कई बार देखा कि उसे निकालने से पहले वह अपने हाथ धो लेते थे। क़िताब छोटे आकार की, मोटी-सी थी, चमड़े की लाल जिल्दवालीं मुखपृष्ठ हल्के नीले रंग का था। उसपर काली स्याही से, जिसका रंग मिट चला था, लिखा था-मान्यवर वासीली काशीरिन को सादर एवं सप्रेम। उसके नीचे किसी के अपरिचित हस्ताक्षर थे, जिसके अक्षर पंख फैलाकर उड़ते पक्षियों जैसे ज्ञात होते थे। नाना चमड़े की मोटी जिल्द उलटने के बाद बड़ी सावधानी से रुपहली कमानी का अपना चश्मा चढ़ाते और देर तक उक्त लेख पर नज़र गड़ाये रहते। इस बीच कई बार नाक सिकोड़कर वह चश्मे को ठीक करते। मैंने उनसे बहुत बार इस क़िताब के बारे में पूछा, पर हर बार वह यही जवाब देते :

"यह सब अभी तेरे जानने की चीज़ नहीं है। थोड़े दिन और ठहर जा-जब मैं

मरूँगा, तो यह क़िताब और अपना फ़र का कोट तुझे दे जाऊँगा।"

अब वह माँ से कम बोलते थे और बोलते भी थे तो अदब से। जब माँ कुछ कहती थी, तो वह कान लगाकर उसकी बात सुनते थे और इस बीच प्योत्र काका की तरह कुछ बड़बड़ाना, हाथ नचाना और आँखें झपकाना जारी रखते और फिर हाथ झटककर कहते : "ठीक है! जैसा चाहती हो, वैसा करो..."

उनके सन्दूकों में अनेक अद्भुत पोशाकें भरी हुई थीं-क़मख़ाब के घाघरे, साटिन की वास्कटें, सोने की तारकशी के कपड़े, बिना बाँह के कुरते, जिन्हें 'साराफान' कहते हैं, मोतियों के काम की पगड़ीनुमा टोपियाँ, चटकीले रंगों के रुमाल और गले के छोटे दुपट्टे, मोटे दानों के मोर्दोवी हार और रंगबिरँगे नगों के मनके। इन कपड़ों को लाकर वह माँ के कमरे में मेज और कुर्सियों पर सजा देते। माँ उनकी तारीफ़ करना शुरू कर देती, तो वह कहते :

"हमारे ज़माने में लोग बड़ी सज-धज से रहा करते थे। अब तो वह दिखायी नहीं पड़ता। उस वक़्त बेशक़ीमती कपड़े पहनने का रिवाज था। पर साथ ही रहन-सहन सादा था और आपस में आज से ज्यादा मेल-जोल भी रहा करता था। अब वह ज़माना लौटकर आने को नहीं है... पहनकर देखो इन्हें..."

एक दिन माँ बगल के कमरे में जाकर सुनहरे काम वाला गहरे नीले रंग का साराफान और मोतियों से जड़ी पगड़ीनुमा टोपी पहनकर आयी। नाना को बाअदब सलाम करते हुए उसने पूछा :

"पसन्द आया हुज़ूर को?"

नाना मुँह बाकर माँ को देखने लगे। उनका चेहरा गर्व से चमक उठा और माँ को चारों तरफ से निहारकर कहने लगे :

"गजब है वर्वारा! काश तू किसी अमीर घर में पैदा हुई होती और नज़दीक कोई कद्रदान होता..."

घर के आगे वाले दोनों कमरों पर अब माँ का अधिकार था। वहाँ वह अक्सर अपने मेहमानों का स्वागत किया करती थी। आगंतुकों में अधिकतर दोनों मक्सिमोव भाई, प्योत्र नाम का एक विशालकाय खूबसूरत फौज़ी अफ़सर और येव्गेनी नामक उसका भाई रहा करते थे। अफसर की दाढ़ी खूब बड़ी और सुनहरी थी; आँखें नीली थी। बूढ़े आदमी के गंजे सिर पर थूकने के कारण इसी अफसर के सामने नाना ने मेरी मरम्मत की थी। येव्गेनी भी लम्बा था, पर उसका चेहरा पीला था और टाँगें पतली थी। उसकी छोटी-सी नुकीली, काली दाढ़ी थी। उसकी बड़ी-बड़ी आँखें काले आलूबुखारों जैसी थी। वह सदा हरी वर्दी पहना रहता था, जिसमें सुनहले बटन लगे हुए थे। कम चौड़े कन्धों पर सुनहरा फीता टँका हुआ था। उसके लम्बे घुँघराले बाल ऊँचे ललाट पर लटक आया करते थे। वह उन्हें झटककर ऊपर फेंक दिया करता था। साथ ही वह इस तरह मुस्कराया करता था मानो सबके ऊपर कृपा का कण

बिखेर रहा है। अपनी फटी-सी आवाज़ में वह सदा कुछ न कुछ बोलता ही रहता था। उसका तकिया कलाम था :

"मुझसे पूछते हो, तो मेरा दृष्टिकोण यह है..."

माँ आँखों को आधा मूँदकर उसकी बातों को सुनती और अक्सर बीच में ही टोककर कह बैठती :

"येव्गेनी वासील्येविच! क्षमा कीजियेगा, पर अभी आप बच्चे हैं..."

"बिल्कुल ठीक... अभी बच्चा ही है," विशालकाय अफ़सर अपनी बात पर ज़ोर देने के लिए जाँघ पर हाथ पटकता हुआ झट बोल उठता।

बड़े दिनों की छुट्टियाँ ऐसी ही रंगरलियों में बीतीं। लगभग हर रोज़ शाम को माँ और उसके मित्र रंग-बिरँगी पोशाकें पहनकर लोगों से मिलने-मिलाने जाया करते थे। इन अवसरों पर माँ की पोशाक सबसे शानदार हुआ करती थी। इस मस्त टोली के फाटक से बाहर होते ही, घर भयानक सन्नाटे में डूब जाता मानो धरती में समा गया हो। नानी कलहंस की तरह कमरों में चक्कर काटने और सामानों को झाड़ने-बुहारने में लग जाती और नाना अलावघर की गर्म टाइलों से पीठ सेंकते हुए अपने आप से कहते :

"ठीक है, गाड़ी जैसे चलती है चलने दो। यह भी देख ही लें कि क्या हाथ लगता है इससे..."

बड़े दिनों की छुट्टियों के बाद माँ ने मेरा और मिख़ाईल मामा के बेटे साशा का नाम स्कूल में लिखा दिया। साशा के बाप ने दूसरी शादी कर ली थी और नयी माँ ने आते ही साशा के साथ बुरा सुलूक करना आरम्भ कर दिया था। वह उसे बुरी तरह पीटा करती थी। अन्त में नानी ने नाना से कहकर साशा को अपने पास बुला लिया। हम दोनों एक महीने तक साथ-साथ स्कूल जाते रहे। इस अर्से में हमें जो कुछ सिखाया गया, उसमें से केवल एक बात मुझे याद है। वह यह है कि नाम पूछने पर केवल 'पेशकोव' कहकर जवाब देना काफी नहीं है; कहना चाहिए : "मेरा नाम है पेशकोव।"

दूसरे, यह सीखा कि शिक्षक से यह नहीं कहना चाहिए :

"देखिए महाशय! इस तरह डाटिए मत। मैं आपसे नहीं डरता..."

मुझे स्कूल बिल्कुल पसन्द नहीं आया। इसके विपरीत मेरे ममेरे भाई की तबियत वहाँ खूब लगने लगी। उसके वहाँ बहुत-से दोस्त निकल आये। लेकिन एक दिन पढ़ाई के वक़्त उसे नींद आ गयी और सपने में डरावने स्वर में चिल्ला उठा :

"नहीं-नहीं, मैं नहीं करूँगा..."

नींद खुलते ही उसने कमरे से बाहर जाने की इजाजत माँगी, जिसपर लड़कों ने उसे बहुत चिढ़ाया। दूसरे दिन जब हम लोग स्कूल चले, तो सेन्नाया चौक वाले सूखे नाले पर पहुँचकर वह खड़ा हो गया और मुझसे बोला :

"तू जा, मैं नहीं जाता। आज मैं घूमने जाऊँगा।"

उसने वहीं बर्फ़ में अपनी क़िताबें गाड़ दी और चल दिया। जनवरी का महीना था और धरतीतल धूप से जगमगा रहा था। मेरे ममेरे भाई को घूमने जाते देख मेरा भी मन ललचाया, पर इस ख्याल से कि माँ को दुःख न हो जी दबाकर स्कूल चला गया। स्वभावतः साशा की क़िताबों को बर्फ़ में से किसी ने निकाल लिया। अतः अगले दिन स्कूल न जाने का उसे असली बहाना मिल गया। तीसरे दिन नाना को मालूम हो गया कि वह स्कूल नहीं जाता।

हम दोनों का मुकदमा पेश हुआ। भोजन की मेज पर बैठकर नाना, नानी और माँ ने जिरह करनी शुरू की। साशा ने नाना के सवाल के जो अनूठे उत्तर दिये थे, वे मुझे याद हैं। नाना ने पूछा :

"तू स्कूल क्यों नहीं गया था?"

विनीत आँखों से नाना के साथ नज़र मिलाकर उसने जवाब दिया :

"मैं स्कूल का रास्ता भूल गया।"

"रास्ता भूल गया?"

"हाँ। मैं इधर से उधर भटकने लगा..."

"तू अलेक्सेई के पीछे-पीछे क्यों नहीं गया? उसे तो रास्ता याद था।"

"अलेक्सेई भी आँख से ओझल हो गया था।"

"अलेक्सेई भी ओझल हो गया था?"

"जी।"

"ऐसा क्यों कर हुआ?"

साशा ने एक क्षण सोचा और फिर निःश्वास छोड़कर उत्तर दिया :

"बर्फीली आँधी चलने लगी, इसलिए मुझे कुछ दिखाई नहीं दिया।"

सभी लोग हँस पड़े, क्योंकि उस दिन खुलकर धूप निकली थी-बादल-बदली का नामोनिशान न था। साशा के होंठों पर भी हल्की मुस्कान उठी, पर नाना ने दाँत निकालकर व्यंग्यपूर्ण स्वर में सवाल किया :

"तूने उसका हाथ या पेटी क्यों नहीं पकड़ ली?"

"हाथ पकड़ तो लिया था, पर आँधी ने अलग फेंक दिया।"

वह धीरे-धीरे और हताश स्वर में सवालों के उत्तर दे रहा था। वह बिल्कुल बेअक़्ल की तरह झूठ बोलता जा रहा था। मैं हैरान था... समझ में नहीं आ रहा था कि वह क्यों इतनी ढिढाई कर रहा है।

हम दोनों पर कसकर मार पड़ी और इसके बाद एक पेंशनयाफ्ता दमकलवाला हमें स्कूल पहुँचाने के लिए रखा गया, जिसका हाथ टेढ़ा था। उसका काम यह देखना था कि साशा ज्ञान-विज्ञान के पथ से भटक न जाये। लेकिन यह तरकीब व्यर्थ साबित हुई। अगले दिन जब हमलोग नाले पर पहुँचे तो मेरे ममेरे भाई ने पैरों से नमदे के

लम्बे जूते निकाल लिये और एक दाहिना और दूसरा बायी ओर फेंककर खुद केवल मोजे पहने चौक की ओर भागा। हमें पहुँचाने के लिए रखा गया बूढ़ा मुँह बाकर देखने लगा, फिर जूतों को उठाने दौड़ा। जूते खोजने के बाद डर के मारे मुझे लेकर वह घर लौट आया।

दिन भर नाना, माँ और नानी शहर में भगोड़े की खोज करते रहे। शाम को वह मठ के पास, चिरकोव की मधुशाला में मिला। वहाँ वह नाच दिखा रहा था। पकड़कर उसे घर लाया गया। घर पर आकर उसने चुप्पी साध ली-किसी सवाल का जवाब ही नहीं, न हाँ न हूँ। हताश लोगों ने उसे मारने-पीटने का ख़याल भी छोड़ दिया। अलावघरवाले चबूतरे पर मेरी बगल में लेटा हुआ पैर हवा में उछालता हुआ वह कहने लगा :

"न सौतेली माँ मुझे चाहती है, न पिताजी और न दादा। फिर मैं उन लोगों के साथ क्यों रहूँ? मुझे दादी से ज्योंही पता लग जायेगा कि डाकू लोग कहाँ रहते हैं, मैं उनके पास ही भाग जाऊँगा। तब तुम्हें भी अफ़सोस होगा। बोल, तू भी चलेगा मेरे साथ?"

उसके साथ भागना मेरे लिए असम्भव था। उस वक़्त मेरे मन में दूसरा ही मनसूबा था-मैं अफ़सर बनना चाहता था, जिसकी बड़ी-सी सुनहरी दाढ़ी हो और इस काम में सफलता प्राप्त करने के लिए पढ़ना आवश्यक था। मैंने साशा को अपना यह मनसूबा बता दिया। एक क्षण सोचने के बाद उसने सहमति प्रकट की। बोला :

"यह भी अच्छा है। तू अफ़सर हो जायेगा और मैं डाकुओं का सरदार! तू मुझे गिरफ़्तार करने निकलेगा और हम दोनों में से या तो कोई मारा जायेगा या गिरफ़्तार कर लिया जायेगा। तब मैं तुझे मारूँगा नहीं।"

"मैं भी तुझे नहीं मारूँगा।"

हम लोगों ने यही तय किया।

तब तक नानी भी आ गयी और अलावघर के ऊपर चढ़कर हम लोगों से बातें करने लगी। उसने दुलार से कहा :

"मेरे छौने! लाल! दुलारे।"

हम लोगों की हालत पर रहम करते-करते वह साशा की सौतेली माँ मोटी नादेज्दा मामी को, जो किसी भटियारखानेवाली की बेटी थी, बुरा-भला कहने लगी। इसके बाद। इसके बाद उसने सभी सौतेली माँओं और सौतेले बापों को कोसना आरम्भ किया। इसी पर उसने वीर साधु यूनुस की कहानी छेड़ दी, जिसने बाल्यावस्था में ही अपनी पापिन सौतेली माँ को भगवान के दरबार में दण्ड दिलाया था। उसका पिता बेलीओजेरो झील का मछुआ था, जिसने

स्यारन सी जोरू पायी थी, जो डायन सी लील गयी,
दारू का चसका दे-दे कर डाले होश-हवाश हवा
पिला-पिला के धुत्त किया, फिर मुँह में धर दी एक दवा
जिसने ऐसा असर किया, तत्काल कुम्भकर्णी छायी
पति को गहरी नींद सुला वह ताबूती डोंगी लायी
बाँध-बूँध डोंगी में डाला, खुद चप्पू को थाम लिया
आधी झील पार करके ही दम लेने का नाम लिया,
मँझधारे में जहाँ धार हारी-हारी सी बहती थी,
झुँझलायी-सी और झँवाई, झकमारी-सी बहती थी,
मानो बाट जोहती-सी हत्यारन की सहमी-सहमी...
सोच-सोचकर गड़ी-गड़ी बेहया नार की बेरहमी,
वहीं पापिनी डोंगी से उतरी कगार पर भार देकर
फिर डोंगी को उलट दिया खुद भी तो डुबकी खायी, पर
बेचारा पति अतल तले में जा डूबा जैसा पत्थर
अन्तरजामी के सिवाय जाना न किसी ने यह चक्कर,
पति बूड़ा पत्नी तेज़ी से तैर के लगी किनारे पर
पुक्का फाड़ लगी रोने रेती पर लोट-पोट होकर,
जिसको इतनी निमर्मता से मारा अपने हाथों आप
उसका ले-ले नाम लगी करने दिखावटी करुण विलाप,
सुनके लोग जुड़े, सबके सब करने लगे दिली अफ़सोस
काँच-कली के रण्डापे पर रोये प्राण मसोस-मसोस,
हा, तेरी यह भरी जवानी! यों न फूटनी थी तक़दीर!
हा, इतनी दारुण निकलीं तुझपर बिधना की स्याह लकीर!
लेकिन क्या करना है?-जीना-मरना लगा हुआ है साथ,
सुख-दुःख जीवन-मरण हमारे सब उस परमपिता के हाथ!

***

सब थे दुःखी; सिर्फ उसका सौतेला पूत इयोनुश्का
उसके धार-धार आँसू के भँवरजाल में आ न सका,
उसकी छाती पर धर के वह अपने नन्हे-नन्हे हाथ,
बोला उसके कानों में चुपके से धिक्कारों के साथ :
ऐ ठग्गल की पुतली, त्रिया-चरित्तर की चालों की खान,
दग़ाबाज ऐ निसाचरी, यह झूठ-मूठ का रोदन मत ठान,
घड़ों बहा ले भले, आँसुओं पर किस तरह करूँ विश्वास,

खुशियों-बासों उछल रहा जब तेरा दिल छाती के पास,
आओ, चलें करें फरियादें, सरग-अदालत के इजलास
परमपिता से और देवताओं से चलो करें अरदास
सान चढ़े छुरे को कोई फेंके आसमान की ओर,
जितनी भी ताक़त हो उसको लगा-भिड़ाकर सारा ज़ोर :
यदि हो मेरा दोष-छुरा मेरी गरदन पर अपना काम करे :
यदि हो तेरा दोष-छुरा फिर तेरा काम तमाम करे
धीरे से सौतेली अम्मां ज़रा सौतिया पूत की ओर मुड़ी
घिन्ना-कौंधी मुद्रा से घूरती दिखी कुछ कुढ़ी-कुढ़ी
फिर उठ कर इयोना के आगे सीना ताने खड़ी हुई,
बोली बात, डाह के-बदले के-माहुर से कढ़ी हुई :
उल्लू है तू रे अकालजन्मा, बबूल का किल्ला है।
टुनगाभिन जादूई हुण्ड़ारन की उकार का पिल्ला है,
यह क्या बकबक है? किस चण्डूखाने की गप लाया है,
तेरी जीभ ने जाल झूठ का यह कैसा फैलाया है!
उसके रंग-ढँग देखे तो दंग रह गये सारे लोग
सुना-गुना, समझा कि दाल में काला-सा लगता है जोग,
बकर-बकर मुँह लगे ताकने, लगे सोचने आपो-आप
जहर भरे बोलों के पीछे छिपा हुआ है कोई पाप,
रंग भाँप कर लोग मुँहोमुँह गुपचुप करने लगे विचार
निकल भीड़ से खड़ा हुआ कोई बूढ़ा मछुआ-सरदार,
चारों ओर खड़े भाईबन्दों को झुक कर किया सलाम,
और मान-भारी शब्दों में अर्ज़ किया यह फर्ज-कलाम :
नेक भाइयो, मेरे हाथों दे दो सान-चढ़ी तलवार
और सभी के आगे ही फेंकूँ उसे गगन के पार,
थके पंच ऊपर परमेसुर, हो जावेगा सत्त नियाव
लौटी धार करेगी पापी के ऊपर ही मारक घाव,
सतजुगिया बूढ़े के हाथों लाके धरी गयी तलवार
पके झुराये सिर के चारों ओर माँज कर उसकी घार
बूढ़े बाबा ने उसको उड़ियाया मेघलोक के पार,
जाने कहाँ अलोप हुई वह उड़नचिड़ैया सी उड़ कर
बड़ी देर तक राह निहारी गयी कि अब आयी मुड़ कर,
गगन-अटा की अमल छटा लख-लख के आँखें पथरायीं
तनी-तनी गरदनें अकड़ सी गयीं पुतलियाँ चौंधायीं,

लोग भीड़ कर सट आये, टोपियाँ उतर आयीं सर की
लोग मौन हो खड़े रहे, औ' मौन रात चुपके सर की,
इसी तरह भिनसार हुई, फिर झील में प्रथम किरण दौंकी
दौंकी उधर सौतेली अम्मां, औ' इधर वह पंचायत चौंकी,
इतने में कौंधती लवा सी औचक उतर पड़ी तलवार,
हत्यारन के ऐन कलेजे भौंचक उतर पड़ी तलवार
झट घुटने टेक ध्यान धरके बैठे धरमी मछुए
दीन भाव से परमपिता के पूत प्रार्थनालीन हुए,
धन्य-धन्य भगवान तुम्हारे न्याव-धरम की जय-जयकार!
फिर बूढ़े मछुए ने अपने पास इयोना को लिया पुकार,
साथ लिया, लेके पहुँचा उस तपसी के मठ में दूर-सुदूर
केर्जेनेत्स नदिया के तट पर, जहाँ बरसता तप का नूर,
कथा-पुराणों की प्रसिद्धिवाली कीतेज़ नगरी के पास...*

दूसरे दिन नींद खुलने पर देखा कि देह में लाल-लाल दाने निकल आये हैं। चेचक का भयानक प्रकोप हुआ था। लोग मुझे कोठे के पीछेवाले कमरे में ले गये। हाथ और पैरों में चौड़ी पट्टी बाँध दी गयी। आँख से कई दिनों तक सुझायी नहीं पड़ता था। वहाँ पड़ा मैं बीमारी से लड़ता रहा। रोज़ अज़ीब-अज़ीब भयानक सपने आते थे। एक दिन ऐसे ही सपने के चलते मेरे प्राण जाते-जाते बचे। इस अकेले कमरे में केवल नानी मेरे नजदीक आया करती थी। छोटे बच्चों की तरह वह चम्मच से मुझे खाना खिलाती और तरह-तरह के क़िस्से-कहानियाँ सुनाया करती थी। मैं अच्छा होने लगा। हाथ-पाँव की पट्टी खोल दी गयी थी। केवल उँगलियों पर दस्तानों के रूप में पट्टियाँ बाँध दी गयी थीं, ताकि मैं घावों को खरोंच न सकूँ। एक दिन शाम को नानी के आने का वक़्त हो गया, फिर भी वह नहीं आयी। मुझे बड़ी चिन्ता हुई। सहसा मुझे ऐसा मालूम हुआ कि नानी कोठे की सीढ़ी पर मुँह के बल पड़ी हुई है, धूल में लथपथ। उसके दोनों हाथ फैले हुए हैं और प्योत्र काका की तरह गर्दन आधी कटी हुई है। पास के अँधेरे में एक बड़ी-सी बिल्ली, हरी-हरी आँखें फाड़े नानी की ओर बढ़ी चली आ रही है।

मैं चारपाई से उछला और पैरों और कन्धों के धक्के से दोहरी खिड़की को चूर कर नीचे कूद पड़ा। जहाँ मैं गिरा, वहाँ बर्फ़ का एक ढेर जमा था। माँ की उस वक़्त दावत चल रही थी। इसलिए किसी ने खिड़की टूटने या मेरे गिरने की आवाज़ न

* तम्बोव प्रदेश के बोरिसोग्लेब्स्की जिले के कोल्यूपानोव्का गाँव में मैंने इस कहानी का एक और ही पाठान्तर सुना था। उसमें छुरी लौटकर सौतेले बेटे की ही छाती के पार हुई बतायी गयी है, क्योंकि उसने अपनी सौतेली माँ पर झूठा इलज़ाम लगाया था।-ले.

सुनी। फलस्वरूप मैं काफी देर तक इसी तरह बर्फ़ पर पड़ा रहा। गिरने से हड्डी नहीं टूटी, केवल कन्धों के जोड़ उखड़ गये और कई जगह शीशे से बुरी तरह कट गया। पर गिरने की धमक से मेरे पाँव बहुत दिनों के लिए नाकारा हो गये। लगभग तीन महीने तक चलना-फिरना असम्भव हो गया। मैं दिन भर कमरे में अर्धचेतन पड़ा घर में पहले से अधिक चहल-पहल, दरवाज़ों के पहले से अधिक खुलने और बन्द होने तथा लोगों के कहीं ज़्यादा आने-जाने की आहट सुनता रहता था।

बड़े ज़ोर का जाड़ा था। बर्फ़ की आँधियाँ छतों को कँपा देतीं : कोठे के दरवाज़े के बाहर हू-हू कर बहती हवा खिड़की की झिलमिली को खड़खड़ाती। चिमनी से ऐसी आवाज़ होती, मानो निर्जन मैदान में कोई मातम मना रहा है। दिन भर कौओं का काँव-काँव सुना करता। रात को दूर खेतों में भेड़ियों का रुदन सुनायी पड़ता। इसी संगीत के सुरों में मेरी आत्मा परिपक्वता प्राप्त कर रही थी। इसके बाद शर्मीली चाल से वसन्त का आगमन हुआ। धीरे-धीरे, किन्तु अधिकाधिक खुलकर वह खिड़कियों की राह अपनी चमकीली आँखों से झाँकने लगा। छत पर और बरसाती में बिल्लियाँ ज़ोर से चीखने-चिल्लाने लगीं। दीवार के उस पार से विविध अस्फुट स्वरों में वसन्त के आगमन का संकेत सुनायी पड़ने लगा। कभी पेड़ों में लटकी बर्फ़ की चूड़ियाँ खुटके के साथ भूमि पर चू पड़ती; कभी छत पर जमी बर्फ़ की सिल्लियाँ फिसलकर ज़मीन पर आ जातीं। घण्टियों की घनघनाहट में भी अब नयी टंकार थी, जो जाड़ों में नहीं सुनायी दिया करती थी।

नानी मुझे देखने आयी। आजकल उसके मुँह से प्रायः वोद्का की दुर्गंध निकला करती थी। कभी-कभी वह एक बड़ी-सी उजली चायदानी लाकर मेरी चारपाई के नीचे छिपा देती और कनखी मारकर कहती :

"बबुआ! नाना से मत कहियो!"

मैंने पूछा,"तुम पीती क्यों हो?"

"श्श-श्श!" करते हुए वह बोली,"चुप! बड़ा होने पर तू खुद ही जान जायेगा।"

इसके बाद चायदानी की टोंटी से एक घूँट लेकर वह आस्तीन से मुँह पोंछती। चेहरे पर आनन्द से मधुमय मुस्कान छा जाती। मेरी ओर मुड़कर वह कहती :

"हाँ तो साहबजादे! कल मैं क्या सुना रही थी तुझे?"

"मेरे पिताजी के बारे में।"

"कहाँ तक कहा था?"

मेरे ज़वाब देने के बाद उसकी सुरीली वाक्धारा आरम्भ हो जाती। और मैं उसके रस में शराबोर हो जाता-घण्टों के लिए।

पिताजी की कहानी उसी ने छेड़ी थी। उस दिन पीने को नहीं मिला था और वह उदासचित्त थी। बोली :

"रात सपने में तेरे बाप को देखा। हाथ में छड़ी लिये वह सीटी बजाता हुआ

खेतों में टहल रहा था। पीछे-पीछे जीभ लपलपाता हुआ एक चितक़बरा कुत्ता था। न जाने क्यूँ आजकल मक्सिम साव्वातेयेविच बहुत सपनों में आ रहा है-लगता है उसकी आत्मा अशान्त होकर भटक रही है...”

इसी के बाद पिताजी की कहानी का क्रम आरम्भ हुआ, जो कई शामों तक चलता रहा। नानी की सभी कहानियों की भाँति यह कहानी भी अतीव रोचक थी।

पिताजी के पिता फौज़ी सिपाही थे, जो तरक्की पाते हुए अफ़सर के ओहदे तक पहुँच गये, पर उसके बाद ही अपने मातहतों के साथ बेरहमी का सलूक करने के कारण उन्हें साइबेरिया भेज दिया गया। साइबेरिया में ही मेरे पिताजी का जन्म हुआ। बाबा बचपन से ही उन्हें बड़ी निष्ठुरता के साथ पीटा करते थे। फलस्वरूप उन्होंने कई बार घर से निकल भागने की कोशिश की। एक बार वह जंगल में जा छिपे। बाबा ने उनके पीछे शिकारी कुत्ते छोड़ दिये, मानो वह खरगोश रहे हों। एक बार पकड़े जाने पर उन्होंने पिताजी को इतनी बेरहमी से पीटना शुरू किया कि पड़ोसियों ने आकर छुड़ाया और उन्हें छिपा दिया। मैंने पूछा :

“क्या बच्चों को सदा से इसी तरह पीटने का रिवाज है?”

नानी ने शान्त स्वर में जवाब दिया :

“हाँ।”

वह बहुत छोटे थे, जब उनकी माँ मर गयी। नौ वर्ष की उम्र में बाप की भी मृत्यु हो गयी। इसके बाद उनका लालन-पालन उनके धर्मपिता द्वारा हुआ, जो बढ़ई का काम करते थे। उन्होंने पेर्म नगर में उनका नाम बढ़इयों के संघ में लिखा दिया, लेकिन पिताजी वहाँ से भाग गये। कुछ दिन वह बाजारों में अंधों को रास्ता दिखाया करते थे। लेकिन 16 वर्ष की उम्र में वह नीज़्नी नोव्गोरोद चले आये जहाँ कोलचिन के स्टीमरों में वह एक बढ़ई की मातहती में काम करने लगे। बीस वर्ष की उम्र होते-होते वह लकड़ी का सामान बनाने और कुर्सी, सोफे आदि में गद्दी लगाने और कपड़ा चढ़ाने के काम में उस्ताद हो गये। वह जिस दुकान में नौकरी करते थे, वह नाना के कोवालिखा सड़कवाले मकानों की बगल में थी।

“इसके बाद की कहानी बिल्कुल सादी है,” नानी ने हँसकर कहा। “घरों की चहारदीवारियाँ तो बहुत ऊँची नहीं होतीं और लोग साहसी होते हैं। एक दिन मैं और वर्वारा बगीचे में रसभरी चुन रही थीं कि सहसा देखती क्या हूँ कि तेरा बाप चारदीवारी के अन्दर दाखिल है। मेरी अक़्ल गुम-क्या करूँ, क्या न करूँ? वह सेब के वृक्षों का झुरमुट पार कर हमारे पास आया। लम्बा-चौड़ा, तन्दुरुस्त शरीर, केवल उज़्ली कमीज और मखमली पतलून पहने हुए। न पाँव में जूते, न सिर पर टोपी; लम्बे-लम्बे बाल चमड़े के फीते से बँधे हुए। और जानते हो हजरत आये किस लिए-यह कहने के लिए कि ‘वर्वारा को मुझसे ब्याह दो’। इसके पहले मैंने उसे दो-एक मर्तबा खिड़की के पास चक्कर लगाते हुए देखा था। उसे देखकर मेरे मन में हुआ करता था

कि 'लड़का है बड़ा सुन्दर।' मैंने उससे कहा,'पहले तो यह बताओ, नौजवान, कि किसी भले आदमी के घर आने का क्या यही रास्ता है?' वह झट घुटनों के बल मेरे सामने बैठ गया। बोला, 'अकुलीना इवानोव्ना! मेरा जीवन तुम्हारे हाथों में है-चाहो तो इसे रख लो, चाहो खत्म कर दो। वर्वारा तुम्हारे सामने है, उससे भी पूछ लो। प्रभु ईसा के नाम पर, किसी तरह हम दोनों का विवाह करा दो। यह काम तुम्हारे ही वश का है।' मैं उसका प्रस्ताव सुनकर अवाक रह गयी-देखो तो भला इस लड़के को! नज़र उठाकर देखती हूँ तो तुम्हारी माँ सेबों के झुरमुट में छिपी हुई उसे इशारे कर रही है। छछूँदरी का चेहरा लाल रतनार जैसे रसभरी का दाना और आँखों में छलछल आँसू। 'यह क्या किया तूने मूर्ख छोकरी,' मैंने कहा, 'तेरा सिर फिर गया है।' और तेरे बाप से मैंने कहा, 'साहबज़ादे! होश है तुम्हें कि क्या कर रहे हो? कुछ हैसियत को भी सोचा है अपनी?' उन दिनों तुम्हारे नाना पैसेवाले आदमी थे-जायदाद का बँटवारा नहीं हुआ था, उनके पास चार मकान थे, इसके अलावा काफी रुपया भी था। अपने समाज में अच्छी प्रतिष्ठा थी। कुछ ही दिन पहले उनके नौ वर्ष तक रंगरेजों के मुखिया रह चुकने के उपलक्ष्य में समारोह मनाया गया था और तुम्हारे नाना को सब ने मिलकर कलाबत्तू का बन्द गले का शानदार कोट और टोपी भेंट की थी। उन दिनों उनके रोब-दाब का ठिकाना न था। मैंने सारी बात समझायी तेरे बाप को। मेरा कलेजा थर-थर काँप रहा था, साथ ही दोनों की हालत देखकर तरस भी आ रहा था-दोनों के चेहरे मुरझा गये थे। सारी बातें सुनने के बाद तेरा बाप बोला, 'मैं जानता हूँ कि वासीली वासील्येविच अपनी मर्जी से कभी वर्वारा को मुझसे नहीं ब्याहेंगे, इसलिए मुझे उसका अपहरण करना होगा। इसी काम में हम लोग आपकी मदद चाहते हैं।' वर्वारा के अपहरण में मेरी मदद? ज़रा सोच तो! मैंने उसे टरकाने की कोशिश की, पर वह भला कब टलनेवाला था? बोला, 'मुझे पत्थरों से मारो, पर मदद मेरी करनी ही होगी तुमको। मैं हरगिज़ हार नहीं मान सकता।' इसके बाद वर्वारा भी वहाँ आ गयी और उसके गले में हाथ डालकर बोली, 'हम लोग पति-पत्नी बन चुके हैं-मई से ही। केवल विवाह की रस्म बाकी है।' यह सुनने के बाद मुझे काटो तो खून नहीं। ऐसा लगा कि दोनों ने मेरे सिर पर लाठी जमा दी है।"

नानी की पूरी देह हँसी से काँप रही थी। उसने नाक में नास डाली, आँखें पोंछी और और आनन्दोच्छ्वास के साथ बोली :

"विवाह और विवाह के बिना पति-पत्नी होने में क्या अन्तर है, इसे तू बड़ा होने पर समझेगा, लेकिन बिना विवाह किसी लड़की के बच्चा होना भयानक बात है। इस बात को बड़े होने पर याद रखना। किसी कुमारी लड़की को भूलकर भी ऐसी आफत में मत डालना। ऐसा करेगा तो भारी पाप लगेगा-उस लड़की की ज़िन्दगी बरबाद हो जायेगी और जो बच्चा होगा, वह भी हरामी कहलायेगा। नानी की इस बात को हरगिज़ मत भूलना। स्त्रियों पर तरस खाना, उन्हें हृदय से प्यार करना,

केवल क्षणिक सुख का साधन मत समझना। मेरी यह सीख याद रखना।"

वह दो क्षण के लिए विचारों में डूब गयी। इसके बाद सम्भलकर फिर कहना शुरू किया :

"मैं बड़ी उलझन में पड़ गयी। मक्सिम को मैंने चपत लगाया और वर्वारा का झोंटा पकड़ कर खींचा, पर मक्सिम ने अक़्ल की बात कही, 'मारने से अब क्या होगा?' और छोकरी भी बोली, 'पहले इसका कोई उपाय निकाल दे, फिर पेट भर पीट लेना हम दोनों को।' आखिर मैंने मक्सिम से पूछा, 'अच्छा यह तो बताओ कुछ पैसे-वैसे भी हैं तुम्हारे पास?' वह बोला, 'पैसे तो थे, पर सब मैंने वर्वारा के लिए अँगूठी खरीदने में खर्च कर दिये।' मैंने पूछा, 'कितने पैसे रहे होंगे-यही तीनेक रूबल?' वह बोला, 'नहीं, ये तो सौ रूबल थे, पर मैंने सबकी अँगूठी खरीद ली।' सौ रूबल की अँगूठी? और वह भी उस सस्ती के जमाने में। मैं दोनों का मुँह देखने लगी। कैसे बेअक़्ल हैं ये! तेरी माँ बोली, 'मैंने अँगूठी तेरे डर से फ़र्श में जड़ी लकड़ी के नीचे छिपा दी है। उसे बेचा जा सकता है।' यह दूसरा लड़कपन हुआ! सचमुच दोनों अभी बिल्कुल बच्चे थे। खैर, तय पाया कि हफ़्ते के अन्दर विवाह हो जाये। मैंने पादरी से बात ठीक करने का जिम्मा लिया। इसके बाद तो मेरे आँसुओं का तार टूटने को ही न आता था। चौबीसों घण्टे तुम्हारे नाना का भय लगा रहता था। और वर्वारा भी डर से थर-थर काँपा करती थी। किसी तरह सारा इंतजाम पक्का हो गया।

"लेकिन कारखाने का एक मिस्तरी था, जो दिल का बड़ा काला था। वह तेरे बाप से बैर रखता था। वह बहुत दिनों से दोनों पर नज़र रखे हुए था। उसने सारा मामला भाँप लिया। बेटी को मैंने नयी पोशाक में सजाकर चुपके से फाटक के बाहर निकाला। थोड़ी ही दूर पर तीन घोड़ों वाली बग्घी खड़ी थी। वह उसमें बैठ गयी। मक्सिम ने सीटी से इशारा किया और गाड़ी रवाना हो गयी। मैं घर लौटी, तो आँखें आँसुओं से तर हो रही थीं। लेकिन ड्योढ़ी में खड़ा हुआ वही दुष्ट मेरी प्रतीक्षा कर रहा था। वह बोला, 'अकुलीना इवानोव्ना! मैं बड़ा सीधा आदमी हूँ और नहीं चाहता कि मेरे कारण दोनों के सुख में बाधा पहुँचे। मुझे तुम पचास रूबल दे दो, तो काम चल जाये।' लेकिन पैसे मेरे पास कहाँ? पैसे रखने का मुझे शौक न था, इसलिए एक पाई भी जमा नहीं करती थी। अतः मैंने कहा, 'भाई, मेरे पास पैसे हैं ही कहाँ कि तुम्हें दे सकूँ।' वह बोला, 'अच्छा तो तुम वादा करो कि बाद में दे दोगी,' 'वादा?' मैंने जवाब दिया। 'वादा करने पर भी रुपया कहाँ से आयेगा मेरे पास?' तब वह बोला, 'तुम्हारा पति इतना पैसेवाला है। उससे चोरी-चोरी क्या तुम कुछ पैसे पार नहीं कर सकतीं?' लेकिन मैं ऐसी बेअक़्ल कि उसे बातों में लगाकर नहीं रखा, बल्कि उसके मुँह पर थूककर घर के अन्दर चली गयी। वह आँगन में दौड़ा और इसके बाद तो ऐसा हल्ला मचा कि कुछ पूछो मत।"

उसने पलकें मूँद लीं और चेहरे पर एक हल्की-सी मुस्कान खेल गयी।

"उस हल्ले की याद से आज भी कलेजा काँप उठता है। तुम्हारे नाना सुनते ही ऐसा तड़पे जैसे घायल बाघ। उनके सारे मनसूबों पर पानी फिर गया था। वर्वारा को देखकर वह अक्सर अभिमान से कहा करते थे कि इसकी शादी किसी रईस या लाट से करूँगा। मिल गये यहीं उनके लाट साहब! पर जोड़ी बनाना आदमी के वश की बात नहीं है। यह तो माँ मरियम का काम है। तुम्हारे नाना आँगन में इस तरह दौड़ने लगे, मानो आग ने घेर लिया हो। चिल्लाकर उन्होंने याकोव, मिख़ाईल, कोचवान क्लिम और झाँइयोंवाले उस मिस्तरी को जमा किया। देखता हूँ कि उन्होंने चमड़े के पट्टे से बँधा लोहे का टुकड़ा ले लिया। मिख़ाईल ने बन्दूक ले ली। घोड़े हम लोगों के बड़े तेज़ थे और घर की हल्की-फुल्की बग्घी भी खूब तेज़ चलती थी। मैंने मन ही मन सोचा कि आज दोनों पकड़े गये तो खैर नहीं। पर उसी समय वर्वारा के इष्ट देवताओं ने मुझे एक अक़्ल सुझायी। मैंने चाकू लेकर बग्घी के बम के रास को काट दिया, ताकि रास्ते में गाड़ी खुल जाये। और यही हुआ। रास्ते में बम अलग हो गया। तुम्हारे नाना, मिख़ाईल और क्लिम मरते-मरते बचे, पर इसका नतीजा यह हुआ कि रास्ते में उन्हें देर हो गयी और जब वे गिरजाघर में पहुँचे, तो भगवान की कृपा से वर्वारा और मक्सिम का विवाह सम्पन्न हो चुका था। दोनों गिरजे के बरामदे में एक दूसरे का हाथ थामे खड़े थे।

"इसके बाद तो सभी मक्सिम पर टूट पड़े। पर वह सबों से तगड़ा था-वैसी ताक़तवाले आदमी कम ही मिलते हैं। मिख़ाईल को उसने बरामदे से बाहर ढकेल दिया, जिससे उसकी बाँह मुड़क गयी। क्लिम को भी उसने पटक दिया। नतीजा यह हुआ कि तेरे नाना, याकोव और उस मिस्तरी की हिम्मत नहीं पड़ी कि आगे बढ़ें।

"पर गुस्से के बावजूद मक्सिम ने बुद्धि से काम लिया। नाना से वह बोला, "लोहे का यह टुकड़ा रख दो। मैं नहीं चाहता कि लड़ाई-झगड़ा हो। जो भी मैंने प्राप्त किया है प्रभु की मर्जी से और अब किसी को उसे मुझसे छीनने का अधिकार नहीं है। इसके अलावा मुझे तुमसे और कुछ नहीं चाहिए।" सब लोग उसकी बात सुनकर पीछे हट गये। नाना बग्घी में जा बैठे और वहीं से चिल्लाकर बोले, 'वर्वारा यह आखिरी विदाई है। आज से तुम न मेरी बेटी, न मैं तुम्हारा बाप। और न अब मैं तुम्हारा मुँह देखूंगा। आज से मैंने यही समझ लिया कि तुम ज़िन्दा भी हो तो मेरे लिए मरी समान।' घर आकर उन्होंने मुझे पानी पी-पीकर कोसा और अच्छी तरह मेरी पिटाई भी की। पर मैंने चूँ तक नहीं की। मैं जानती थी कि जो होना था, वह हो गया और धीरे-धीरे यह तूफ़ान ठण्डा हो जायेगा। थोड़े ही दिनों के बाद वह मुझसे बोले, 'अकुलीना, आज से समझ लो कि बेटी हमारी सदा के लिए चली गयी और संसार में हमारी-तुम्हारी कोई लड़की नहीं है।' और मैं मन ही मन सोच रही थी, 'बक ले, लालमुँहे बुड्ढे, जो जी में आये बक ले। तेरा तो पानी का बुलबुला है। देखती हूँ कितनी देर ठहरता है

तेरा गुस्सा!'"

मैं साँस रोककर कहानी सुन रहा था। कहानी के कुछ अंशों से मुझे अचम्भा हुआ, क्योंकि नाना ने माँ के विवाह की कहानी बिल्कुल दूसरी तरह से बतायी थी। यह ज़रूर है कि वह इस विवाह के विरुद्ध थे और उसके बाद माँ को घर आने से मना कर दिया था, पर उनकी कहानी के अनुसार विवाह गुप्त रूप से नहीं हुआ था और वह स्वयं गिरजाघर में उपस्थित रहे थे। किसका ब्योरा सही और किसका गलत है, यह मैं नानी से पूछना नहीं चाहता था, क्योंकि अधिक रोमानी होने के कारण मुझे नानीवाला ब्योरा ही अधिक पसन्द था। कहानी कहते वक़्त वह अपनी पूरी देह डोलाती जाती थी, मानो नाव पर बैठी हो। कथानक का भयानक या अफसोसनाक अंश आने पर उसका डोलना अधिक तेज़ हो जाता और वह एक हाथ इस तरह ऊपर उठा लेती जैसे वार बचा रही हो। अक़्सर वह पलकें मूँद लेती। उस वक़्त उसकी भौंहें हिलने लगतीं और झुर्रीदार गालों पर मनमोहक मुस्कान फैल जाती। वह किसी का अपराध नहीं गुनती और सच्ची सहृदयता के साथ सभी को माफ कर देती थी। यही बात मेरे मर्म को छू लिया करती थी। अक्सर ऐसे मौके आते जब मैं अपेक्षा करता था कि उसके मुँह से रोष के कड़ुवे शब्द निकलें।

कहानी जारी रही, "तो, पहले दो हफ़्ते तक मुझे पता नहीं चला कि मक्सिम और वर्वारा कहाँ हैं। इसके बाद एक लड़के की मार्फत उन्होंने सन्देश भेजा। अगले शनिवार को गिरजाघर में प्रार्थना के बहाने मैं घर से निकली और उनके पास गयी। वे बहुत दूर, सुएतिंस्की सड़क पर एक मकान के उपगृह में रहते थे। आँगन के चारों ओर तरह-तरह के मज़दूर रहा करते थे। हर ओर गन्दगी और शोरगुल का राज था, पर उन दोनों को मानो इसकी खबर ही न थी। वे अपनी ही दुनिया में डूबे हुए थे-बिल्ली के बच्चों की तरह अपनी ही क्रीड़ा-कौतुक में मस्त। मैं उनके लिए थोड़ी चाय और चीनी, कुछ दलिया, कुछ मुरब्बा, आटा और सूखी खुमियाँ ले गयी थी। कुछ रुपये भी थे-मुझे याद नहीं कितने, पर नाना से जितने भी चुराना सम्भव हो सका था, सभी ले गयी थी। चोरी करना बुरा नहीं, बशर्ते अपने लिए न की जाये। तेरा बाप इन उपहारों को देखते ही बिगड़ गया। बोला, 'हम लोग क्या भिखमँगे हैं कि यह सामान लायी है।' और वर्वारा भी लगी उसी के सुर में सुर मिलाने। बोली, 'माँ, यह सब करने की ज़रूरत? लेकिन खैर, सामान मैंने उन लोगों के पास छोड़ ही दिया। मैंने तेरे बाप से कहा, 'तुम्हें अक़्ल नहीं है। भगवान ने मुझे तेरी माँ की पदवी दी है।' और वर्वारा से कहा, 'मूर्ख कहीं की। तू मेरे पेट की जनी है। यह किस क़िताब में लिखा है कि माँ की देन लौटा दी जाये। धरती पर माँ का इस तरह अपमान होने से आकाश में प्रभु की माँ रोने लगती है।' मेरी बात सुनकर मक्सिम ने मुझे गोद में उठा लिया और लगा कमरे में कूदने, बल्कि मुझे लिये ही एक बार तो उसने नाच भी दिखा दिया। था भी वह भालू की तरह तगड़ा! और अपने उस

पति को लेकर वर्वारा इतनी इतराती थी कि कुछ मत पूछो। धरती पर मानो पाँव ही नहीं पड़ते थे। बात-बात में वह 'अपने घर' का ऐसे प्रसंग छेड़ती जैसे असली गृहिणी हो। मेरे तो मारे हँसी के पेट में बल पड़ गये। चाय के वक़्त नयी गृहस्थिन की कलई खुल गयी। छेने की टिकियाँ ऐसी पकी थीं कि चबाने में भेड़िये के दाँत भी बेकाम हो जायें। और घर का बना छेना बेहद सख़्त था।

"बहुत दिनों तक यही क्रम चलता रहा। तू पेट में आ गया था, पर नाना तेरे अब भी ऐसी चुप्पी साधे हुए थे कि पूछो मत। बुड्ढा स्वभाव का पुराना जिद्दी जो ठहरा। मैं चुपके से उन लोगों से मिल आया करती थी। उन्हें यह बात मालूम थी, पर अब भी ऐसा बने हुए थे, मानो उन्हें खबर नहीं है। घर में किसी को वर्वारा का नाम तक लेने की इजाज़त नहीं थी और न कोई उसका नाम लेता ही था। मैं भी नहीं। पर मन ही मन मैं खूब समझती थी कि बाप का दिल ज़्यादा दिन तक ऐसे ही कठोर रहने का नहीं। और आखिर यही हुआ। एक रोज़ रात को भयानक बर्फीली आँधी उठी हुई थी। हवा खिड़कियों पर भूखे भेड़िये के झुण्ड की तरह टूट रही थी। चिमनियों से सिसकारी की भयानक आवाज़ उठ रही थी। मालूम होता था कि प्रलय की रात आ गयी है। तेरे नाना और मैं पलँग पर लेटे हुए थे। आँखों में नींद नहीं। मैंने कहा, 'आज की रात गरीबों के लिए कत्ल की रात है और जिनके सिर पर चिन्ता सवार है, उनके लिए तो और भी।' हठात् नाना पूछ बैठे, 'क्या हाल है दोनों का?' मैंने जवाब दिया, 'ठीक ही है। कट रही है किसी तरह।' वह बोले, 'मैं किसके बारे में पूछ रहा हूँ?' मैंने झट कहा, 'अपनी बिटिया और दामाद के बारे में। और किसके बारे में?' बोले, 'यह तुमने कैसे जान लिया?' मैंने ज़वाब दिया, 'बाबू, बस भी करो इस खेल को। बहुत हो चुका। तुम्हीं बताओ इससे नुकसान किसका हो रहा है?' उन्होंने दीर्घ निःश्वास छोड़ा। बोले, 'तुम सबके सब दुष्ट हो। एक नम्बर के दुष्ट।' फिर पूछा, 'उन बुद्धूराम का क्या हाल है,' (मतलब, तेरे पिता का) 'वह सचमुच ही बुद्धू है क्या?' मैंने कहा, 'बुद्धू तो वह है, जो काम-धाम से वास्ता न रखे और मुफ़्तखोरी में ज़िन्दगी काटे। देख लो अपने याकोव और मिख़ाईल को-असली बुद्धू वे हैं। घर का बोझ किसके ऊपर है? कौन कमाकर लाता है? तुम! और ये दोनों जैसी मदद करते हैं तुम्हारी, वह तुम जानते हो या वे।' वह लगे मुझे बुरा-भला कहने-चुड़ैल, कुतिया, बिचौलिया आदि जो भी आया। मैं चुप लगाकर सुनती रही। बोले, 'तू ही उसके चक्कर में पड़ी। न उसके घर का पता है न कुल का।' मैंने दम साध लिया-निकाल लो दिल का सारा गुबार! जब वह थक गये, तो मैंने कहा, 'एक बार जाकर देख क्यों नहीं आते तुम उन लोगों को। कितने ठाठ से हैं वे?' वह बोले, 'मैं क्यों अपनी इज्ज़त गवाऊँ? उन्हें आना है, तो वे ही आ जायें यहाँ।' उनके मुँह से यह निकलते ही मैं मारे खुशी के रो पड़ी। वह लगे मेरी चोटी सहलाने-मेरी चोटी उन्हें बहुत प्यारी थी। बोले, 'न रो, बुद्धू, मेरा कलेजा क्या तू पत्थर का समझती है?'

सचमुच तेरे नाना का पहले तो सोने जैसा दिल था। जब से उन्हें यह घमण्ड पैदा हो गया कि मेरे जैसा कोई नहीं है, तभी से उनमें ओछापन और जड़ बुद्धि समा गयी।

"आखिर एक दिन तेरे माँ-बाप घर आये। उस दिन 'क्षमा रविवार' का पर्व था। दोनों इतने हृष्ट-पुष्ट, स्वच्छ और सुन्दर थे कि देखते ही बनता था। मक्सिम तेरे नाना की बगल में खड़ा था। और तेरे नाना थे कि उसके कन्धे से भी नीचे। वह बोला, 'वासीली वासील्येविच! आप यह मत सोचियेगा कि मैं दहेज लेने आया हूँ। दहेज-वहेज मुझे नहीं चाहिए। मैं केवल अपनी पत्नी के पिता के नाते आपको प्रणाम करने आया हूँ।' उसकी इन बातों से नाना का मन पसीज गया। वह हँसते हुए बोले, 'शैतान, लुटेरा कहीं का! लेकिन अब छोड़ो पागलपन की ये बातें। अब डेरा डण्डा उखाड़कर चुपके यहीं आ जाओ।' मक्सिम के माथे पर बल पड़ गया। बोला, 'यह वर्वारा की मर्जी पर है। वह जो चाहे सो करे-मेरे लिए जैसे यह वैसे वह।' इसके बाद दोनों लगे बहस करने। न यह चुप होने को तैयार, न वह। मैं कनखियों से और मेज के नीचे पैर से इशारे पर इशारे कर रही हूँ, पर वह भला कब रुकनेवाला? उसकी आँखें ऐसी सुन्दर थी कि क्या कहूँ-कटोरे जैसी, स्वच्छ। ऊपर काली-काली भौंहें। कभी-कभी उसके माथे पर बल पड़ जाता और चेहरा ऐसा कठोर हो जाता जैसे काठ। उस वक़्त मज़ाल क्या कि मेरे सिवा किसी की बात पर कान दे। मैं उसे अपने बेटों से बढ़कर प्यार करती थी और वह इसे जानता था और मुझे भी जी जान से मानता था। कभी-कभी मुझे गले से लिपटाकर या गोद में उठाकर वह कमरे के चारों ओर चक्कर लगाने लगता और कहता, 'तुम्हीं मेरी असली माँ हो-धरती मैया जैसी। मैं तुम्हें वर्वारा से भी अधिक प्यार करता हूँ।' उन दिनों तेरी माँ भी बड़ी चुलबुली थी-पूरी छछून्दर। वह टूट पड़ती बेचारे पर और कहती, 'क्या कहा, फिर कहो तो? कलमुँहे कहीं के!' और तीनों कमरे में धमाचौकड़ी मचाना शुरू कर देते। बड़े आनन्द के दिन थे वे। वह नाचने में भी एक नम्बर था। और एक से एक बढ़िया गीत जानता था। वे गीत उसने सूरदासों से सीखे थे। अन्धे सबसे अच्छे गायक होते हैं।

"तो दोनों आकर उपगृह में रहने लगे। वहीं तू पैदा हुआ। उस वक़्त दोपहर का समय था। तेरा बाप दोपहर का खाना खाने के लिए घर आया। तू 'केहाँ-केहाँ' कर रहा था। वह खुशी से पागलों जैसा व्यवहार करने लगा। तेरी माँ को इस तरह लिपटा लिया, मानो उसने बच्चा क्या पैदा किया है दुनिया का सब से बड़ा किला फतह किया है। मुझे उसने कन्धे के ऊपर उठा लिया और लेकर दौड़ा आँगन में नाना को खुशखबरी देने। तेरे नाना भी हँसी में शामिल हो गये। बोले, 'मक्सिम! बड़ा नटखट है तू।'

"लेकिन तेरे मामा लोगों को वह रंचमात्र नहीं सुहाता था। बात यह थी कि वह पीता नहीं था और बातचीत में भी किसी को खातिर में नहीं लाता था। साथ ही तेज़

ऐसा था कि रोज़ नया-नया खेल निकाला करता था। बड़ी मुसीबत उठानी पड़ी थी उसे इनकी बदौलत। एक बार 'लेंट' के दिनों में आँधी उठी। यक़ायक़ सारे घर में सिसकारी की भयानक आवाज़ सुनायी पड़ने लगी। सभी हैरान। डर के मारे सबका बुरा हाल हो गया। तेरे नाना कभी इधर दौड़ते, कभी उधर। बोले, 'पूजा के सभी दीप जला दो और भजन आरम्भ करो।' और फिर यक़ायक़ चारों ओर घनघोर सन्नाटा छा गया तथा घर और भी ज्यादा डरावना लगने लगा। तेरा याकोव मामा समझ गया कि हो न हो दाल में कुछ काला है। वह बोला, 'यह सब मक्सिम की करामात है।' और सचमुच यही बात निकली। मक्सिम ने ही बाद में बतलाया कि उसने कोठेवाली खिड़की पर एक क़तार में कई बोतलें इस तरह सजा दी थीं कि आँधी चलने से उनमें से भयानक आवाज़ निकलने लगे। तेरे नाना ने चेताकर कहा, 'मक्सिम! तुम्हारे ये खेल खतरनाक हैं। इनके चलते कहीं साइबेरिया की हवा न खानी पड़े तुम्हें।'

"एक साल ऐसा जाड़ा पड़ा कि भेड़िये खेत-मैदान छोड़कर बस्ती के पास चले आये। कभी किसी का कुत्ता गायब हो जाता, कभी घोड़े किसी हड़के भेड़िये को देखकर भाग निकलते और कभी किसी मकान का दरबान नशे की हालत में भेड़ियों द्वारा चबाया हुआ पाया जाता। भेड़ियों ने आफत मचा दी। तेरा बाप स्कीज पहनता और बन्दूक लेकर रात को मैदान में निकल जाता और दो-एक भेड़िये मार लाता। वह उनकी खाल निकालकर भूसा भर देता और आँखों की जगह शीशा लगा देता, जिससे मालूम होता कि ज़िन्दा भेड़िया है। एक बार तेरा मिख़ाईल मामा रात को हाजत से बाहर छानी में गया और वहाँ से हाँफता और थर-थर काँपता भागा-रोयें खड़े, आँखें फाड़े, जीभ लटकती हुई, घिग्घी बँधी हुई। पतलून खुला का खुला और वह उसमें उलझकर गिर पड़ा। मुँह से सिर्फ इतना ही फुसफुसा रहा था, 'भेड़िया!' लैम्प तथा जिसके हाथ में जो आया वही लेकर दौड़ा छानी की तरफ। और देखते क्या हैं कि पाखाने के सुराख से सचमुच भेड़िया झाँक रहा है। अब कोई गोली चला रहा है, कोई डण्डे बरसा रहा है, पर भेड़िया टस से मस नहीं हुआ। आखिर लोग हिम्मत करके पास गये, तो देखते क्या हैं कि भूसाभरा भेड़िया है। उसकी टाँगें किसी ने कील से तख़्ते में जड़ दी हैं। उस बार तेरे नाना मक्सिम से बहुत बुरी तरह बिगड़ गये-बस नहीं चला कि क्या करते। कुछ ही दिनों के बाद याकोव भी नये-नये खिलवाड़ों में तेरे बाप का संगी बन गया। मक्सिम क्या करता कि दफ्ती से आदमी का सिर बना लेता और आँख, नाक, मुँह वगैरह रंगकर तथा रेशों के केश बनाकर वह और याकोव बाहर निकल जाते और चुपके से किसी की खिड़की के पास उसे खड़ा कर देते। जिसकी नज़र पड़ती, वही डरकर चीखने-चिल्लाने लगता। या कभी दोनों सिर से पैर तक चादर तानकर रात में निकल जाते। लोग समझते कि मुर्दे भूत बनकर आये हैं। एक बार दोनों ने गिरजाघर के पादरी को डरा दिया। वह डरकर भय से पहरेदार के पास भागा और पहरेदार ने भी डरकर गुहार मचाना शुरू किया। दोनों

रोज़ कोई न कोई नया गुल खिलाते थे। हम लोगों ने लाख समझाया पर वे क्यों मानने लगे? मैंने मना किया, वर्वारा ने समझाया, पर कोई असर नहीं। मक्सिम हँसकर कहता कि ज़रा-सी बात में लोगों का बदहवाश होना देखकर बड़ा मज़ा आता है। इस तरह छकाने से उन्हें सीख मिलती है...

"इन्हीं शरारतों के चलते एक दिन मक्सिम की जान जाते-जाते बची। तेरे मिख़ाईल मामा ने, जो तेरे नाना की तरह ही ओछा और दिल का खोटा है, तेरे बाप का काम ही तमाम कर देने का निश्चय किया। जाड़े का आरम्भ था। एक दिन सब किसी से मिल-मिलाकर घर लौटे थे। मक्सिम था, तेरे दोनों मामा थे और छोटा पादरी था, जो किसी गाड़ीवाले को पीटते-पीटते मार डालने के कारण बाद में गिरजाघर से निकाल दिया गया। याम्स्काया सड़क से निकालने के बाद वे तेरे बाप को स्केटिंग सीखाने के बहाने द्यूकोव पोखरी में लिवा ले गये। वहाँ पहुँचकर उन्होंने मक्सिम को बर्फ़ के एक छेद में ढकेल दिया-लगता है यह कहानी तुझे सुना चुकी हूँ।"

मैंने पूछा,"मेरे मामुओं का स्वभाव इतना खराब क्यों है?"

नानी ने नास लेते हुए शान्त चित्त से जवाब दिया,"स्वभाव के बुरे नहीं, मूर्ख हैं। मिख़ाईल चालाक और अक़्ल से अछूता है। और याकोव बिल्कुल बुद्धू है... तो सबने मिलकर उसे उस पोखरी में ढकेल दिया, जहाँ बर्फ़ टूटी हुई थी। जब वह निकलने की कोशिश करता और किनारा थामता, तो वे जूतों से उसकी उँगलियाँ मसलकर फिर उसे अन्दर ढकेल देते। खैरियत यही थी कि वह नशे में नहीं था और दूसरी पीकर टर्र थे। ईश्वर की कृपा से किसी प्रकार वह पोखरी के बीच मुँह बर्फ़ से बाहर रखकर साँस लेता रहा। ये लोग उसतक पहुँच नहीं पाते थे। चुनाँचे उन्होंने कुछ देर तक उसपर बर्फ़ फेंकी और यह सोचकर चले गये कि वह पोखरी में खुद ही डूब जायेगा। वह किसी प्रकार रेंगकर बाहर निकला और सीधा थाने में चला गया। तुम जानते ही हो थाना बगल ही में चौक के ऊपर है। थानेदार उसे और सभी घरवालों को जानता था। उसने उससे पूरा वृताँत पूछा।"

नानी ने सलीब का निशान बनाते हुए कृतज्ञतापूर्ण स्वर में कहा :

"भगवान उसकी आत्मा को शान्ति दे। मक्सिम साव्वातेयेविच सचमुच बड़ा पुण्यशाली था। क्या मज़ाल कि वह पुलिस से एक शब्द भी कहे। बोला, 'क़सूर बिल्कुल मेरा है, नशे में मैं पोखरी के पास चला गया और उस गड्ढे में गिर पड़ा, जहाँ बर्फ़ टूटी हुई थी।' लेकिन थानेदार ने कहा कि 'तुम झूठ बोल रहे हो।' वह जानता था कि मक्सिम शराब नहीं पीता। थाने में उसके सारे बदन में वोदका की मालिश की गयी, फिर सूखे कपड़ों में लपेटकर और ऊपर से भेड़ की खाल का कोट डालकर थानेदार और दो आदमी उसे घर लाये। मिख़ाईल और याकोव अभी लौटकर नहीं आये थे-वे माँ-बाप का नाम ऊँचा करने के उपलक्ष्य में मधुशाला में आनन्द मना रहे थे। मेरी और तेरी माँ की उस पर नज़र पड़ी, तो पहले चीन्ह ही न सकी-ऊपर से

नीचे तक शरीर नीला और उँगलियाँ चूर और खून से लथ-पथ। इसके अलावा कनपटियों पर ऐसे बर्फ़ जमी थी जो पिघलने का नाम ही न लेती हो-कनपटियाँ पक गयीं थी!

"वर्वारा ज़ोर से चीख उठी, 'मक्सिम यह क्या हाल कर दिया तुम्हारा सबने मिलकर?' थानेदार ने सूँघ-सूँघकर सुराग लेना शुरू किया। लगा सवाल पर सवाल करने। मैं मन ही मन समझ गयी कि मामला बेढब है। मैंने वर्वारा को थानेदार से भिड़ा दिया और लगी मक्सिम से असल हाल जानने। उसने कान में फुसफुसाकर कहा : 'जल्दी से जाकर मिख़ाईल और याकोव को ढूँढों और उन्हें सिखा दो कि हम लोग याम्स्काया सड़क के बाद अलग हो गये। वे लोग पोक्रोव्का की तरफ चले गये और मैं प्रियादिल्नी कूचे की ओर चला आया। कह देना कि बात ठीक से याद रखें, नहीं तो वे लोग पुलिस के चँगुल में फँस जायेंगे।' मैं झटपट तेरे नाना के पास गयी। उनसे बोली कि थानेदार के साथ बातचीत में लगे रहें और मैं फाटक पर बेटों का इंतजार करूँगी और मैंने सारा काण्ड सुना दिया। वह जल्दी-जल्दी कपड़े पहनने लगे, डर से थर-थर काँप रहे थे। फुसफुसाकर बोले : 'मैं जानता था कि ऐसा ही कुछ होगा।' लेकिन वह झूठी बात थी-वह जानते-वानते कुछ न थे। खैर, मैं फाटक पर खड़ी हो गयी और जब प्यारे बेटे आये, तो सबसे पहले दोनों के कान में कमेठी दी। मिख़ाईल का डर के मारे नशा ही हिरन हो गया। पर याकोव ने बहुत ज्यादा चढ़ा ली थी। वह लगा बक-बक करने, 'मैं कुछ नहीं जानता। सारी करनी मिख़ाईल की है-वह मुझसे बड़ा है!' हम लोगों ने किसी तरह थानेदार को शान्त किया। बेचारा भला आदमी था। बोला, 'आगे को सम्भलकर रहना। अब अगर कोई बात हुई, तो मुझे जानते देर न लगेगी कि इसमें किसका हाथ है।' यह कहकर वह चला गया। इसके बाद तेरे नाना मक्सिम के पास जाकर बोले, 'तुम मेरे बेटों से बढ़कर हो। तुम्हारा उपकार मैं जन्म-जन्मान्तर नहीं भूलूँगा। मैं जानता हूँ कि इस वक़्त तुम्हारी जगह दूसरा होता तो वह कुछ और ही व्यवहार करता।' फिर वर्वारा की ओर मुड़कर बोले : 'बेटी? तुम्हें मेरे रोम-रोम का आर्शीवाद है कि ऐसा हीरा आदमी मेरे परिवार में लायी!' सचमुच तेरे नाना उस वक़्त बड़ा-सा कलेजा रखते थे। आज जैसी दुबर्फ़ुद्धि और मूर्खता उनमें नहीं आयी थी। इसके बाद हम लोग तीनों कमरे में योंही खड़े रहे। मक्सिम सहसा फफककर रोने लगा। ऐसे लगा कि सरसाम में बड़बड़ा रहा हो बोला, 'अम्मा! क्या बिगाड़ा है मैंने इन लोगों का? क्यों ऐसा सलूक किया इन लोगों ने मेरे साथ?' वह मुझे माताजी न कहकर अम्मा ही कहा करता था, मानो छोटा बालक हो। और सचमुच उसका स्वभाव बालकों जैसा ही प्यार से भरा हुआ था। वह बार-बार यही कहता रहा, 'ऐसा क्यों हुआ, अम्मा! मैं जवाब दूँ तो क्या? मुझे भी रुलाई आ गयी। आखिर यह कारनामा तो किया था मेरे बेटों ने न! उनपर तरस आता था। तेरी माँ ने अपने ब्लाउज के सारे बटन तोड़ डाले और ऐसे अस्त-व्यस्त होकर बैठी थी, मानो किसी से लड़-भिड़कर आयी हो। वह रो-रोकर कहने लगी,

'मक्सिम! अब हम लोग यहाँ नहीं रहेंगे। चलो कहीं और चले चलें। मेरे भाई लोग तुम्हारी जान के गाहक हो गये हैं। मुझे डर लगता है। अब हम लोगों को यहाँ एक क्षण भी न रहना चाहिए।' मैंने डाँटा भी, 'क्यों आग में घी छिड़कती है? यों ही यह घर फुँका जा रहा है!' तेरे नाना ने दोनों नालायकों को बुलवा भेजा और उनसे कहा कि माफी माँगो। मिख़ाईल तेरी माँ के पास गया, तो उसने उसके मुँह पर एक तमाचा जड़ दिया और बोली, 'लो यही तुम्हारी माफी है।' और तेरा बाप बार-बार यही कहता रहा, 'भैया तुमसे ऐसा करते कैसे बना? आज मेरी उँगलियाँ टूट जातीं, तो मैं ज़िन्दगी भर को लुँजा हो जाता-दो कौड़ी का। कौन पूछता बिना हाथ के कारीगर को?' खैर, किसी तरह बात रफा-दफा हुई। तेरा बाप करीब सात हफ़्ते बीमार रहा। खाट पर पड़ा-पड़ा वह यही कहता रहा, 'अम्मा! चलो किसी दूसरी जगह चले चलें। अब यहाँ जी नहीं लगता।' इसके कुछ ही दिन बाद वह आस्त्राखान भेज दिया गया। वहाँ जार का आगमन होनेवाला था और तेरे बाप को स्वागत-द्वार बनाने का काम मिला था। वसन्त ऋतु आ पहुँची थी। दोनों पहले ही स्टीमर से आस्त्राखान रवाना हो गये। मुझे ऐसा लगा कोई मेरा आधा कलेजा काटकर लिये जा रहा है। वह भी बहुत उदास था। मुझसे बार-बार यही कहता था, 'तुम भी चलो, अम्माँ' पर वर्वारा के खुशी के मारे ज़मीन पर पाँव ही नहीं पड़ रहे थे। निर्लज्ज से इतना भी नहीं होता था कम से कम ऊपर से दुःख प्रकट करती। इस तरह वे विदा हो गये... और बस इतनी ही कहानी है..."

यह कहकर नानी ने एक घूँट वोद्का और चढ़ायी और नाक में एक चुटकी नास लेती हुई खिड़की के बाहर झाँककर बोली, मानो अपने आपसे बात कर रही हो :

"तेरे बाप और मुझमें रक्त का सम्बन्ध नहीं था। लेकिन हम दोनों ऐसे थे, जैसी सगी आत्माएँ..."

अक्सर जब नानी की कहानी चल रही होती, नाना कमरे में आते और अपना गिलहरी जैसा चेहरा ऊपर उठाकर इधर-उधर सूँघने के बाद नानी की ओर सन्देहभरी निगाह से देखते और बड़बड़ाते हुए कहते :

"सब गप है, कोरी गप..." अचानक वह मुझसे पूछ बैठे :

"अलेक्सेई! तेरी नानी यहाँ दारू पी रही थी न?"

"नहीं।"

"तू झूठ बोल रहा है, तेरा चेहरा कह रहा है।"

उन्हें मेरी बात का विश्वास नहीं हुआ। जब वह जाने लगे, तो नानी ने उनकी पीठ के पीछे कनखी चलाते हुए कहा :

"न जानेगा, न मानेगा!"

एक दिन नाना कमरे के बीच खड़े थे। उनकी निगाह ज़मीन पर जमी हुई थी।

बोले :

"वर्वारा की माँ..."

"हुँ!"

"तुम घर के रंग-ढँग तो देख रही हो?"

"हाँ, देख रही हूँ।"

"क्या ख़याल है तुम्हारा?"

"सब किस्मत का खेल है, बाबू! याद है न इन शरीफ़जादे के बारे में तुम क्या कहा करते थे?"

"हुँ!"

"लगता है तुम्हारा कहना सही था।"

"यानी-बन गये मुहताज़!"

"खैर, यह तो वह खुद ही जाने।"

नाना बाहर चले गये। मैं समझ गया कि कोई न कोई आफ़त टूटी है। नानी से पूछा :

"तुम लोग क्या बातें कर रहे थे?"

मेरे पाँवों को सहलाते हुए वह बोली :

"सब अभी से जान लेगा, तो बड़ा होने पर जानने को बाकी क्या रहेगा?" यह कहकर वह हँसने और सिर हिलाने लगी। फिर स्वगत बोली :

"प्रभु की सृष्टि में तेरे नाना की हस्ती ही क्या है-किस खेत की मूली है वह? कहना मत, पर बात यही है कि तेरे नाना की सारी पूँजी जाती रही है। एक शरीफ़ज़ादे को उन्होंने हज़ारों रुपये कर्ज दे डाले थे। उन हज़रत का दिवाला निकल गया है। तेरे नाना कौड़ी-कौड़ी को मुहताज हो गये हैं।"

वह सोच में डूबी बड़ी देर तक योंही बैठी रही। चेहरे की मुस्कान उदासी में परिवर्तित हो गयी। मैंने पूछा :

"क्या सोच रही हो तुम?"

सम्भलकर उसने जवाब दिया, "सोच रही थी कि तुझे क्या सुनाऊँ। अच्छा येव्स्तिग्नेई का गीत सुनेगा? ले सुन :

एक था मठ छोटा, उसमें था एक पुजारी,
नाम येव्स्तिग्नेई, बड़ा अहंकारी,
अपने आपको समझे था बड़ा भारी,
चोटी के उजोत जैसी जोत की पिटारी,
जार ठहरे हेठ और हेठ थे पुजारी,
जुगनुओं की गिनती में थे सेठ-साहूकारी!

करनी में तो चमगादड़, पर अकड़ में मयूर,
गोल-गोल आँखें मानो बतियाँ धतूर,
उल्लू बुध-पुरनियों के से उभरे-उभरे कोये!
दिन-रात सीखों के बीज अली-गली बोये!
उपदेशों से नाकों दम पड़ोसियों का कर दिया,
कोई चीज़ जग में न ऐसी जिसे बदर किया,
देखी जो मीनार बोला : हुँह, बहुत नीची है यह,
बग्घी पर चढ़ा तो बोला : हुँह, बहुत धीमी है यह,
सेब जो चखे तो बोला : हुँह, ये मीठे हैं कहां!
धूप में बैठा तो बोला : पीठ जलती है यहाँ!
कुछ भी क्यों न देखे उसके मुँह से कढ़ते थे ये ही बोल :

और यहाँ आकर नानी ने आँखें नचाकर गाल फुला लिये और उसके प्यारभरे मुखड़े पर एक अजीब तरह की महा भोंदू जैसी मुद्रा खेल गयी, और एक-एक शब्द को मानो चबाती हुई वह कहती गयी :

"अमाँ यह क्या चीज़;
इसका है भला कौनसा मोल!
मैं तो खुद बना लेता
इससे लाखों दरजे बेहतर-
लेकिन इन छोटी-मोटी
बातों में उलझूँ तो क्यों कर?
जानते ही हो, मेरा समय
कितना अनमोल है!
इनमें तो फँसे वह, जो
बेकार फूटा ढोल है!"

छन भर को नानी रुकी। फिर आवाज़ धीमी-सी करके कहना जारी रखा :

एक रात दूत कई नरक-लोक के जमके,
उस मियाँ-मिट्ठू कोठारीजी के पास आ धमके,
कहने लगे, "दुनिया गड़बड़झाला है तेरे लिए?
हर कहीं भूलों का बोलबाला है तेरे लिए?
फिर हमारे देस में ही चला क्यों न तू चले?
नरक में तो लाजवाब आग हर घड़ी जले!"

बाँका टोप जब लौं पहनें-पहनें ही कोठारीजी,
तब लौं पूँछपे जमके दो-दो दूतों ने सवारी की,
बाकियों ने चँगुलों के बीच उन्हें पकड़ लिया,
धारदार अँगुलों के बीच उन्हें जकड़ लिया,
नोकदार नखों की शुरू हुईं चिकोटियाँ,
गुदगुदी से कँपकँपा उठीं हजरत की बोटियाँ,
धक्के खा धधकती ज्वालाओं में धकेले गये,
जमदूत बाहर खड़े रहे, वह अकेले गये,
"बता येव्स्तिग्नेई कैसी है आग लाज़वाब?
आ रहे होंगे मजे भुन-भुनके होने में कबाब?"
कोठारी की गोल-गोल आँखें नाचने लगीं,
पर मुद्रा बनाये रहा बुद्धिमानी में पगी,
मुँह बिचकाये बोला, बाँध के हिकारत का समाँ
"हुँह, नरक की आग से उठता है गैस का धुआँ!"

मीठी और चिकनी आवाज़ में कहानी समाप्त कर नानी धीरे से हँसी और मेरी ओर मुड़कर बोली :

"देखा न येव्स्तिग्नेई को-अन्त तक हार नहीं मानी पट्ठे ने। रस्सी जल गयी, पर ऐंठन न गयी-ठीक तेरे नाना की तरह!... अच्छा अब सो जा..."

माँ शायद ही कभी मुझे देखने कोठे पर आती थी। आती भी तो जल्दी-जल्दी दो-एक बातें करके चल देती। वह इन दिनों पहले से अधिक सुन्दर लगने लगी थी और उसने पोशाक भी बेहतर पहननी आरम्भ कर दी थी। लेकिन नानी की ही तरह वह भी किसी बात को मुझसे गुपचुप रखने की कोशिश कर रही थी। इतना मैं ताड़ गया। मैं उनके रहस्य को बूझने का प्रयत्न करने लगा।

नानी की कहानियों में अब मुझे रस नहीं आता था। मेरा मन एक अज्ञात आशँका से भर गया और यह आशँका दिनोंदिन बढ़ती ही जा रही थी। पिताजी के बारे में नानी की कहानियाँ भी उसे दबाने में सफल नहीं हो पा रही थीं।

एक दिन मैंने नानी से पूछा :

"पिताजी की आत्मा इतनी अशान्त क्यों है?"

आँखों को मूँदते हुए नानी ने जवाब दिया :

"यह मैं कैसे जानूँ? यह तो भगवान का धन्धा है-उसी की लीला। हम-तुम इसे क्या समझें..."

रात में नींद न जाने किस देश में खो जाती थी। मैं आँखें खोले नील गगन में तारों की बारात देखा करता था। मस्तिष्क में तरह-तरह की दुःखभरी कहानियाँ मँडराने

लगतीं। इन कहानियों के नायक सदा मेरे पिताजी होते थे। और उनका हमेशा एक ही चित्र सामने आता-एक हाथ में छड़ी और पीछे-पीछे एक झबरा कुत्ता...

12

एक दिन मैं दोपहर की हलकी झपकी के बाद उठा, तो ऐसा अनुभव हुआ कि मेरी टाँगें सुषुप्तावस्था से जाग उठी हैं। मैंने चारपाई से नीचे उतरने की कोशिश की, तो टाँगें फिर शून्य और बेजान हो गयीं। लेकिन अब मुझे यह विश्वास हो गया कि टाँगें सदा के लिए जड़ नहीं हुई हैं और मैं फिर से चलने-फिरने लायक हो सकूँगा। यह ख़याल आते ही मैं खुशी से चीख उठा और चारपाई से नीचे उतरा। पाँव भूमि पर रखते ही लड़खड़ाकर गिर पड़ा, पर किसी तरह घिसटते हुए कमरे से पार हुआ और सीढ़ियाँ उतर गया। सोचता जा रहा था कि अचानक मुझे नीचे देखकर सभी लोग चकित और विस्मित हो जायेंगे।

लेकिन इसके आगे की याद नहीं है। याद है तो यह कि मैंने माँ के कमरे में अपने को नानी की गोद में पाया। चारों ओर नये-नये चेहरों ने मुझे घेर रखा था, जिनमें एक पतली-दुबली बुढ़िया भी थी, जिसके चेहरे की रंगत हरापन लिये थी। हरी औरत ने संजीदा स्वर में, जिसमें दूसरों की आवाज़ डूब गयी, कहा :

"इसे रसभरी का मुरब्बा और चाय दो और कम्बल में लपेटकर सुला दो..."

बुढ़िया की सारी चीज़ें हरी थीं-पोशाक, टोपी, चेहरा, बायीं आँख के नीचे मस्सा, सभी कुछ। यहाँ तक कि मस्से में उगा बाल भी दूब की तरह हरा था। वह मुझे घूर रही थी। उसका निचला होंठ नीचे लटका और ऊपरी होंठ ऊपर उठा हुआ था। बीच में दातों की हरी पाँत झाँक रही थी। हाथों में उसने काला दस्ताना पहन रखा था। मुझे घूरते वक़्त वह एक हाथ आँखों के ऊपर रखे हुए थी।

मैंने डरकर पूछा :

"यह कौन है?"

मेरे नाना ने रूखे स्वर में जवाब दिया :

"यह तुम्हारी नयी दादी होने जा रही है..."

माँ हँसी और येव्गेनी मक्सिमोव को मेरी ओर करके बोली :

"और यही अब से तेरे बाप होंगे..."

इसके बाद उसने जल्दी-जल्दी कुछ और कहा, जिसका मतलब मैं नहीं समझ सका। पर मुझे सिकुड़ी आँखों से ताक़ता देखकर मक्सिमोव ने मेरी आँखों के नजदीक आकर कहा :

"मैं तुम्हें रंग का बक्स खरीद दूँगा।"

कमरे में तेज़ रोशनी थी। कोने में एक मेज पर चाँदी का शमादान रखा था, जिसमें पाँच मोमबत्तियाँ जल रही थीं। वहीं नाना की 'मेरी कब्र पर सिसक नहीं, माँ' नाम की प्रिय प्रतिमा रखी थी। उसके चौखटे में मोती जड़े थे, जिनसे मोमबत्ती की रोशनी में मधुर आभा फैल रही थी। प्रतिमा के चारों ओर सुनहली माला में लाल जड़े थे, जो प्रकाश में दीयों की तरह जल रहे थे। खिड़कियों के बाहर, अँधेरे में खड़े, रोटियों जैसे कई गोल चेहरे झाँक रहे थे। कई ने खिड़की में मुँह सटा लिया था, जिससे नाक चपटी लग रही थी। यक़ायक़ मेरा सिर चक्कर खाने लगा... लगा कि सभी चीज़ें लट्टू की तरह घूम रही हैं। हरी औरत ने मेरी कनपटी को अपनी ठण्डी उँगलियों से छूते हुए कहा :

"निश्चय ही, निश्चय ही..."

"गश आ गया है इसे," यह कहते हुए नानी गोद में लेकर मुझे कोठे पर ले जाने लगी।

लेकिन मुझे गश नहीं आया था। केवल यही हुआ था कि मैंने अपनी आँखें मूँद ली थीं। जब वह मुझे गोद में लिये हुए सीढ़ी पर पहुँची, तो मैंने उससे पूछा :

"तुमने पहले क्यों नहीं कहा था मुझसे?"

"अच्छा, अच्छा, अब चुप रह," नानी बोली।

"तुम सब के सब धोखेबाज हो..."

मुझे चारपाई पर लिटाने के बाद नानी तकिए में मुँह छिपाकर फफकने लगी। उसकी पूरी देह सिसकियों से हिल रही थी। वह बार-बार कह रही थी :

"रो ले, रो ले, एक बार जी भरकर रो ले!"

पर रोने की मेरी ज़रा भी इच्छा न थी। कमरा अँधेरा और सर्द लग रहा था। चारपाई मेरे काँपने से चूँ-चूँ कर रही थी और हरी औरत का चेहरा था कि आँखों से ओझल होने का नाम ही नहीं ले रहा था। मैंने सो जाने का बहाना किया और नानी धीरे-से कमरे के बाहर हो गयी।

अगले चन्द दिन उदासी के कारण कटने को ही न आते थे। मँगनी की घोषणा के बाद माँ कहीं चली गयी और घर में सूनेपन का साम्राज्य छा गया... एक टीसभरा सूनापन।

एक दिन सवेरे ही नाना हाथ में छेनी लेकर कोठे पर आये और जाड़े के तूफ़ानों से बचाने के लिए खिड़की में लगा मसाला उखाड़ने लगे। पीछे-पीछे नानी एक बालटी पानी और कुछ चिथड़े लेकर आयी। नाना ने धीरे-से पूछा :

"हाँ तो बुढ़िया?"

"क्या है?"जवाब मिला।

"खुश हो न?"

नानी ने वही जवाब दुहरा दिया, जो उसने मुझे सीढ़ियों पर दिया था :

"अच्छा, अच्छा, अब चुप रहो!"

इन शब्दों का खास महत्व था। उनमें कुछ ऐसा छिपा हुआ था, जो आज चुभ रहा था, दुःख रहा था, जिसे सभी मन ही मन गुन रहे थे, पर कहने को कोई तैयार न था।

नाना खिड़की के अतिरिक्त चौखटे को सावधानी से उखाड़कर नीचे ले गये। नानी ने खिड़की खोल दी। बगीचे में मैना और गौरैयों का झुण्ड चें-चें कर रहा था। पिघलती बर्फ़ धरती से विदा हो रही थी। उसकी मादक गन्ध कमरे में फैल गयी। अलावघर में लगी नीली-सी आभावाली टाइलें अजीब ढँग से सफेद-सी हो गयी थीं और उन्हें देखने मात्र से मेरे रोएँ सिहर उठते थे। मैं पलँग से नीचे उतरा।

"ज़मीन पर नंगे पैर मत घूम," नानी ने चेताया।

मैंने कहा :

"मैं बगीचे में जा रहा हूँ।"

"अभी न जा। ज़मीन सूख जाने दे," नानी बोली।

उसकी आज्ञा का पालन करने को मेरा मन नहीं हुआ। वह बड़े लोग आज मुझे ज़रा भी नहीं सुहा रहे थे। हलके हरे रंग की दूब धरती में से फूट निकली थी। सेब की डालियों पर नई कलियाँ चटख रही थी। पेत्रोव्ना की झोपड़ी की छत पर हरी घास का सुन्दर चंदोवा तन गया था। चारों ओर पक्षियों का कलरव गूँज रहा था। हवा की भीनी मन्द सुगन्ध ने मेरे अन्दर अजीब मस्ती भर दी। उस खाई के किनारे-किनारे, जहाँ प्योत्र काका ने अपना गला काटा था, ओलों से कुचली हुई पीली घास दिख रही थी। और इस वातावरण में अप्रिय दृश्य उपस्थित कर रही थी। खाई में गड़े अधजले शहतीर वसन्त की मस्ती भरी बहार के बीच बेतुकापन ला रहे थे। वह पूरी खाई ही सारा मज़ा किरकिरा कर रही थी। मेरे जी में आया उखाड़ कर फेंक दूँ इन सूखी घासों को, साफ कर डालूँ शहतीरों और ईंटों के उस अम्बार को और आँगन के इस कोने को सुथरा करके अपने लिए गर्मी बिताने लायक एक गोशा बना लूँ, ऐसा गोशा जहाँ बड़े-बुजुर्गों की पहुँच न हो। मैं फौरन इस काम में पिल पड़ा। इसके फलस्वरूप घर की हाल की घटनाओं की टीसती याद से छुटकारा पाने में मुझे बड़ी मदद मिली। घाव पूरी तरह भरा तो नहीं, पर दर्द ज़रूर घट गया।

नानी और माँ अक्सर पूछ बैठती :

"तू हमेशा रोनी सूरत क्यों बनाये रहता है?" ऐसे सवालों से मेरा सन्तुलन बिगड़ जाता है। यह बात न थी कि मुझे उन लोगों से रंज था। दरअसल घर की सारी चीज़ें ही अब न जाने क्यों काटने को दौड़ती थी। अक्सर दोपहर के भोजन या चाय अथवा रात के भोजन के वक़्त वह हरी औरत भी शरीक हुआ करती थी। मेज पर वह यों बैठी रहती थी, जैसे पुरानी चाहरदीवारी में सड़ा खम्भा। उसकी आँखें मानो अदृश्य तागों से मुँह के ऊपर मिली हुई थी, जो अपने गड़े के अन्दर सहज स्वाभाविक्ता

के साथ हिलती-डोलती रहती थी। कोई चीज़ उनके पैनेपन से अलक्ष्य न थी। जब वह ईश्वर की चर्चा करती तो वे नैन आकाश की ओर उठ जाते और दुनिया की बातें करते समय धरती पर आ टिकते। उसकी भौंहे ऐसी दिखती थी, मानो पलकों के ऊपर चोकर चिपका दिया गया हो। उसके चौड़े, अधखुले दाँत मुँह में आनेवाली हर चीज़ को निःशब्द पीस डालते थे। वह अजीब ढँग से काँटा पकड़ती थी... मुट्ठी बँधी पर कानी उँगली ऊपर उठी हुई। खाते समय कनपटी की नसें हड्डी की गोलाईयों की तरह हिलती-डुलती थीं। कान डोलने लगते थे और मस्से पर उगे हरे बाल पीले झुर्रीदार गालों पर, जिनकी स्वच्छता घृणोत्पादक थी, झाड़ू लगाते जाते थे वह उसका बेटा दोनों इतने स्वच्छ और साफ रहा करते थे कि उनके नज़दीक जाने की मेरी हिम्मत ही नहीं होती थी। शुरू में बुढ़िया ने कई बार कोशिश की कि मैं उसके झुर्रीदार हाथों को चूमूँ, जिनसे साबुन और लोबान की गन्ध आया करती थी। पर मैं हमेशा मुँह फेरकर भाग खड़ा होता था।

वह बार-बार अपने बेटे से कहती थी :

"येव्गेनी! इस लड़के को अवश्य ही बहुत कुछ सिखाना होगा।"

ज़वाब में वह केवल अदब से सिर झुका लेता था। उसके माथे पर बल पड़ जाता था। उस हरी-हरी हस्ती के आगे सभी का यही हाल होता था।

बुढ़िया और उसके बेटे से मैं सम्पूर्ण हृदय से घृणा करता था, जिसके फलस्वरूप मेरी कई बार कसकर पिटाई होती थी। एक दिन ब्यालू के वक़्त वह आँख फाड़कर बोली :

"अलेक्सेई! इतने बड़े-बड़े कौर क्यों खाते हो? खाना भागा जा रहा है क्या? ज्यादा बड़े कौर नहीं खाने चाहिए। इससे दम घुटने का खतरा रहता है।"

मैंने मुँह का टुकड़ा बाहर निकाल लिया और उसे काँटे में गोदकर कहा :

"बहुत मन ललचा रहा है, तो लो, तुम्हीं खा जाओ!"

माँ ने झट मुझे मेज से उठा दिया और अपमानित कर कोठे पर भेज दिया।

थोड़ी देर में नानी ऊपर पहुँची। हँसी के मारे उसका बुरा हाल था। हाथ से मुँह दबाकर बोली :

"अहह, अलेक्सेई, नटखट कहीं का! शैतान! भगवान सदा तेरी रक्षा करें।"

उसका हाथ से मुँह ढाँपना मुझे अच्छा नहीं लगा। मैं भागकर छत के ऊपर चढ़ गया और बड़ी देर तक चिमनी की आड़ में छिपकर बैठा रहा। मेरा जी मचल रहा था। यही तबीयत हो रही थी कि कोई शरारत करूँ, किसी को कुछ न समझूँ, जो मन में आये कहूँ। इस प्रवृत्ति को दबाना मुश्किल था, लेकिन उसे दबाना ही पड़ा। एक दिन अपने भावी सौतेले बाप और सौतेली दादी की कुर्सी में मैंने गोंद लगा दी। दोनों बैठे तो कपड़े कुर्सी से चिपक गये। उठने पर बड़ी दुर्गति हुई। यह चित्र अति हास्यपूर्ण था। नाना ने मुझे खूब पीटा। पिटाई के बाद माँ कमरे में आयी, मुझे अपने

पास खींच लिया और जाँघों में दबाकर बोली :

"तू इतना शरारती क्यों हो गया है? यह भी कभी सोचता है कि इन शरारतों के कारण मुझे कितना कष्ट होता होगा?"

उसकी आँखों में आँसू भर आये। मेरा माथा उसने अपने गाल से सटा लिया। कितना अच्छा होता, अगर वह मुझे दो-चार तमाचे जड़ देती। मैंने कसम खाकर कहा : "बस, तुम रोना बन्द कर दो, अब मैं मक्सिमोव को कभी नहीं सताऊँगा।"

वह धीरे से बोली :

"हाँ, हाँ, तुझे शरारत नहीं करनी चाहिए। हम लोगों की जल्द ही शादी हो जायेगी। उसके बाद हम मास्को चले जायेंगे और जब वहाँ से लौटेंगे, तो तू हमारे साथ रहने लगेगा। येव्गेनी वासील्येविच बहुत समझदार है और स्वभाव का भी बहुत अच्छा है। तू उसे अवश्य चाहने लगेगा। तब स्कूल में तेरा नाम लिखा देंगे और इसके बाद तू भी येव्गेनी वासील्येविच की तरह पढ़-लिख कर डाक्टर या और जो चाहेगा बन जायेगा। पढ़ा-लिखा आदमी क्या नहीं कर सकता? समझा न? अब जा, जाकर खेल..."

"इसके बाद" और "जब-तब" का यह सिलसिला मुझे लम्बी सीढ़ी जैसा मालूम पड़ा, जिससे लुढ़कता-पुढ़कता मैं माँ से दूर, बहुत दूर, किसी अंधकार और एकाकीपन के गढ़े में जा गिरा। जिस भविष्य का उसने चित्रण किया था, उसमें मुझे तनिक भी सुख या आकर्षण नहीं नज़र आया। मेरे जी में आया कि माँ से कहूँ :

"तुम शादी मत करो। मैं कमाऊँगा, तुम खाना।"

लेकिन मैंने कहा नहीं। माँ को सुखी बनाने की कल्पना मेरे मस्तिष्क में सदा घूमा करती थी, पर उसके सामने उसे व्यक्त करने का मुझे कभी साहस नहीं हुआ।

बगीचेवाला मेरा काम तेज़ी से चल निकला। गढ़े के किनारे के झाड़-झँखाड़ को मैंने साफ कर डाला और ईंटें लगाकर किनारों को बराबर कर दिया। कुछ और ईंटें लेकर मैंने एक चौड़ा चबूतरा तैयार किया, ऐसा कि आदमी आराम से लेट सके। ईंटों के बीच की सेंधों में मिट्टी के पलस्तर से रंगीन काँच और रकाबियों के टूटे टुकड़े जड़ दिये। धूप में वे गिरजाघर की प्रतिमाओं की तरह दमकने लगे।

नाना एक दिन मेरा काम देखने आये तो बोले :

"शाबाश! खूब अक़्ल लगायी है। लेकिन घासों की जड़ें तूने बाकी छोड़ दी हैं, जिनसे फिर झाड़-झँखाड़ निकल आयेंगे। कुदाल ले आ, तो मैं इन्हें अभी साफ कर दूँ।"

मैं कुदाल ले आया। हथेली पर थूकने के बाद उन्होंने ज़ोर से कुदाल भाँजना शुरू किया। उनकी हुम-हुम के साथ कुदाल मिट्टी को खोदने लगी। वह बोले :

"इन जड़ों को फेंक दे। मैं तेरे लिए यहाँ सूरजमुखी और हालीहक के पौधे लगा दूँगा, फिर देखना कितनी बहार आती है इस जगह..."

पर न जाने क्यों वह यक़ायक़ चुप हो गये और कुदाल थामकर खड़े हो गये। मैंने देखा उनकी छोटी-छोटी गोल, कुत्ते की आँखों जैसी समझदार आँखों में आँसू छलक पड़े।

"क्या बात है?" मैंने पूछा।

उन्होंने अपने कन्धे हिलाये, हाथ से चेहरे को पोंछा और मेरी ओर देखकर बोले :

"पसीने-पसीने हो गया हूँ। देख तो कितने कीड़े हैं यहाँ।"

यह कहकर वह फिर खोदने लगे। सहसा रुककर बोले :

"बेकार मेहनत की है तूने। बिल्कुल बेकार। यह मकान तो मैं जल्द ही बेच दूँगा। शायद इसी पतझड़ में। तेरी माँ के दहेज के लिए रुपयों का इंतजाम करना ज़रूरी है। कम से कम वह बेचारी तो आराम पाये..."

ज़ोरों से कुदाल फेंककर वह गुसलखाने के पीछे चले गये, जहाँ उन्होंने खाद डालकर कुछ क्यारियाँ तैयार की थीं। कुदाल उठाकर मैंने खुद खोदना शुरू किया, लेकिन एक अटपटा हाथ पड़ गया और मेरे पैर की उँगली कट गयी।

इस घाव के कारण मैं माँ का विवाह नहीं देख सका। केवल फाटक पर खड़े होकर उसे गिरजाघर की ओर प्रस्थान करते देखा। मक्सिमोव उसका हाथ पकड़े हुए थे। माँ का सिर नीचे झुका था और सड़क की ईंटों के बीच उगी नर्म घास पर वह यों चल रही थी, मानो लोहे के काँटे हों।

शादी में धूमधाम नहीं हुई। गिरजाघर से लौटने पर चाय की जो दावत हुई, वह भी फीकी और निरानन्द। दावत समाप्त होते ही माँ सोने के कमरे में जाकर यात्रा के लिए बक्स ठीक करने लगी। मेरे सौतेले बाप मेरी बगल में बैठते हुए बोले :

"मैंने तुम्हें रँगों का एक बक्स देने का वादा किया था, पर यहाँ अच्छे रंग मिल नहीं रहे हैं और अपनावाला मैं तुम्हें दे नहीं सकता। मास्को पहुँचकर वहीं से तुम्हें रंग भेज दूँगा..."

"रंगों का बक्स लेकर क्या करूँगा मैं?"

"क्यों, चित्रकारी का शौक नहीं है तुम्हें?"

"मुझे चित्रकारी आती ही नहीं।"

"अच्छा तो कोई और चीज़ भेज दूँगा।"

इतने में माँ आ गयी। वह बोली :

"हम लोग जल्दी ही लौट आयेंगे। तेरे पिताजी का इम्तहान हुआ कि पढ़ाई पूरी हो जायेगी और हम लोग लौट आयेंगे..."

माँ ने मुझसे इस तरह बात की, मानो मैं बड़ा हो चुका हूँ। यह मुझे अच्छा लगा, लेकिन एक बात मेरी समझ में नहीं आयी-दाढ़ी-मूँछ वाला आदमी अभी तक पढ़ाई करता है? मैंने पूछा :

"आप क्या पढ़ते हैं?"

"भूमि नापना..."

भूमि नापने की पढ़ाई क्या होती है, आलस्यवश मैंने पूछा ही नहीं। घर में दिल को कुरेदनेवाला अजीब सन्नाटा छाया हुआ था... सब ओर साँय-साँय। इच्छा होने लगी कि जल्दी रात हो जाये। नाना अलावघर से पीठ सटाये और आँखें सिकोड़े हुए खिड़की के बाहर देख रहे थे। हरी औरत सामान रखने में माँ की मदद कर रही थी और लगातार भुनभुनाती और निःश्वास छोड़ती जा रही थी। नानी दोपहर को ही शराब पीकर नशे में चूर हो गयी थी। अतः उसे कोठे पर बन्द कर दिया गया था, जिससे वह बाहर के लोगों के सामने कोई मूर्खता न कर बैठे।

अगले दिन तड़के ही माँ विदा हो गयी। चलते वक़्त उसने मुझे गोद में उठाकर गले से चिपटा लिया। उसने मेरी आँखों में आँखें डालकर ऐसी दृष्टि से देखा, जो मेरे लिए अनोखी थी। मुझे चूमते हुए वह बोली :

"अच्छा, तो विदा..."

नाना ने कहा :

"इससे कह दो, मेरा कहना माना करे।" वह, खिन्न मन, आकाश की ओर देख रहे थे, जिसमें लाली बाकी थी।

माँ ने मेरे ऊपर सलीब का निशान बनाते हुए कहा :

"नाना की बात माना कर।" मैं उम्मीद कर रहा था कि माँ कुछ और कहेगी, किन्तु नाना ने बीच में ही टोक दिया और यह मुझे बुरा लगा।

वे लोग घोड़ागाड़ी में सवार हो गये। चढ़ते समय माँ का घाघरा किसी चीज़ में फँस गया और वह बड़ी देर तक परेशान होकर उसे छुड़ाती रही।

नाना ने मुझसे कहा :

"ताक क्या रहा है? देख, कहाँ कपड़ा फँसा है।" लेकिन मैं अथाह दुःख में डूबा जा रहा था और इसलिए मैंने कपड़ा छुड़ाने में कोई मदद नहीं की।

मक्सिमोव ने अपनी लम्बी टाँगें जिनके ऊपर गहरे नीले रंग का चुस्त पतलून चढ़ा था, सावधानी से ऊपर खींच ली। नाना ने उनके हाथ में कई बण्डल थमा दिये, जिन्हें उन्होंने घुटनों पर रखकर ठुड्डी से दबा लिया और घबराकर अपने पीले चेहरे को सिकोड़ते हुए बोले :

"अब बस भी कीजिए..."

हरी औरत और उसका बड़ा बेटा, जो फौज़ में अफ़सर था, दूसरी घोड़ागाड़ी में सवार हुए। वह चित्रवत सीट पर सीधी तनकर बैठी थी, अफसर तलवार की मूठ से अपनी दाढ़ी खुजलाता हुआ जम्हाई ले रहा था।

नाना ने उससे पूछा :

"यहाँ से सीधे मोर्चे पर जायेंगे?"

"जी हाँ, बिल्कुल!"

"बहुत ठीक। इन तुर्कों को मजा चखाना ही होगा..." और वे लोग चल दिये। माँ कई बार पीछे मुड़कर रुमाल हिलाती रही। नानी घर की दीवार के साथ सटकर रो रही थी और रुमाल हिला रही थी। नाना खड़े-खड़े आँसुओं को रोकने की कोशिश कर रहे थे। वह अस्फुट स्वर में बड़बड़ाये :

"इस डाल में मेवे नहीं लग सकते..."

मैं चौतरे पर बैठा घोड़ागाड़ी को देख रहा था। वह सड़क पर धचके खाती बड़ी जा रही थी और एक मोड़ पर पहुँच कर आँखों से ओझल हो गयी। मेरा जी डूब गया। लगा कि कलेजा मुँह को आ रहा है।

भोर की बेला अभी नहीं बीती थी। सड़कें निर्जन और घरों की खिड़कियाँ बन्द थी। एक अनजानी अतल शुन्यता मुझे निगले जा रही थी। दूर, कहीं दूर किसी गडेरिये की बंसी की ऊबभरी तान कानों में पड़ रही थी।

नाना ने मेरे कन्धों को थामकर कहा :

"चल अन्दर, नाश्ता कर ले। लगता है तेरी किस्मत में हमीं लोग के साथ ईंट पर दियासलाई की तरह ज़िन्दगी रगड़ना लिखा है।"

मैं और वह बिना बोले-चाले, सुबह से रात का अँधेरा छा जाने तक बगीचे में काम कर रहे थे। ज़मीन खोदना, रसभरी की लताएँ बाँधना, सेब के तनों की काई खुरचना और पत्तियों पर रेंगनेवाले कीड़ों को मारना-नाना दिन भर यही करते रहे। मैं अपने कोने को सुधारने में लगा था। नाना ने अधजले शहतीर का सिरा काटकर साफ कर दिया और ज़मीन में लकड़ी के खम्भे गाड़ दिये, उनमें मैंने अपने पालतू पक्षियों के पिंजरें टाँग दिये। बेंच को धूप और शीत से बचाने के लिए मैंने उसके ऊपर सूखी घास की छाजन तैयार कर डाली। मेरा कोना बड़ा रमणीय हो गया।

नाना ने मुझसे कहा :

"यह बहुत अच्छी बात है कि अपने लिए जो ठीक समझते हो, उसी के मुताबिक काम करना सीख रहे हो।"

ज़िन्दगी के बारे में उनकी अनुभवी टीकाओं की मैं बड़ी कद्र किया करता था। प्रायः वह चबूतरे पर बैठ जाते थे, जिसपर मैंने तिनकों की चादर बिछा दी थी, और धीरे-धीरे, हर शब्द को तौलते हुए अपनी बात कहना शुरू करते थे। वह कहते :

"तू अपनी माँ का अंग है, जिसे चीरकर अलग कर दिया गया है। उसके अब नई सन्तानें होंगी, जिन्हें वह तुमसे अधिक प्यार करेगी। और नानी का हाल तो तू देख ही रहा है-उसे नशे की लत लग गयी है।"

बीच-बीच में वह देर तक मौन साध लेते, मानो कान लगाकर कुछ सुन रहे हों। और फिर एक-एक कर उनके वज़नदार शब्द कर्ण कुहरों में प्रवेश करने लगते। वह कहते जाते :

"एक बार पहले भी उसने पीना शुरू किया था। उस वक़्त मिख़ाईल के नाम

फौज में भर्ती का हुक़्मनामा आया था। उसने मुझसे यह सुनकर उसे रंगरूटी से मुक्ति का प्रमाण पत्र खरीदवा दिया था। इस मूर्खता के कारण उसका जीवन ही चौपट हो गया, क्योंकि अगर वह फौज में चला गया जाता, तो शायद आज आदमी होता। यही तो किस्मत का खेल है... मेरी तो अब चला-चली की बेला है... आज मरे, कल दूसरा दिन। ऐसा हुआ, तो तू अकेला पड़ जायेगा... चाहे जिये या मरे। इसलिए कहता हूँ कि अपना काम आप ही करना सीख। कभी दूसरों का मुँह मत जोह। आदमी को चाहिए कि सदा शान्त और सुस्थिर, पर अपने मार्ग पर अडिग रहे। बात सबकी सुन, पर कर वह, जो अपने को जँचे..."

बँदा-बाँदी के दिनों को छोड़ मैंने पूरी गर्मियाँ बाग में बितायीं। नानी ने मुझे बिस्तर के लिए नमदे का एक टुकड़ा दे दिया था। उसी को बिछाकर गर्मी की रातों में भी मैं वहीं सोता था। अक़्सर वह खुद रात को वहीं सोने चली आती। वह अपने साथ पुआल की ढेरी लेती आती और उसे मेरे बिछावन की बगल में बिछाकर पड़ रहती और लगती कहानियाँ सुनाने। कहानी का तार कभी-कभी हठात् टूट जाता। वह सहसा चिल्ला उठती :

"देख! वह तारा टूटा। यह कोई पवित्र आत्मा है, जो धरती पर बास करने आ रही है। आज कहीं न कहीं किसी लायक आदमी का जन्म हुआ होगा।"

फिर मुझे दिखाते हुए कहती :

"वह देख-नया सितारा! आकाश में कैसे जगमग कर रहा है? ओह, आकाश, प्यारे आकाश, तू ईश्वर का रत्न-जड़ित परिधान है..."

नाना आकर कहते :

"मौत को बुला रहे हो तुम दोनों! खुले में सोते हो! गठिया धर लेगा किसी दिन या चोर सोते में आकर दोनों का गला रेत देंगे..."

दिन बीत जाता और सूर्य धीरे-धीरे अस्ताचलगामी होता। विदाई में वह आकाश में आग बिखेर देता, जिसके बुझते हुए लाल शोले बाग़ की मख़मली हरी चादर पर रतनार राख फैला देते। इसके बाद यक़ायक़ अंधकार का पर्दा फैल जाता, जो गोधूलि बेला की उष्णता समेट कर सारी जगती पर आच्छादित हो जाता। घाम में पगी पत्तियाँ डालों पर झुक जाती और दूब सर नवा लेती। हर चीज़ में अनोखी मधुरिमा भर जाती और मीठी सुवास उड़ने लगती, जैसे संगीत की मन्द स्वर-लहरी। दूर खेतों में लगे फौजी खेमों से आने वाली संगीत की तानें सुरभिपूर्ण समीर में भर जाती। रात अपने साथ माँ के प्यार जैसा भावों का सशक्त और ताजा आवेश लाती। उसकी स्तब्धता माँ की मीठी पुचकार की तरह मोरपंख के चँवर से हृदय की सारी व्यथा-दिन भरी की जमी सारी कड़वाहट और मैल-को झाड़कर अलग कर देती। मन अनिर्वचनीय शान्ति और सन्तोष से भर उठता। शून्य के नीचे लेटे हुए तारों को एक-एक कर निकलता देखने में अनूठा रस प्राप्त होता था। प्रत्येक सितारा उदित होकर अथाह गगन में

गहराई की नई माप का संकेत करता था। ये गहराईयाँ हल्के अदृश्य हाथों से हमें अपनी गोद में उठा लेती और तब यह कहना कठिन हो जाता कि धरती सिकुड़कर हमारे आकार में आ गयी या हमीं विस्तृत और विकीर्ण होकर जगती के साथ एकाकार हो गये। रात की अँधियारी घनी, गहरी, शून्य और नीरव होती जाती। लेकिन सभी ओर संवेदनशील अदृश्य तार खिंचे होते, जो हर ध्वनि-नीड़ में किसी पंछी का गान, पास की झाड़ी में साही के काँटों की सरसरहाट, दूर से आने वाली किसी मनुष्य की आवाज़ को झँकृत कर देते। दिन की ध्वनियों की तुलना में वे अनोखी विशिष्टता प्राप्त कर लेते-रजनी की सूक्ष्मग्राही निस्तब्धता मानो प्यार से उनमें एक नवीनता ला देती।

हवा में उड़ती बीन की मधुर संगीत-लहरी, किसी स्त्री की मधुर हँसी, सड़क के पत्थर पर तलवार की झन-झन, कुत्ते की हूक-ये ध्वनियाँ अस्त होते दिवस के झड़ते पत्तों के समान होती।

कभी गली या मैदान में मधुशाला से लौटनेवालों का कोलाहल या गली की ईंटों पर भागते पैरों की आहट प्रतिध्वनित हो उठती। पर ये साधारण ध्वनियाँ थी, जिनपर कान देने की भी ज़रूरत न थी।

नानी सिर के नीचे हाथ का तकिया लगाये घण्टों लेटी रहती और हल्के आवेशपूर्ण स्वर में कोई कहानी सुनाया करती। मैं सुन रहा हूँ या नहीं, इसकी भी परवाह उसे न रहती-इतनी तल्लीन हो जाती वह उस वातावरण में। सदा वह कोई ऐसी ही कहानी छेड़ती, जो रात की उन सौन्दर्यपूर्ण निस्तब्धता में निखार ला देती।

सोता मैं नानी की लयबद्ध स्वर-लहरी की थपकियों में और उठता चेहरे पर सूर्य की प्रभा और कान में पक्षियों का कलरव गान लेकर। धूप की गर्मी पाकर प्रभाती समीर की गति मधुर-मन्द हो जाती। सेब-वृक्षों के पत्ते ओस की बूँदें झाड़कर जाग उठते। हरी घास कुहासे की चादर के नीचे अनोखी आग से चमकने लगती। बाल-सूर्य की किरणों का आकाश में वितान तन जाता। वे उसके बनफ़सई रंग को शुभ्र नीलिमा में परिवर्तित कर देती। ऊपर दूर, कहीं दूर, अदृष्ट लवा पंछी रस की फुहार बरसाने लगता। नवोदित दिवस की हर ध्वनि और हर रँगीनी मेरी आत्मा को सराबोर कर देती। हृदय उल्लास से भर जाता। मन होता कि उठूँ और बैठकर समस्त सृष्टि के साथ एकाकार हो जाऊँ।

मेरे सम्पूर्ण जीवन का वह सबसे शान्त, सुस्थिर एवं चिन्तनशील समय था। उस साल की ग्रीष्म ऋतु में मेरे अन्दर अपनी शक्ति के प्रति नवीन आस्था जागी। मैं लोगों से कतराने लगा। ओव्यस्यान्निकोव घराने के बच्चों का कोलाहल अब मुझे आकर्षित नहीं करता था। और ममेरे भाई जब मुझसे मिलने आते, तो प्रसन्न होने के बदले यही चिन्ता लगी रहती कि कहीं मेरे बाग की-मेरे अपने हाथों निर्मित कोई चीज़ नष्ट न हो जाये।

अब नाना के उपदेशों में भी मुझे दिलचस्पी नहीं मालूम होती थी। उनकी बातें अधिकाधिक नीरस होती जाती थी। सदा भुनभुनाते और निःश्वास छोड़ते वह खुद भी नीरस हो गये थे। आजकल नानी के साथ उनकी अक्सर लड़ाई हो जाया करती थी। ऐसे अवसरों पर वह नानी को घर से निकाल देते। नानी याकोव मामा या मिख़ाईल मामा के घर चली जाती। कभी-कभी वह लगातार कई दिनों तक घर न लौटती। तब नाना को अपने हाथों चूल्हा फूँकना पड़ता। खाना पकाते वक़्त वह उँगलियाँ जला लेते, रकाबियाँ फोड़ डालते, निरन्तर चीखते-चिल्लाते, सबको कोसते जाते और स्पष्टतः अधिकाधिक कंजूस होते जा रहे थे।

बाग़ में वह कभी-कभी वह मेरे कोने में आ जाते और आराम से घास पर बैठ जाते-बिल्कुल मौन। बड़ी देर तक मुझे ताक़ते, फिर यक़ायक़ चुप्पी तोड़ते हुए पूछ बैठते :

"कुछ बोलता क्यों नहीं तू?"

"क्या बोलूँ?"

वह उपदेश शुरू कर देते :

"हम साधारण लोग हैं, रईसजादे नहीं। हमें कोई सिखाने नहीं आयेगा-जो सीखना है खुद ही। क़िताबें और स्कूल सब दूसरों के लिए बने हैं-हमारे-तुम्हारे जैसों के लिए नहीं। हमें तो आप ही अपनी ज़रूरत पूरी करनी पड़ती है..."

बोलते-बोलते वह सोच में डूब जाते-मौन और निश्चल। उस समय उनकी ओर देखते हुए डर लगता था।

उसी साल पतझड़ के महीनों में उन्होंने मकान बेच दिया। बिक्री के एक रोज़ पहले नाश्ते के वक़्त उन्होंने उदास किन्तु दृढ़ स्वर में कहा :

"वर्वारा की माँ! बहुत दिनों तक तुम्हें खिलाया, अब यह गाड़ी नहीं चलने की। अब अपना इंतजाम खुद देख लो।"

इस घोषणा का नानी पर रत्ती भर असर नहीं पड़ा, मानो वह बहुत दिनों से इसी का इंतजार कर रही थी। उसने धीरे-से अपनी नासदानी निकाली और नाक में एक चुटकी नास डालती हुई बोली :

"करना है, तो करना ही पड़ेगा। क्या रखा है इन बातों में।"

नाना ने एक बन्द कूचे के एक पुराने मकान के सबसे निचले हिस्से में दो अंधियारी कोठरियाँ किराये पर ले ली। सामान ढोते वक़्त नानी ने सूखी खाल का एक पुराना जूता निकाला, जिसमें लम्बा फीता लगा हुआ था, और उसे अलावघर में खोंस दिया। फिर ज़मीन पर बैठकर बौने भूत को पुकारने लगी :

"बौने भूत! यह रही तुम्हारे लिए गाड़ी, हमारे साथ नये घर में नये सुख-सौभाग्य के लिए चले चलो..."

नाना उस वक़्त आँगन में थे। उन्होंने खिड़की से झाँककर देखा। बोले :

"अच्छा! बौना भूत भी साथ चलेगा? काफिर कहीं की। तू मेरी भी हँसी करायेगी।"

नानी ने गम्भीर चेतावनी देते हुए कहा :

"बाबू! यह क्या बक रहे हो? ऐसी बातें नहीं कहते; बुरा नतीजा होगा।" लेकिन नाना ने उसे ज़ोर से डाँटा और बौने भूत को साथ ले चलने से मना कर दिया।

तीन दिनों तक घर के सामानों की बिक्री चलती रही। इस्तेमाली सामानों को खरीदने वाले तातारों का घर में जमघट लगा हुआ था। हर सामान पर मोलभाव-बिगड़ना-मनाना, कोसना-चिल्लाना। नानी खिड़की में बैठकर सारा दृश्य देखती रहती-कभी हँसने लगती और कभी आँखों में आँसू छलाछला आते। धीमे स्वर में वह कहती :

"ले जाओ, भाई। ले जाओ सबकुछ-तोड़ डालो सब कुछ!"

मुझे भी बाग़ का अपना वह कोना छोड़ने के ख्याल से रुलाई आ रही थी।

हम लोगों को ले जाने के लिए दो गाड़ियाँ आयी। एक में सामान के ढेर के ऊपर मैं बैठ गया। गाड़ी सारे सामान को भरकर ऐसे हिल-डुल रही थी, जैसे भूचाल आ रहा हो। मुझे लगता था अब गिरा तब गिरा।

अगले दो साल-माँ की मृत्यु पर्यन्त ऐसे ही भूचाल की स्थिति में ज़िन्दगी बीती।

सदा यही शंका बनी रही-अब गिरा तब गिरा।

नये घर में जाने के कुछ ही दिन बाद माँ हम लोगों से मुलाक़ात करने आयी। वह दुबली हो गयी थी-चेहरा पीला और बड़ी-बड़ी आँखें दीप्त और विस्मय-विस्फारित! वह हरेक चीज़ का यों घूर रही थी, मानो पहले-पहल अपने माँ-बाप को या मुझे देख रही हो। वह ताक़ती ही रही, बोली नहीं। उधर मेरे सौतेले पिता हल्के-हल्के सीटी बजाते, खाँसते, पीठ के पीछे उँगलियाँ बजाते हुए कमरे में चहल-कदमी कर रहे थे।

मेरे गालों को अपनी गर्म हथेलियों में लेकर माँ बोली :

"हे भगवान, कितना बड़ा हो गया है यह!"

वह ढीला-ढाला बदनुमा कत्थई फ्राक पहने थी। फ्राक पेट के पास ऊँचा उठा हुआ था।

सौतेले पिताजी ने मेरी ओर हाथ बढ़ते हुए कहा :

"नमस्ते दोस्त! खैरियत से तो हो न?"

नाक सिकोड़कर हवा को सूँघते हुए वह बोले :

"बड़ी सील है यहाँ!"

दोनों थके-थके और अस्त-व्यस्त दीख रहे थे, मानो भागकर आ रहे हों और विश्राम करने को उत्सुक हों।

चाय की मेज पर नीरसता और उदासी छायी रही। नाना मौन और गुमसुम खिड़की के शीशे पर वर्षा की बूँदों का दौड़ना देख रहे थे। उन्होंने पूछा :

"तो आग में सब कुछ स्वाहा हो गया?"

"सब कुछ," मेरे सौतेले पिता ने स्वर में दृढ़ता भरकर कहा।

"हम लोग खुद ही मुश्किल से बचे..."

"हुँ! आग तो आग ही ठहरी!"

माँ ने नानी के कान में कुछ कहा, जिसे सुनकर उसने ऐसे आँख सिकोड़ी मानो अचानक चौंधिया गयी हो। वातावरण और भी नीरस और उदासी भरा हो गया।

नाना से न रहा गया। उन्होंने ऊँचे पर शान्त और चुभते स्वर में कह ही दिया :

"येव्गेनी वासील्येविच! मैंने उड़ती खबर में सुना है कि आग-वाग कुछ नहीं लगी थी। तुमने जुए में अपना सब कुछ गँवा दिया..."

कमरे में मौत का सन्नाटा छा गया। केवल खिड़की पर बूँदों की टप-टप और समोवार में भाप की सूँ-सूँ सुनाई पड़ रही थी।

आखिर माँ ने मौन भंग किया :

"बाबूजी..."

नाना बीच ही में तड़प उठे :

"बाबूजी! बाबूजी क्या? अभी आगे जो दुर्गति होगी, वह बाकी है। मैंने उसी वक़्त कहा था-बीस का तीस से मेल नहीं बैठ सकता। शादी अपने ही दर्जे के लोगों में करनी चाहिए। अब मजा मिल गया। 'भलामानस है! रईस है!' अब बन चुकी है रईस की बहूँ पा लिया मजा? क्यों बिटिया।"

इसके बाद रसोई में हंगामा मच गया। सभी ज़ोर-ज़ोर से बोलने लगे। मेरे सौतेले पिताजी की आवाज़ सबसे ऊपर थी। मैं ड्योढ़ी में जाकर लकड़ियों के ढेर पर बैठ गया। मूक और स्तब्ध। यह क्या मेरी वही माँ है? नहीं, नहीं-यह तो कोई और है। बिल्कुल अज़नबी। कमरे में यह फर्क इतना साफ दिखाई दे रहा था, मगर ड्योढ़ी के अँधेरे में उसका पुराना चित्र मानस पटल पर बिल्कुल सजीव हो गया।

मुझे याद नहीं है कि कब और कैसे हम लोग सोर्मोवो में जा बसे। हमारा नया मकान कुँदों का बना था, दीवारें नंगी थी, कागजी छींट के बिना। बल्लों के बीच की दरारें पटुवा ठूँस कर बन्द की गयीं थीं। अनगिनत तिलचटों ने उसके अन्दर अपना घर बना रखा था। गली की दो कमरों में माँ और सौतेले पिताजी रहा करते थे। नानी तथा मैं रसोईघर में थे, जिसकी एक खिड़की छत पर खुलती थी। छत के उस पार कारखाने की काली चिमनियाँ नज़र आती थी। उनके मुँह से चक्कर काटता घना धुआँ निकला करता था और जाड़े की हवा से समूची बस्ती के ऊपर फैल जाता था। हमारे ठण्डे कमरों में हमेशा धुएँ की बड़ी तेज़ गन्ध फैली रहती थी। तड़के कारखाने का भोंपू भेड़ियों की तरह चीख उठता था :

"हू-ऊ-ऊ!!!"

खिड़की के पास बेंच रखकर मैं उसपर चढ़ जाता और सबसे ऊपर के शीशे से कारखाने को देखा करता। उसका रोशनी से जगमग फाटक बूढ़े भुक्कड़ों के पोपले

मुँह की तरह अनगिनत आदमियों की चीटों जैसी कतार को निगल जाता। दोपहर को दूसरा भोंपू बजता और फाटक के काले होंठ खुल जाते। उसके अन्दर के एक गहरे छेद से कारखाना फिर आदमियों की भीड़ को उगल देता-अच्छी तरह चूस और चबा लेने के बाद। बाढ़ के जल की तरह गली में एक काली पाँत फैल जाती और फिर मानो श्वेत हवा के झोंकों से घरों में समा जाती। नील गगन यहाँ शायद ही कभी दिखाई देता। बस्ती की छतों को कालिख से लदी बर्फ़ के टीलों के ऊपर दूसरा ही चंदोवा तना होता-भूरा और सपाट-जिसके भद्देपन को देखकर आँखें अपने आप ही बन्द हो जाती और कल्पना कुंठित हो जाती।

शाम के वक़्त कारखाने के ऊपर उदासी भरी लाली फैल जाती। चिमनियों के सिर उससे प्रकाशित हो जाते। ऐसा लगने लगता कि उसकी उत्पत्ति धरती में नहीं हुई है, बल्कि वे भयानक आकाश की सूढ़ें हैं, जो लटक कर आग पीती हैं और छककर आग पीने के बाद ज़ोर-ज़ोर से डकार लेती हैं। रोज़ एक ही दृश्य को देखते-देखते मेरा हृदय गहरी वितृष्णा से भर गया। मन वातावरण से विद्रोह कर उठा। घर का सभी काम-काज नानी करती थी। खाना पकाती, फ़र्श धोती, लकड़ी काटती, पानी भरती-यही उसका जीवन-कर्म हो गया था। शाम होते-होते वह थकावट से चूर हो जाती और निःश्वास छोड़ती तथा काँखती हुई बिस्तर पर चली जाती। कभी-कभी दिन का खाना तैयार करने के बाद रूईदार जैकेट पहन और घाघरा समेट वह शहर रवाना हो जाती थी। कहती :

"देख आती हूँ, बुड्ढे का क्या हाल है..."

"मुझे भी साथ ले चलो।"

"देखता नहीं है हवा कैसी बर्फ़ीली है। तू ठण्ड से ठिठुर जायेगा।" शहर वहाँ से लगभग सात किलोमीटर दूर था और बीच का रास्ता बर्फ़ से ढंका हुआ। नानी पैदल निकल जाती। माँ का चेहरा जर्द और शरीर गर्भावस्था के कारण सूजा हुआ था। वह किनारों पर झालर लगी हुई एक भूरी शाल में, जो अपने आखिरी दिनों को पहुँच चुकी थी, लिपटी सिकुड़ी बैठी रहती। मैं उस शाल से हृदय से घृणा करता था, क्योंकि उसमें उसकी लम्बी-चौड़ी सुन्दर देह अजीब और भद्दी मालूम होती थी। झालर के फटे सिरों को मैं और फाड़ दिया करता था। यह मकान, यह कारखाना, पूरी बस्ती, यह सभी कुछ मुझे फूटी आँखों नहीं सुहाता था। पैरों में नमदे का फटा जूता पहने माँ घर में घूमा करती थी। वह बराबर खाँसती रहती थी। खाँसने से उसका निकला हुआ पेट हिलने लगता था। उसकी भूरी-नीली आँखों से मूक विक्षोभ की विचित्र ज्वाला निकला करती थी। प्रायः वे यों ही निर्जीव-सी नंगी दीवारों को ऐसे एकटक ताक़ती रहती थी, मानो वहीं चिपक गयी हों। कभी-कभी वह लगातार घण्टों गली की ओर अपनी शून्य दृष्टि गड़ाये रहती। गली भी अजीब थी-गंदे आदमियों के जबड़े की तरह, जिसके कुछ दाँत उम्र से काले और भद्दे हो गये हैं, कुछ झड़ चुके हैं

और उनके स्थान पर नये दाँत बैठा दिये गये हैं, जो जबड़े के लिहाज से बहुत बड़े हैं।

मैंने पूछा :

"हम लोग यहाँ क्यों रहते हैं?"

"ओफ! मत पूछ ये बातें," उसने गहरी व्यथा के साथ कहा। आजकल वह मुझसे कुछ कम बोलती थी-केवल ज़रूरी होने पर। जैसे :

"वह उठा ला, इसे ले जा, ज़रा यह ले आ," आदि...

वह मुझे बहुत ही कम बाहर निकलने देती, क्योंकि मैं जब भी खेलने जाता, अपने साथियों से पीट-पिटा कर लौटता था। ये लड़ाई-झगड़े मेरे लिए मनोरंजन के एकमात्र साधन थे। अपने उग्र स्वभाव के कारण मैं पूरे जोश से मुक्केबाजी के दंगलों में पिल पड़ता था। घर आने पर माँ मुझे कोड़े से पीटती थी। पर इससे चिढ़कर अगली बार मैं और ज़ोर-शोर से लड़ता था। माँ भी दण्ड की मात्रा बढ़ा देती थी। एक दिन मैंने उससे कहा :

"मारोगी, तो दाँत काट लूँगा और भागकर बर्फ़ में जान दे दूँगा।"

वह हक्की-बक्की रह गयी और मुझे ठेलकर लगी कमरे में चक्कर लगाने। आवेश से हाँफती हुई बोली :

"दुष्ट! जानवर!"

स्नेह नामक सजीव और मनमोहक इन्द्रधनुष मेरे जीवनाकाश से अस्त हो गया था। उसकी जगह छा गयी अलक्ष्य रोष की नीली लपटें और असन्तोष की ज्वाला। हर चीज़ के प्रति मेरे मन में द्वेष की भावना जाग उठी। उदास और निर्जीव वातावरण में भारी असन्तोष और एकाकीपन की अनुभूति होती थी।

सौतेले पिताजी का व्यवहार मेरे प्रति सख्त और माँ के प्रति रूखा था। वह सदा मुँह से सीटी बजाते, खाँसते और खाने के बाद शीशे के सामने खड़े होकर अपने टेढ़े-मेढ़े दाँतों को तिनके से खोदते रहते थे। माँ से झगड़ने की उनकी आदत-सी हो गयी थी और इन झगड़ों की संख्या दिनोंदिन बढ़ती जा रही थी। माँ के साथ वह रुखाई से पेश आते थे, जिससे मुझे बहुत क्षोभ होता था। झगड़ा होता तो वह रसोईघर का दरवाज़ा बन्द कर लेते। स्पष्टतः वह नहीं चाहते थे कि मैं उनकी बातें सुनूँ। पर मैं कान लगाकर भीतर से आती उनकी गर्जन-तर्ज़न की आवाज़ सुना करता था।

एक दिन बड़े ज़ोर से पैर पटककर और चिल्लाकर उन्होंने कहा :

"कुतिया कहीं की! तेरा पेट फूलने के कारण मैं किसी को घर में नहीं बुला सकता।"

विस्मय और विक्षोभ के मारे मैं अलावघरवाले चबूतरे पर उछल पड़ा। सिर इतने ज़ोर से छत से टकराया कि दाँत से जीभ कट गयी।

शनिवार को दर्जनों मज़दूर हमारे घर कारखाने के कूपन बेचने आया करते थे,

जो उन्हें कारखाने की दुकान से खाने-पीने का सामान खरीदने के लिए मिलते थे। कारखाना तनख्वाह की जगह पर कूपन ही दिया करता था। सौतेले पिताजी उन्हें आधे दाम पर खरीद लेते थे। वह रसोईघर में खूब गम्भीर चेहरा बनाकर मेज पर बैठ जाते। मज़दूरों को वहीं बुलाया जाता। कूपन को हाथ में लेकर वह उलट-पुलट कर देखते और माथे पर बल डालकर कहते :

"डेढ़ रूबल मिलेगा।"

"क्या कह रहे हैं आप, येव्गेनी वासिल्येविच? भगवान के लिए..." मज़दूर आजिजी से कहता।

"कह तो दिया। डेढ़ रूबल।"

गन्दे, घिनौने जीवन का यह क्रम जल्द ही खत्म हो गया। माँ के बच्चा होने के कुछ ही दिन पहले मुझे नाना के घर बुला लिया गया। वह इन दिनों कुनाविनो बस्ती में पेस्चानाया सड़क के एक दो मंजिले मकान में रह रहे थे। सड़क नपोल्नाया गिरजाघर के क़ब्रिस्तान की ओर जाती थी। उन्हें एक छोटा-सा कमरा मिला हुआ था, जिसमें एक बड़ा-सा रूसी अलावघर था। कमरे की दो खिड़कियाँ आँगन की ओर खुलती थीं।

मुझे देखकर वह किलकारी मारकर हँसे और बोले :

"आ गया तू! यही तो बात है। कहावत है माँ सबसे सगी होती है, लेकिन तेरे काम आ रहा है, तेरा बुड्ढा बेवकूफ नाना ही... अरे, तुम लोग..."

नये घर से अच्छी तरह परिचित भी न होने पाया था कि माँ और नानी नवजात शिशु को लिए हुए वहीं आ गयीं। हुआ यह कि मेरे सौतेले पिता मज़दूरों को ठगने के अपराध में कारखाने से निकाल दिये गये, लेकिन वह कहीं गये और उन्हें फौरन ही रेलवे स्टेशन पर खजाँची की जगह मिल गयी।

बहुत-सा समय यों ही गुजर गया और मुझे फिर माँ के पास भेज दिया गया। वे लोग पत्थर के एक मकान के सबसे निचले हिस्से में रह रहे थे। माँ ने फौरन मेरा नाम स्कूल में लिखा दिया, लेकिन स्कूल से मुझे पहले ही दिन से चिढ़ हो गयी।

मैं निराली सूरत बनाये स्कूल पहुँचा। पैरों में माँ के जूते, नानी का ब्लाउज काटकर बनाया गया कोट, पीली कमीज और ढीला-ढाला पतलून। लड़कों ने देखते ही हँसना शुरू कर दिया। पीली कमीज के कारण मेरा नाम 'ईंट का एक्का' रख दिया गया। लड़कों से तो मैंने शीघ्र ही निपट लिया, लेकिन पादरी साहब और मास्टर भी मुझसे चिढ़े रहते थे।

मास्टर साहब गंजे थे। उनका चेहरा पीला था और उन्हें नकसीर की बीमारी थी। नाक में रूई के गाले खोंसे हुए वह क्लास में आते। डेस्क पर बैठकर नकियाती आवाज़ में वह सवाल पूछना शुरू करते। फिर किसी शब्द के बीच में ही रुककर नाक से रूई निकालकर देखते और लगते सिर हिलाने। चेहरा उनका चपटा, पीतल

के रंग का, चिड़चिड़ा था। उसपर झुर्रियाँ पड़ी थीं और उनके अन्दर हरी काई-सी जमी मालूम पड़ती थी। सर्वथा अनावश्यक और बेजान आँखें, इस चेहरे को खास तौर पर बहुत भोंडा बना देती थीं। वे मुझपर ही जमी रहती थीं, जिससे हमेशा यह इच्छा होती थी कि गालों को हथेली से साफ करूँ।

शुरू में कुछ दिन मैं आगे की बेंच पर बैठा-ठीक मास्टर साहब की नाक के नीचे। पर उनकी वह दीठ असह्य हो गयी। ऐसा लगता कि वह सदा मुझपर आँखें गड़ाये रहते हैं। अपनी नकियाती आवाज़ में वह अक्सर यही कहते रहते :

"पेस्कोव ! अपनी कमीज़ बदल!.. पेस्कोव! पाँव रगड़ना बन्द कर!.. पेस्कोव! फिर तूने अपने जूतों से फ़र्श मैला कर दिया!.."

मैं भी खूब शरारत करके इसका बदला लेता था। एक दिन मैं आधा तरबूज ले आया, जो बर्फ़ में जम गया था। उसका गूदा निकालकर मैंने अँधेरी ड्योढ़ी की ओर के दरवाज़े के ऊपर एक छोटी-सी घिरनी में बाँध दिया। दरवाज़ा खुलने से तरबूज ऊपर उठ जाता था, पर मास्टर साहब के दरवाज़ा बन्द करते ही वह टोपी की तरह उनके गंजे सिर पर लटक आता था। इसके बाद तो दरबान मुझे मास्टर साहब की चिट्ठी के साथ घर लिवा ले गया। वहाँ मेरी खूब मरम्मत हुई।

एक दिन मैंने उनके डेस्क की दराज में सुँघनी छिड़क दी। मास्टर साहब को ताबड़तोड़ छीकें आने लगीं और वह क्लास छोड़कर भागे। घर जाकर एवज में उन्होंने अपने दामाद को भेज दिया, जो फौज़ी अफ़सर था। उसने हम लोगों से कई बार "ईश्वर जार को चिरायु करे," और "हम स्वतंत्र, हम स्वतंत्र" गवाया। कोई लड़का बेसुरा गाने लगता, तो वह उसके सिर पर ऐसे हास्यास्पद और ज़ोर से आवाज़ पैदा करनेवाले खास ढँग से रूलर मारता, जिससे चोट लगती।

बड़े-बड़े तथा मुलायम बालों वाला एक नौज़वान और खूबसूरत पादरी हम लोगों को धर्म की शिक्षा दिया करता था। वह भी मुझसे चिढ़ता था, क्योंकि मेरे पास 'बाइबिल की पवित्र क़िताब' नहीं थी। दूसरे, मैं उसकी बोली की नकल किया करता था।

क्लास में आते ही वह सवाल करता :

"पेशकोव! बोल, क़िताब लाया है या नहीं? हाँ, क़िताब?"

"नहीं। नहीं लाया। हाँ।"

"क्या-हाँ?"

"नहीं।"

"तो उठ यहाँ से। जा घर। हाँ, घर। मैं तुझे पढ़ाने का इरादा नहीं रखता। हाँ। इरादा नहीं रखता!"

क्लास से निकाले जाने में मुझे ज़रा भी आपत्ति नहीं होती। मैं उठकर चल देता और स्कूल खत्म होने तक बस्ती की गन्दी गलियों में घूमकर चारों ओर के कोलाहलपूर्ण जीवन का निरीक्षण किया करता।

पादरी का चेहरा पानीदार था। मुँह की काट ईसामसीह जैसी और आँखें स्नेहपूर्ण, नारी जैसी थीं। उसके हाथ छोटे-छोटे थे, जो हर चीज़ को, चाहे वह क़िताब हो, या क़लम, या रूलर, बड़े स्नेह से पकड़ते। ऐसा लगता था कि वह सभी वस्तुओं को सजीव समझकर प्यार करता है और छूते वक़्त डरता रहता है कि कहीं टूट न जायें। पर लड़कों के प्रति उसकी वैसी ममता नहीं थी। फिर भी लड़के उसे चाहते थे।

क्लास में मुझे अच्छे नम्बर मिलते थे। इसके बावजूद मुझे सूचना मिली कि आचरण ठीक न होने के कारण स्कूल से निकाल दिया जाऊँगा। इस खबर से मैं घबरा उठा। स्पष्ट था कि स्कूल से निकाले जाने का घर पर भी बुरा परिणाम भुगतना पड़ता, क्योंकि माँ का स्वभाव दिनोंदिन बहुत ही चिड़चिड़ा होता जा रहा था और वह मुझे बहुत पीटने लगी थी।

लेकिन बीच ही में एक ऐसी घटना घटी कि मैं इस आफत से बच गया। मेरे स्कूल में एक दिन अचानक बिशप रिव्रसांफ* का आगमन हुआ। वह जादूगर से लगते थे और जहाँ तक मुझे याद है कुबड़े थे।

ज़मीन तक लोटनेवाला काला चोगा और सिर पर बालटी जैसी टोपी पहने इस नाटे-से आदमी के क्लास में आते ही न जाने कहाँ से प्रफुल्लता का एक अनोखा वातावरण छा गया। वह डेस्क पर बैठ गये और अपनी लम्बी-चौड़ी आस्तीनों से दोनों हाथ बाहर निकालकर बोले :

"हाँ तो बच्चो! आओ हम लोग कुछ बातचीत करें।"

सभी डेस्क के पास जा रहे थे। मेरा नाम अन्त में आया। मुझसे उन्होंने पूछा :

"क्या उम्र है तुम्हारी?.. ऐं! इतनी उम्र में ही इतने लम्बे-चौड़े हो गये? खूब बरसात का पानी सोखा होगा!"

लम्बे, नुकीले नाखूनों वाला दुबला-पतला एक हाथ डेस्क पर रखकर और दूसरे हाथ से अपनी छोटी-सी दाढ़ी पकड़कर उन्होंने स्नेहपूर्ण आँखों से मेरी ओर देखा और बोले :

"अच्छा, धार्मिक इतिहास की कोई कहानी याद हो, तो सुनाओ।"

जब मैंने कहा कि मेरे पास क़िताब नहीं है, इसलिए धार्मिक इतिहास मैं नहीं याद कर सका, तो अपनी पादरियों वाली ऊँची टोपी सीधी करते हुए बोले :

"यह तो ठीक नहीं। ये पाठ तो तुम्हें ज़रूर याद करने चाहिए। अच्छा, क़िताब से बाहर की कोई चीज़ याद है-कहीं किसी से सुनी हुई कहानी ही सही? 'भजन संहिता' का नाम सुना है? बहुत अच्छा! और बाइबिल की प्रार्थनाएँ याद हैं? लो,

---

* बिशत रिव्रसांफ ने 'प्राचीन विश्व के धर्म' शीर्षक से तीन खण्डीय एक निबन्ध लिखा था। इसके अलावा उनके कई लेख निकले थे। इनमें 'नारी और विवाह' शीर्षक लेख पढ़कर युवावस्था में मैं बहुत प्रभावित हुआ था। लगता है मुझे उसका शीर्षक सही तौर पर याद नहीं है। वह आठवें दशक के एक धार्मिक पत्र में प्रकाशित हुआ था।-ले.

यह भी तुम्हें मालूम है? और सन्तों की जीवनी जानते हो? एँ, कविता में सन्तों की जीवनी सीखी है? शाबास, तुम तो बड़े विद्वान हो जी।"

इतने में हमारे क्लास का पादरी आ गया-दौड़ता, हाँफता हुआ। बिशप से आर्शीवाद पाने के बाद वह उनसे मेरे बारे में कहने लगा। बिशप ने हाथ के इशारे से उसे रोककर कहा :

"ज़रा रुकिए..." और फिर मेरी ओर मुड़कर बोले :

"अच्छा, भक्तराज अलेक्सेई की कहानी ज़रा सुनाओ तो..."

मैंने सुनाना शुरू किया। बीच की एक लाइन याद न रहने के कारण मैं रुक गया। बिशप ने कहा :

"शाबाश बेटे! कितनी सुन्दर कहानी है-क्यों? अच्छा अब राजा दाऊद के बारे में कुछ जानते हो?... ठीक! बहुत ठीक! सुना जाओ तो!"

स्पष्ट था कि उन्हें ये पद्य अत्यन्त प्रिय हैं और मेरे पद्यपाठ से उन्हें हार्दिक रस प्राप्त हो रहा है। बड़ी देर तक बिना टोके वह सुनते रहे। फिर बोले :

"तुमने अक्षर-अभ्यास भजन संहिता से किया था? कौन पढ़ाता था तुम्हें?... तुम्हारे अच्छे नाना!.. क्या कहा... तुम्हारे बुरे नाना? सच? तुम बहुत शरारत करते हो क्या?"

मैं शर्म से गड़ गया; लेकिन अपना अपराध स्वीकार कर लिया। मास्टर साहब और पादरी साहब ने अपनी लम्बी गवाहियों द्वारा उसकी पुष्टि की। बिशप गर्दन झुकाये सुनते रहे। अन्त में निःश्वास छोड़कर बोले :

"सुना न तुमने क्या कह रहे हैं ये लोग? अच्छा, यहाँ आओ।"

अपना एक हाथ, जिससे चन्दन की मन्द सुगन्ध आ रही थी, उन्होंने मेरे मस्तक पर रखकर पूछा :

"तुम क्यों इतनी शरारत करते हो?"

"स्कूल में मेरा मन नहीं लगता," मैंने जवाब दिया।

"मन नहीं लगता? यह क्या कहते हो, बेटा? मन नहीं लगने से तुम पढ़ ही नहीं सकते थे, पर तुम्हारे नम्बरों से तो यही मालूम होता है कि बात ऐसी नहीं है। बात ज़रूर कुछ और ही है।"

उन्होंने भीतर की जेब से एक छोटी-सी क़िताब निकाली और उसपर लिखा :

"पेशकोव, अलेक्सेई। बेटा, तुम्हें शरारत नहीं करनी चाहिए। कभी-कभार कुछ शरारत कर बैठो, तो कोई बात नहीं, पर ज्यादा शरारत अच्छी नहीं। लोग उसे बर्दाश्त नहीं करेंगे। समझे न? क्यों बच्चों मैं ठीक कह रहा हूँ न?"

पूरा क्लास प्रफुल्ल स्वर में बोल उठा :

"आप ठीक कहते हैं!"

बिशप ने लड़कों से पूछा :

"लेकिन तुम लोगों का अपना क्या हाल है? तुम लोग खुद तो बहुत कम बदमाशी करते होगे?"

"जी नहीं। बहुत करते हैं! बहुत!" लड़कों ने क्लास को हँसी से गुँजाते हुए जवाब दिया।

बिशप ने मुझे अपने पास खींच लिया और कुर्सी की पीठ से सटकर विस्मयसूचक स्वर में कहा :

"एक बात जानते हो? जब मैं तुम्हारी उम्र का था, तो मैं भी बड़ा शरारती था। बचपन में सभी न जाने क्यों ऐसे होते हैं?"

सारा क्लास फिर हँस पड़ा। यहाँ तक कि मास्टर और पादरी भी हँसने लगे।

सारा क्लास लड़कों की हँसी से गूँज उठा। बिशप उनसे सवाल पूछते जाते थे और जवाबों को पहेली बनाकर लड़कों को उलझाते जाते थे। पूरे क्लास में हँसी-खुशी की लहर-सी फैल गयी। अन्त में बिशप उठ खड़े हुए। चलने लगे तो बोले :

"नटखट नन्हों की इस टोली को छोड़ने को मन नहीं हो रहा है। पर अब चलने का वक़्त हो गया है।"

हाथ उठाकर और लम्बी-चौड़ी आस्तीन खिसकाकर उन्होंने क्सास के ऊपर सलीब का निशान बनाते हुए आशीर्वाद दिया :

"भगवान तुम्हें चिरायु और यशस्वी करे! विदा!"

बच्चों ने चिल्लाकर जवाब दिया :

"विदा, धर्म पिता! फिर जल्दी ही आइयेगा।"

अपनी ऊँची टोपी हिलाते हुए उन्होंने कहा :

"ज़रूर। मैं फिर आऊँगा और तुम लोगों के लिए क़िताबें भी लाऊँगा।"

फिर मास्टर साहब की ओर मुड़कर बोले :

"अब आज लड़कों को छुट्टी दे दीजिये।"

ड्योढ़ी में मुझे रोककर वह धीमे स्वर में बोले :

"वादा करो कि अब इतनी शरारत नहीं करोगे... ठीक?" फिर निःश्वास छोड़ते हुए कहा, "तुम्हारे बदमाशी करने का मूल कारण क्या है, यह मुझसे छिपा नहीं है। अच्छा, विदा!"

बिशप के इन शब्दों ने मुझे अभिभूत कर दिया। मेरे हृदय में एक विचित्र भावना का उद्रेक हुआ। फलस्वरूप, जब मास्टर साहब ने मुझे क्लास के बाद रोककर यह समझाना शुरू किया कि मुझे आगे से बहुत ही नेक और भला बनकर रहना चाहिए, तो मैंने उनकी बात ध्यान लगाकर सुनी।

पादरी साहब ने अपना कोट पहनते हुए स्नेहभरे स्वर में कहा :

"अब से तू मेरे क्लास में पढ़ने आना! पर बिल्कुल खामोश होकर बैठना। बिल्कुल शान्त।"

स्कूल का वातावरण तो अनुकूल हो गया। पर शीघ्र ही घर पर एक काण्ड हो गया। मैंने माँ का एक रूबल चुरा लिया। यह अपराध मैंने बिना सोचे-समझे किया था।

बात यह हुई कि एक दिन शाम को मुझे छोटे बच्चे के पास छोड़कर माँ कहीं चली गयी थीं। बैठे-बैठे जी नहीं लगा, तो मैंने सौतेले पिताजी की एक क़िताब उठा ली। उसका नाम था 'डाक्टर की डायरी' लेखक बड़े द्यूमाँ क़िताब के पन्नों में एक रूबल का और दस रूबल का नोट था। क़िताब मेरी समझ के बाहर थी। पर उसे बन्द करते समय यक़ायक़ मुझे ख़याल आया कि एक रूबल से मैं न केवल 'बाइबिल' खरीद सकता हूँ, बल्कि 'राबिंसन क्रूसो' भी आ जायेगी। कुछ ही दिन पहले मैंने 'राबिंसन क्रूसो' के बारे में सुना था। एक दिन बाहर बहुत ज़ोर का पाला पड़ रहा था, इसलिए कुछ मिनट के विराम के वक़्त मैं अपने साथियों को परियों की कहानियाँ सुना रहा था। यक़ायक़ एक लड़के ने तिरस्कारपूर्वक कहा :

"परियों की कहानी में क्या रखा है? राबिंसन क्रूसो की कहानी सच्ची कहानी है।"

कुछ और लड़कों ने 'राबिंसन क्रूसो' पढ़ी थी और उन्होंने भी उसकी तारीफ़ की। नानी की कहानियों का अपमान मुझे बहुत अखरा और मैंने सोच लिया कि 'राबिंसन क्रूसो' पढ़कर मैं भी उन लोगों से कहूँगा कि "उसमें क्या रखा है!"

अगले दिन स्कूल पहुँचा, तो मेरे हाथ में थे बाइबिल की पुस्तक और एंडर्सन की परियों की कहानियों के फटी जिल्दों वाले दो भाग। इनके अलावा डेढ़ सेर सफेद पावरोटी तथा आधा सेर सासेज था। व्लादीमिर गिरजाघर के कोनेवाली क़िताबों की छोटी-सी अँधेरी दुकान में मुझे 'राबिंसन क्रूसो' की एक प्रति भी मिली थी-पतली और पीली ज़िल्द की। मुखपृष्ठ पर दाढ़ीवाले एक आदमी की तसवीर थी, जो सिर पर रोयेंदार टोपी और किसी जानवर की खाल पहने हुए था। मुझे उसमें दिलचस्पी नहीं मालूम हुई। हाँ, 'परियों की कहानियों' की फटी ज़िल्दें भी इतनी आकर्षक थीं कि मैंने उन्हीं को खरीद लिया।

पाठों के बीच की छुट्टी हुई, तो दोस्तों के साथ हमने रोटी और सासेज खायी और 'परियों की कहानियों' से 'बुलबुल' नामक कथा पढ़ने लगे। पहले ही पृष्ठ से इस कहानी ने हम सबों का मन मोह लिया।

उसका पहला वाक्य मुझे आज भी याद है-"चीन देश में सभी चीनी रहते हैं। यहाँ तक कि वहाँ का बादशाह भी चीनी ही होता है..." मुझे याद है कि इस वाक्य ने अपनी सरलता, उसमें निहित सुन्दर संगीत, उसके निराले सौंदर्य ने मुझे आनन्द विभोर कर दिया था।

स्कूल में 'बुलबुल' कहानी खत्म नहीं हो सकी। घर लौटा, तो माँ चपटी कड़ाही का हत्था थामे अण्डे भून रही थी। भूनते ही भूनते उसने खिंची आवाज़ में पूछा :

"तूने एक रूबल निकाला है?"

"हाँ। उसी से यह क़िताबें लाया हूँ..."

उसने मेरी पीठ पर कड़ाही का हत्था दे मारा और परियों की कहानियों वाली पुस्तकें छीन लीं। वे क़िताबें मुझे फिर कभी नहीं मिलीं और यह पिटाई से भी अधिक दुःख की बात थी।

मैं कई दिनों तक स्कूल नहीं गया। इस बीच सौतेले पिताजी ने घर की बात अपने सहकर्मियों से कह दी और उन्होंने उसे अपने लड़कों से जा कही। नतीज़ा यह हुआ कि बात स्कूल तक पहुँच गयी और जब मैं स्कूल गया, तो लड़कों ने मुझे नये उपनाम 'चोर' से बुलाना शुरू किया। तीन अक्षरों का शब्द-उसका अर्थ साफ था, पर उसमें मेरे प्रति अन्याय निहित था। मैंने रूबल लेने की बात नहीं छिपायी थी। पर जब यह बात औरों को समझाने लगा, तो किसी ने भी मेरा विश्वास नहीं किया। अतः घर आकर मैंने माँ से साफ शब्दों में कह दिया कि "मैं अब स्कूल नहीं जाऊँगा।"

माँ को फिर बच्चा होनेवाला था। पीले चेहरे, बहकी-बहकी और यातनापूर्ण आँखों वाली वह खिड़की पर बैठी साशा को दूध पिला रही थी और आँखें फाड़कर तथा मछली की तरह मुँह खोलकर मेरी ओर देख रही थी।

उसने धीमे स्वर में कहा :

"तू झूठ बोल रहा है। तेरे रूबल लेने की बात लड़कों को कैसे मालूम हो सकती है?"

"जाकर तुम्हीं पूछ लो।"

"तो तूने ही कही होगी। बोल, तूने ही कही है न? झूठ बोलने से काम नहीं चलेगा, क्योंकि मैं कल खुद स्कूल जाकर पता लगाऊँगी।"

मैंने उस लड़के का नाम बता दिया। माँ का चेहरा द्रवित हो गया और आँसुओं की धार बहने लगी।

मैं रसोईघर में जाकर अलावघर के पीछे लकड़ी की पेटियों के अपने बिस्तर पर पड़ रहा। पास के कमरे से माँ की सिसकियों की आवाज़ आ रही थी। वह कह रही थी :

"हे भगवान! हे भगवान!"

जले हुए और चरबी-सने चिथड़ों की गन्ध असह्य हो गयी और मैं आँगन में चला गया। माँ ने पुकारा :

"कहाँ जा रहा है? यहाँ आ। मेरे नज़दीक।"

हम लोग फ़र्श पर बैठ गये। साशा माँ की गोद में बैठा उसकी कमीज के बटनों से खेल रहा था और तोतली आवाज़ में कह रहा था : "बबन!" जिसका मतलब था-बटन।

मैं माँ से सटा हुआ बैठा था। उसने मुझे बाँहों में भरते हुए कहा :

"हम लोग बड़े गरीब लोग हैं। एक-एक कोपेक दाँत से पकड़ना पड़ता है, तब गृहस्थी चलती है..."

अपनी बात अधूरी ही छोड़कर उसने अपने गरम हाथों से मुझे अपने और निकट खींच लिया।

फिर वह अचानक चिल्ला उठी :

"कमीना कहीं का! कमीना!" यही शब्द थे, जिन्हें एक बार पहले भी मैं उसके मुँह से सुन चुका था। साशा ने नकल की :

"तमीना कईं का!"

साशा विचित्र लड़का था। दुबले-पतले शरीर के ऊपर बहुत बड़ा-सा मस्तक और नीली स्वच्छ आँखें, जिनमें सदा मुस्कान भरी रहा करती थी। ऐसा लगता था कि वे किसी चीज़ को खोज रही हैं। बहुत जल्द ही बोलने लगा था। वह कभी न रोता; सदा मगन रहता। कमज़ोर इतना था कि बड़ी मुश्किल से बकैयाँ खींचता था। मुझे वह बहुत चाहता था। देखते ही मेरी गोद में चढ़ जाता और अपनी कोमल उँगलियों से मेरे कान खींचने लगता। इन उँगलियों से न जाने क्यों बनफशे की भीनी सुगन्ध आया करती थी। उसकी अचानक मौत हो गयी-न बीमारी, न कुछ। सवेरे सदा की तरह हँस-खेल रहा था, पर शाम को, जब गिरजाघर की घण्टियाँ गोधूली की प्रार्थना का आह्वान कर रही थीं, खत्म। उसकी लाश मेज पर पड़ी थी। यह घटना दूसरे बच्चे निकोलाई के जन्म के कुछ ही दिनों बाद हुई।

माँ ने अपने वादे के अनुसार स्कूल में मेरी सफाई पेश कर दी। और मैं फिर नियमपूर्वक स्कूल जाने लगा था, लेकिन इसके बाद ही मुझे फिर नाना के घर चले जाना पड़ा। बात यों हुई :

एक दिन चाय के वक़्त मैं आँगन की ओर से रसोईघर में आ रहा था, तो कान में माँ के फफक-फफककर रोने की आवाज़ आयी। वह कह रही थी :

"येव्गेनी! येव्गेनी! तुम्हारे पैरों पड़ती हूँ, उसके पास मत जाओ..." "बक-बक बन्द कर," सौतेले पिताजी की आवाज़ आयी।

"नहीं। मैं जानती हूँ तुम रोज़ उसके पास जाते हो।"

"जाता हूँ, तो तुम्हारा क्या!" जवाब मिला।

दोनों कुछ देर के लिए चुप हो गये और तब मेरी माँ ने खाँसते हुए कहा :

"कैसे कमीने हो तुम..."

जवाब में पीटने की आवाज़ आयी। मैं कमरे में दौड़ा। माँ घुटनों के बल ज़मीन पर बैठी थी-कुर्सी से पीठ और कुहनी को टिकाये तथा वक्ष ऊपर को उठाये। मस्तक पीछे लटका हुआ था, कण्ठ से खरखराती-सी आवाज़ निकल रही थी और आँखों में अस्वाभाविक चमक थी। वह सामने खड़ा था-बढ़िया सूट पहने, छैला, चिकना बना हुआ। उसकी लम्बी टाँग माँ की छाती पर थी। मैंने हड्डी की मूठ वाली रोटी काटने

की छुरी उठा ली (माँ के पास पिताजी की यही एकमात्र यादगार बच रही थी) और पूरी ताक़त लगाकर उसे सौतेले पिताजी की बगल में चला दिया।

सौभाग्यवश माँ ने उसे एक ओर को ठेल दिया और छुरी कोट को फाड़ती हुई केवल खाल में लगी। वह "बाप रे!" कहकर बगल थामे हुए बाहर भागा। माँ बड़े ज़ोरों से चीखी और मुझे ज़मीन पर गिरा दिया। सौतेले पिताजी ने आँगन से लौटकर मुझे छुड़ाया।

यह सब होने के बाद भी शाम को वह बाहर चला ही गया। उसके जाने के बाद माँ मेरे पास आयी। मैं अलावघर के पीछे लेटा हुआ था। उसने मुझे गले लगाकर चूम लिया।

"माफ कर दे, बेटा, मुझे। मैंने तेरे साथ अन्याय किया। लेकिन तुझे भी क्या सूझी थी? भला कोई ऐसे छुरी चलाता है?"

मैंने ठण्डे दिल से, बातों को खूब तौलकर कहा कि उसे मार डालूँगा और अपने भी प्राण दे दूँगा। और इसमें तनिक भी सन्देह नहीं कि मैं ऐसा कर गुजरता। कम से कम कोशिश तो ज़रूर करता। आज भी वह घृणित दृश्य मेरे स्मृति-पटल पर नाच रहा है-उसकी वह नीचतापूर्ण लम्बी टाँगें, जिसपर चढ़े पतलून की काली चौड़ी धारी चमक रही है, देख रहा हूँ कि कैसे वह ऊपर उठती है और पैर स्त्री के सीने पर वार करता है!

बर्बर रूसी जीवन के इन गर्हित दृश्यों को याद कर मैं प्रायः सोच में पड़ जाता हूँ-क्या उनके बारे में लिखना उचित है? लेकिन विचारने पर यही दृढ़ विश्वास होता है कि उनका परदा चाक़ करना ज़रूरी है, क्योंकि उनके अन्दर ऐसी कुत्सित और कठोर वास्तविक़्ता निहित है, जिसके अवशेष आज भी हमारे बीच विद्यमान हैं। वह ऐसा सत्य है, जिसे अपने निष्ठुर और वीभत्स जीवन से हमें जड़-मूल से उखाड़ फेंकना होगा-जीवन ही क्या, मानव-आत्मा और मस्तिष्क से भी पूर्ण रूप से निकाल देना आवश्यक है।

ऐसे वीभत्स दृश्यों के बारे में लिखने का एक अन्य अच्छा कारण भी है। यद्यपि वे गर्हित हैं, वीभत्स हैं और साधारणतः स्वस्थ और सुन्दर आत्माओं को बुरी तरह झकझोर देनेवाले हैं, किन्तु फिर भी रूसी व्यक्ति मन से इतना सबल और पुष्ट है कि इन वीभत्सताओं को निर्मूल करने की क्षमता रखता है, वह उन्हें निर्मूल करके ही रहेगा।

हमारे जीवन की यही विलक्षणता नहीं है कि वह बर्बरता और पाशविक़्ता की मोटी तह से आच्छादित है, बल्कि यह कि इस तह के नीचे से आलोकमय, सबल, सृजनात्मक और भलाई की शक्तियाँ विजयी होकर बाहर आ रही हैं और यह दृढ़ आशा पैदा कर रही हैं कि वह दिन दूर नहीं, जब हमारे देश की जनता के जीवन में सौंदर्य एवं आलोकपूर्ण मानवता का सूर्य उगेगा और अवश्य उगेगा।

13

मैं फिर नाना के घर आ गया।

"फिर आ पहुँचा बदमाश," कहते हुए नाना ने मेरी अभ्यर्थना की। हाथ मेज पर पटकते हुए बोले : "रे, इस बार तो मैं तुझे खिलाने-पिलाने से रहा। नानी खिलाये तो खिलाये।"

नानी ने कहा :

"हाँ, हाँ। मैं खिलाऊँगी। बहुत बड़ी बात है जैसे यह भी!"

"ठीक है, खिलाओ," नाना ने ज़ोर से कहा। पर दूसरे ही क्षण शान्त स्वर में बोले :

"हम लोगों में अलगाव हो गया है। तेरी नानी की गृहस्थी अलग और मेरी अलग।"

नानी खिड़की पर बैठी लैस बुन रही थी। पीतल की कीलों के साथ फ्रेमवाली गद्दी वसन्त ऋतु की धूप में इस तरह चमक रही थी, जैसे सुनहले रंग की साही। सलाइयाँ मधुर आवाज़ पैदा कर रही थीं। खुद नानी भी काँसे की मूर्ति जैसी दिख रही थी। वह तनिक भी नहीं बदली थी, लेकिन नाना का शरीर गिर गया था। चेहरे पर झुर्रियों की संख्या बढ़ गयी थी; सुनहरे बाल मटैले हो गये थे और शान्त गर्वीली गतिविधियों की जगह उनमें झल्लाहट और हड़बड़ी आ गयी थी और उनकी हरी आँखें हर चीज़ को शंकापूर्ण दृष्टि से देखती थीं। नानी हँसते-हँसते दोनों के बीच हुए जायदाद के बँटवारे का ब्योरा सुनाने लगी। सारे बर्तन-भाड़े और रक़ाबियाँ नानी को देकर वह बोले थे :

"लो, यह सब तुम्हारा है। अब कुछ मत माँगना मुझसे।"

इसके बाद उन्होंने उसके पुराने फ्राक और दूसरे सारे सामान ले लिये। उनमें लोमड़ी की खाल का एक लबादा भी था। इस सारे सामान को उन्होंने सात सौ रूबल में बेच दिया और यह रक़म अपने यहूदी धर्म-पुत्र को, जो फलों का व्यापार करता था, सूद पर लगाने के लिए दे दी। नाना बेतरह लोभी हो गये थे और लाज-लिहाज को तिलाँजलि दे बैठे थे। वह पुरानी जान-पहचान वाले अमीर सेठों या क़ारीगरों के पास जाया करते थे, जिनके साथ उन्होंने पहले नौकरी की थी। उनसे यह कहकर कि "बेटों ने मुझे बर्बाद कर दिया है," रुपये माँगते थे। पुराने ताल्लुक़ात का ख़याल कर वे लोग उन्हें बड़े-बड़े नोट देकर विदा करते थे। घर आकर वह स्कूली बच्चों की तरह इतराते हुए नानी को ये नोट दिखाकर कहते थे :

"देख रही है ससुरी? तुझे तो कोई इसका सौवाँ भाग भी नहीं देगा!"

अपने एक नये जान-पहचान के आदमी को नाना ने ये रुपये सूद पर दे दिये।

वह फ़र का व्यापार करता था। उसका सिर गंजा और कद लम्बा था और लोग उसे "ख़्लीस्त" (कोड़ाजी) कहा करते थे। उसकी एक बहन थी-गोलमटोल, लाल गाल और काली आँखों वाली। वह दुकान करती थी और ऐसी मोटी लसदार थी जैसे शीरा।

घर में सब कुछ बँटा हुआ था। एक दिन नानी अपनी कमाई से आटा-नमक लाती, दूसरे दिन नाना। जिस दिन नाना की बारी रहती, उस दिन भोजन निकृष्ट और स्वादहीन होता था। नानी अपनी बारी के दिन बढ़िया गोश्त लाती थी, पर नाना अक्सर फेफड़ा या अन्तड़ी उठा लाते। चाय और चीनी दोनों अपनी अलग-अलग रखते थे, पर चाय बनायी जाती थी एक ही बर्तन में। नाना कनौती खड़ी करके कहते :

"ज़रा रुको! देखूँ कितनी पत्ती डाली है तुमने?"

नानी की पत्तियों को हथेली पर रखकर वह गिनते। फिर कहते :

"तुम्हारी पत्तियाँ बारीक हैं। मेरी मोटी हैं, उनसे ज्यादा रंग निकलेगा, इसलिए तुम ज़्यादा पत्ती डालो।"

वह देखते थे कि नानी दोनों के प्यालों में बिल्कुल बराबर चाय डालती है या नहीं। जितनी प्यालियाँ नानी पीती, उतनी वह भी पीते।

आखिरी प्याली ढालने के पहले नानी पूछती :

"एक और पियोगे?"

चायदानी में झाँकने के बाद वह जवाब देते :

"एक और सही।"

यहाँ तक कि देव-प्रतिमाओं के दीये का तेल भी दोनों बारी-बारी से खरीदते थे-एक बार नानी तो दूसरी बार नाना। पचास वर्ष तक साथ-साथ रह चुकने के बाद भी यह हाल था उनका!

नाना की इन हरकतों से मुझे हँसी भी आती थी और घृणा भी मालूम होती थी। नानी को उनपर केवल हँसी आती। मुझसे कहती :

"छोड़ इन बातों को। उम्र होने से सठिया गये हैं। अस्सी साल के हुए भी तो। कहाँ तक बुद्धि सीधी रहे? करने दो जो चाहें-किसी का कुछ बिगड़ता तो है नहीं? हमारा-तुम्हारा क्या है-हम दोनों के लिए खाना जुटाने को मैं अभी काफी हूँ।"

अब मैं भी थोड़ा बहुत कमाने लगा। रविवार को तड़के बोरा लेकर शहर में निकल जाता और पुरानी हड्डियाँ, फटे कपड़े, लोहे की कीलें और रद्दी कागज जमा कर लाता। कबाड़ी की दुकान में चिथड़े, कागज या धातु की चीज़ें बीस कोपेक प्रति पूद* के भाव से और हड्डियाँ आठ या दस कोपेक प्रति पूद के भाव से बिक जाया करती थीं। बीच में भी स्कूल से छुट्टी पाने के बाद मैं कबाड़ जमा किया करता था, जिससे प्रति शनिवार तीस से पचास कोपेक तक की आमदनी हो जाती थी। कोई-कोई

* पूद-16 किलोग्राम।

हफ़्ता खूब अच्छा जाता, तो इससे भी ज्यादा मिल जाता था! नानी पैसे लेकर जल्दी से अपने घाघरे की जेब में डाल लेती और आँखें नीची कर मुझे शाबाशी देते हुए कहती :

"धन्यवाद, मेरे लाल, दुलारे! अब हम दोनों भूखों नहीं मर सकते। है न?"

एक दिन घर में घुसने पर देखा कि नानी मेरा दिया हुआ पँचटकिया कोपेक हाथ में लेकर उसे देख रही थी और आँसू बहा रही थी। उसकी माँसल नाक पर आँसू की एक बड़ी-सी बूँद साफ नज़र आ रही थी।

शीघ्र ही मुझे पता चला कि कबाड़ बेचने से ज्यादा मुनाफा लकड़ी के पल्लों की चोरी करने में है। ओका नदी के किनारे या पेस्की द्वीप पर, जहाँ पर वार्षिक मेले के समय धातु का सामान बेचनेवालों की दुकानें रहा करती थी, बहुत-से तख़्ते पड़े मिलते थे। मेला खत्म होने पर लकड़ी की इन कामचलाऊ दुकानों को तोड़कर उनका काठ पेस्की में जमा कर दिया जाता था। बाढ़ आने तक वह वहीं पड़ा रहता था। टुटपुँजिया शहरी लोग इन तख़्तों को खरीद लेते थे। एक साबुत पल्ले पर दस कोपेक तक मिल जाते थे। दिनभर में दो-तीन पल्ले चुरा लाना कठिन नहीं था। लेकिन यह काम कुहासे या बरसात के समय ही हो सकता था, जब कि रखवाले अपनी कोठरियों में दुबके रहते थे।

लड़कों की एक पूरी जमात थी, जो यही धंधा किया करती थी और उन सबों में आपस में खूब मेल रहा करता था। सान्का व्याखिर की उम्र दस साल की थी। उसकी माँ मोर्दवा जाति की भिखारिन थी। सान्का मिलनसार स्वभाव का, शान्त और नेक लड़का था। दूसरा था कोस्त्रोमा, दुबला-पतला और अस्त-व्यस्त बालों वाला यतीम और बेघरबार। उसकी आँखें काली और खूब बड़ी-बड़ी थी। बाद में तेरह साल की उम्र होने पर एक जोड़ा कबूतर चुराने के अपराध में उसे बच्चों की जेल में भेज दिया गया, जहाँ उसने फाँसी लगाकर आत्महत्या कर ली। उस मण्डली का एक और सदस्य था बारह-वर्षीय खाबी, जो तातार जाति का था। वह खासा पहलवान था, लेकिन स्वभाव का बेतरह सीधा और नेक। चौथा सदस्य था बैठी नाकवाला याज। उसकी उम्र थी आठ साल। उसका बाप क़ब्रिस्तान में रखवाला था और क़ब्र खोदने का काम करता था। वह मछली जैसा चुप्पा था। उसे "मिर्गी का रोग" था। हमारी मण्डली में ग्रीश्का चूर्का सबसे बड़ी उम्र का सदस्य था। उसकी माँ विधवा दर्जिन थी। ग्रीश्का चूर्का समझदार और बड़ा ही इंसाफी स्वभाव का था। वह मुक्केबाजी का उस्ताद था। हम सभी एक ही मुहल्ले में रहते थे।

हमारी बस्ती में चोरी को अपराध नहीं समझा जाता था। यह आदत-सी हो गयी थी। इतना ही नहीं, मुहल्ले में रहने वाले टुटपुँजिया व्यवसायियों का-जिन्हें मुश्किल से दो जून खाना जुटता था-वही जीविका एकमात्र साधन था। मेला तो केवल डेढ़ महीने लगता था। वह साल भर की उनकी रोज़ी के लिए काफ़ी न था। अतः बहुत-से

सदस्य भी नदी की बदौलत कुछ आमदनी हासिल किया करते थे। बाढ़ से निकलने वाले लकड़ी के कुन्दों या पल्लों को वे उठा ले जाते अथवा छोटे-छोटे बेड़े बनाकर इध ार-उधर से सामान ढो लाते। यही उनका धन्धा था। अधिकतर वे चोरी के सहारे ही जीते थे। उनका काम था लुक-छिपकर ओका या वोल्गा के किनारों पर घूमना और बज़रों या घाटों पर पड़ी चीज़ों को उड़ा लेना। इतवार के दिन कई लोग गर्व से अपनी साहसिकता की गाथाएँ सुनाया करते थे। बच्चे उन्हें चाव से सुनते और सबक़ हासिल करते थे।

वसन्त ऋतु आने पर मेले की तैयारी आरम्भ हो जाती थी। उस वक़्त बस्ती में शाम के वक़्त नशे में धुत्त मज़दूरों, कोचवानों और कारीगरों की खासी भीड़ रहती और बस्ती के बच्चे उनकी जेबें काटने का धन्धा आरम्भ कर देते। यह पेशा यहाँ बिल्कुल वैध समझा जाता था। लड़के बड़ी शान से बुजुर्गों के सामने ही ऐसा करते थे।

बढ़इयों के औजार, फिटरों के पेचकश और घोड़ागाड़ियों की धुरियों के काबले सफ़ाई से पार कर दिये जाते। पर हमारी मण्डली इन कामों से दूर रहती थी। चूर्का ने एक दिन कहा :

"मैं चोरी नहीं करूँगा-माँ मना करती है।"

और खाबी बोला :

"मुझे चोरी करने से डर लगता है।"

कोस्त्रोमा हमेशा चोरों से घृणा करता था। 'चोर' शब्द का वह खास अन्दाज से, हर अक्षर पर खूब ज़ोर देते हुए उच्चारण करता था। और जब दूसरे लड़कों को पियक्कड़ों को लूटते देखता, तो खदेड़ देता और अगर कोई पकड़ में आ जाता, तो उसकी खूब मरम्मत करता था। बड़ी-बड़ी आँखों वाला यह उदास लड़का हमेशा बड़ों की तरह अपने को दिखाने की कोशिश किया करता था। चलता तो गोदी-मज़दूरों की तरह दायें-बायें हिलता हुआ और बोलता तो आवाज़ रूखी और मोटी बनाकर। उसका तौर-तरीक़ा अस्वाभाविक, बुजुर्गों जैसा था। जहाँ तक व्याखिर का सवाल है, तो वह चोरी को पाप मानता था।

लेकिन पेस्की से तख्ते और पल्ले उड़ा लाने को हम लोग चोरी नहीं मानते थे। इस काम को करने में मण्डली का कोई सदस्य नहीं घबराता था। हम लोगों ने एक ऐसा तरीक़ा निकाला था, जिससे काम आसानी से बन जाता था। शाम को अँधेरा हो जाने पर या बुरे मौसमवाले दिनों में व्याखिर और याज खाड़ी की फिसलनी बर्फ़ को पार करते हुए पेस्की की ओर अग्रसर होते। वे इस तरह जाते कि रखवालों का ध्यान बरबस उनकी ओर आकर्षित हो जाता। तब तक बाकी चारों भिन्न-भिन्न दिशाओं से लुकते हुए लकड़ियों के ढेर की ओर बढ़ जाते। रखवालों का ध्यान याज और व्याखिर की ओर रहता था। तब तक हम लोग पूर्वनिश्चित स्थान पर पहुँचकर मनचाहे

तख़्तों को चुन लेते। थोड़ी देर बाद हमारे दोनों तेज़ दौड़नेवाले साथी रखवालों को चिढ़ाते हुए भाग खड़े होते और इधर हम लोग तख़्ते लेकर पार हो जाते। चारों एक-एक रस्सी रखते, जिसके सिरे में लोहे का अंकुश बँधा रहता। उसे तख्ते में अटकाकर हम उसे बर्फ़ के ऊपर खींच लेते। रखवाले शायद ही हमलोगों को देख पाते और देख भी पाते, तो हमें पकड़ना मुश्किल होता। तख़्तों को बेचकर उनकी आमदनी को हम लोग छः बराबर भागों में बाँट लेते। प्रायः हरेक को पाँच से सात कोपेक तक मिल जाते।

इतना पैसा एक रोज़ के भोजन के लिए काफ़ी था, लेकिन व्याखिर की माँ को वोद्का भी चाहिए थी और वोद्का न मिलने पर वह व्याखिर को पीटा करती थी। कोस्त्रोमा का अरमान कबूतरों का शिकारी बनने का था, इसलिए वह अधिक से अधिक कमाने के फेर में रहता था। खाबी भी पैसे जमा कर रहा था, क्योंकि वह अपने शहर लौट जाना चाहता था, जहाँ से उसका मामा उसे यहाँ लाया था। उसका मामा यहाँ आने के थोड़े दिन बाद ही नदी में डूब गया था। खाबी अपने शहर का नाम भूल गया था; उसे इतना ही याद था कि वह वोल्गा के निकट कामा नदी के तट पर है।

न जाने क्यों, इस नगर की बात आने पर हम लोगों को बड़ी हँसी आती थी। हम लोग अपने भेंगे तातार साथी को चिढ़ाया करते थे :

एक है शहर
बड़ा साफ व सुन्दर
एक बात मगर हाँ
उसे पता नहीं कहाँ!
यहाँ कि वहाँ?
इसी जहान में?
कि कहीं आसमान में?

पहले तो खाबी हम लोगों का गाना सुनकर बिगड़ खड़ा होता था। लेकिन एक दिन व्याखिर ने फाख़्ता जैसी अपनी आवाज़ में कहा :

"छोड़ भी यार, दोस्ती में नाराज़गी अच्छी नहीं।"

तातार दोस्त यह सुनकर लज्जित हो गया और उस दिन से वह खुद भी कामा नदी के तटवर्ती अज्ञात नगरवाला गीत गाने लगा।

लेकिन हम लोगों की मण्डली तख्ते चुराने के मुकाबले में कूड़ा-कबाड़ इकट्ठा करना ज्यादा अच्छा समझती थी। वसन्त आ जाने पर बर्फ़ गल गयी और मेलेवाले पक्के मैदान को वर्षा ने धोकर साफ कर दिया। अतः इस वक़्त यह काम अधिक रोचक हो गया। जहाँ-तहाँ लोहे की कीलें और नालियों में धातु के तरह-तरह के

टुकड़े आसानी से मिलने लगे। कभी-कभी ताँबे या चाँदी के सिक्के भी मिल जाते थे। लेकिन हमेशा रखवालों का डर बना रहता था। गिड़गिड़ाकर और खुशामद कर हम लोग उन्हें शान्त करते थे। कभी-कभी दो-एक कोपेक उन्हें भी थमाना पड़ता था, तभी वे हमें कूड़े का अपना बोरा ले जाने देते थे। कुल मिलाकर आमदनी करना मुश्किल काम था, लेकिन कठिनाईयों के उस अनुभव ने हम लोगों को एक दूसरे का पक्का दोस्त बना दिया। ऐसी बात न थी कि हम लोगों में झगड़ा न होता हो, पर जहाँ तक मुझे याद है मार-पीट की कभी नौबत नहीं आयी थी।

झगड़ा शान्त करने का काम व्याखिर किया करता था। वह हमेशा ठीक मौके पर कुछ सीधे-सादे शब्द कह देता, जो हमें अचम्भे और चक्कर में डाल देते तथा चढ़ा गुस्सा उतर जाता। सभी लज्जित हो जाते। वह स्वयं विस्मय के साथ उन शब्दों का उच्चारण करता। याज के जले-भुने शब्दों का न तो कभी बुरा मानता था और न उनसे घबराता ही था। वह सभी बुरी बातों को बेकार समझता और बड़ी शान्ति तथा विश्वास से उन्हें टाल जाता।

कहता, "इसकी क्या ज़रूरत है यारो!" और बात सभी को चुभ जाती-मूर्खता के अतिरिक्त यह कुछ नहीं है।

माँ को वह सदा "मेरी मोर्दवी" कहता। किसी को इसपर हँसी नहीं आती।

मसलन एक दिन वह कहने लगा :

"जानते हो रात को क्या हुआ? मेरी मोर्दवी घर लौटी और सो भी पीकर टर्र। फटाक से दरवाज़ा खोला और चौखट पर बैठकर गाने लगी। फिर कौन उठता है वहाँ से? बस, गाती ही रही।"

वह कहानी कहते वक़्त हँस रहा था और उसकी गोल-गोल सुनहरी आँखें चमक रही थीं।

चूर्का ने बड़ी गम्भीरता से पूछा : "क्या गा रही थी वह?"

व्याखिर अपनी बारीक आवाज़ में जांघ पर ताल देते हुए माँ का गीत सुनाने लगा :

ठक-ठका-ठक ठोकर
मेरी खिड़की के काँच पर
मेरा छैला गड़ेरिया
मुझको बुलाने आ गया!
चली मैं यार के संग
संझा दमके रंगा रंग!
गड़ेरिये की बाँसुरी!
लय-तान से हवा भरी!

कितनी मीठी टेर मेरे यार की!
सुनने के लिए सारी दुनिया रुकी!

व्याखिर बहुत-से ऐसे गीत जानता था और बड़े रस के साथ उन्हें सुनाया करता था।

रात की घटना का बयान करते हुए उसने कहा :

"वह गाते-गाते वहीं सो गयी। दरवाज़ा यों ही खुला रह गया और ठण्डी हवा सरसर कमरे में आने लगी। मैं ठण्ड के मारे ठिठुरा जा रहा था, उसे उठाकर दरवाज़े से कौन हटाये? उतनी बड़ी लाश घसीटना मेरे बूते के बाहर था। सवेरा होने पर मैंने उससे कहा : 'तुम इतना क्यों पी लेती हो?' उसने जवाब दिया, 'क्या रखा है इन बातों में? कुछ दिन और सह ले। अब थोड़े ही दिनों की मेहमान हूँ मैं।'"

चूर्का ने तपाक के साथ सहमति प्रकट की :

"इसमें क्या शक है। देखते नहीं हो, अभी से उसका बदन बेतरह सूज गया है।"

मैंने व्याखिर से पूछा :

"माँ मर जायेगी, तो तुझे अफ़सोस होगा क्या?"

उसने चकित होकर जवाब दिया :

"क्यों नहीं? वह तो बहुत अच्छी है..."

हम लोगों को भी इसमें संदेह नहीं था। यद्यपि वह व्याखिर को बराबर पीटा करती थी, पर दिल की नेक थी। जिस दिन हम लोगों को बहुत कम आमदनी होती, चूर्का प्रस्ताव करता :

"आज व्याखिर की माँ की वोद्का के लिए एक-एक कोपेक हम लोगों की ओर से रहे; नहीं तो बेचारे को मार पड़ेगी।"

उस मण्डली में केवल चूर्का और मैं पढ़ना-लिखना जानते थे।

व्याखिर को इससे ईर्ष्या होती थी। अपने चूहों जैसे कान को सहलाते हुए फाख्ता जैसी आवाज़ में वह कहता :

"मेरी मोर्दवी मर जायेगी, तो मैं भी स्कूल में नाम लिखाऊँगा। मास्टर के पैरों पर पड़कर कहूँगा कि मुझे दाखिल कर लीजिए। पढ़ाई समाप्त करके मैं बिशप का माली बन जाऊँगा। या हो सकता है कि जार के बगीचे में ही मेरी नौकरी लग जाये।"

उसी वसन्त में मोर्दवी की मृत्यु हो गयी। एक हाथ में वोद्का की बोतल लेकर वह एक बूढ़े के साथ, जो नया गिरजाघर बनवाने के लिए चन्दा इकट्ठा कर रहे थे, जा रही थी। कुन्दों का एक ढेर उनके ऊपर गिर पड़ा। उसे लोग अस्पताल ले गये। चूर्का व्याखिर से बोला :

"मेरे घर चलकर रह। मेरी माँ तुम्हें लिखना-पढ़ना सिखा देगी..."

इसके कुछ दिनों बाद व्याखिर दुकानों के सामने खड़ा होकर और सिर ऊपर करके उनकी तख्ती पढ़ने लगाः

"प-स-ना-री की दू-का-न!"

चूर्का उसकी भूल सुधारता : "पसनारी नहीं, पनसारी है, उल्लू!"

"ओ ठीक! बोलते हुए शद्ब में गड़बड़ा गया।"

"शद्ब नहीं, शब्द कह।"

"शब्द इधर से उधर चले जाते हैं, जी। बात यह है कि कोई उन्हें पढ़ता है, तो वे खुशी के मारे उछलने लगते हैं," व्याखिर ने जवाब दिया।

वृक्षों और हरियाली के प्रति उसका अगाध प्यार देखकर हम लोग चकित हो जाते थे और हमें हँसी भी आती थी।

हमारी बस्ती में, जो रेतीले क्षेत्र में फैली हुई थी, हरियाली बहुत कम दिखाई देती थी। यों ही कहीं किसी के आँगन में बेचारा सरपत या एल्डर की सूखी झाड़ियाँ या पीली घास नज़र आ जाती, पर वह भी बाड़ में मुँह छिपाये हुए। अगर व्याखिर के सामने कोई घास पर बैठ जाता, तो फौरन उसकी डाँट सुननी पड़ती :

"घास को क्यों बरबाद कर रहा है बे! रेत पर क्यों नहीं बैठा जाता?"

वह रहता, तो हम लोगों की हिम्मत नहीं होती कि ओका के तट पर बेंत की डण्डी या एल्डर की टहनी तोड़ लें। परेशानी से अपनी देह हिलाता हुआ वह कहता :

"तुम लोगों को हमेशा शैतानी ही सूझती रहती है। क्यों बरबाद कर रहे हो इसे?"

उसकी यह परेशानी हम लोगों को लज्जित कर देती।

शनिवार को हम लोग मौज मनाते थे। उसके लिए हम लोग सप्ताह भर छाल के बने पुराने जूते बटोरते और उन्हें सुविधाजनक कोनों में जमा करते थे। शाम को सिबीस्कार्या घाट से तातारी घाट-मज़दूरों के लिए निकलने का वक़्त होता था। कोने में छिपकर हम लोग उनपर जूते फेंकना शुरू करते। पहले तो वे बिगड़कर गाली बकने और हम लोगों को खदेड़ने लगते। पर बाद में उन्हें भी खेल में मजा आने लगता। वे भी छाल के जूते जमा करके तैयार हो जाते। कभी-कभी वे हमारे ही खज़ाने पर छापा मारकर हमारा गोली-बारूद चुरा लेते। हम लोग इसपर आपत्ति करते।

"यह ईमानदारी नहीं है।"

तब वे चुराया माल आधा-आधा बाँट देते। इसके बाद दोनों ओर से गोले दगने लगते।

एक खुला मैदान था। साधारणतः उसी में वे लोग पाँत बाँधकर खड़े हो जाते। हम लोगों की मण्डली उनके चारों ओर दौड़-दौड़कर चिल्लाना, कूदना और जूते फेंकना शुरू कर देती। वे लोग भी ज़ोर-ज़ोर से चिल्लाते जाते। जब कभी पैर के नीचे निशाना बाँधकर फेंके गये जूते से कोई मुँह के बल रेत में ढह पड़ता, तो उनकी खुशी का

ठिकाना न रहता।

अक्सर खेलते-खेलते अँधेरा हो जाता। छोटे-छोटे दुकानदार कोनों में छिपकर हमारा खेल देखते और हम लोगों को गड़बड़ मचाने के लिए डाँटते। पर जूतों की बौछार उनकी फटकार से भला कहाँ रुकनेवाली थी। मटमैले पंछियों की तरह धूल-धूसर जूते हवा में इधर से उधर और उधर से इधर उड़ते। कभी हमारा कोई साथी खासी चोट खा जाता, लेकिन उस प्रतियोगिता में जो मज़ा था, उसके आगे घाव और चोट की कौन परवाह करता!

तातारों की जमात को भी खेल में हम लोगों से कम मजा नहीं आता था। वे भी सब कुछ भूल जाते। खेल खत्म होने पर कभी-कभी हम लोग तातारों के संघ में जाते थे। वहाँ घोड़े के मांस से हम लोगों की खातिरदारी की जाती थी। माँस के साथ अजीब तरह की बनी तरकारी होती थी। खाना खत्म होने पर गहरे लाल रंग की चाय और बादामी केक आ जाता। ये भीमकाय तातारी-जिनमें सभी एक से एक बढ़कर पहलवान हुआ करते-हमें बहुत ही भले लगते। उनका स्वभाव बालकों जैसा सरल था। सबसे बड़ी चीज़ यह थी कि वे कभी किसी बात का बुरा नहीं मानते थे और एक दूसरे के प्रति उनका व्यवहार अत्यन्त हार्दिक हुआ करता था।

इन तातारों की हँसी उन्मुक्त थी। हँसते-हँसते उनकी आँखों से आँसू ढलक पड़ते। उनमें एक किसान था। वह कासिमोवी तातार था। उसकी नाक टूटी हुई थी। लोग कहते थे कि उसकी देह में दैत्य जैसी ताक़त है। एक बार गिरजाघर का एक घण्टा बजरे से उतारना था। बारह मन के उस घण्टे को उसने अकेले उतारकर किनारे रख दिया। वह हँसी के साथ ज़ोर-ज़ोर से जानवरों जैसा विचित्र स्वर निकालता था। वह कहता था :

"ऊ-ऊ-ऊ! ऊ-ऊ-ऊ! चिड़ियों जैसे शब्द। शब्द बोलते ही कह उठता, चिड़िया पकड़ी गयी-सोने की चिड़िया!"

एक दिन व्याखिर को अपनी हथेली पर रखकर उसने ऊपर हवा में उछाल दिया और बोला :

"उड़ जा पंछी आकाश में!"

बूँदा-बाँदी के दिन हम लोग क़ब्रिस्तान की बगल में याज की छोटी-सी कोठरी में जमा हुआ करते थे, जहाँ वह अपने बाप के साथ रहता था। उसका बाप अष्टावक्र था-पूरी देह टेढ़ी-मेढ़ी और सिकुड़ी सिमटी, गन्दा-मन्दा। खूब लम्बी बाँहें, छोटे सिर तथा साँवले चेहरे पर मैले-से बाल। गर्दन ऐसी थी, मानो पतला डण्ठल, जिसके सिरे पर सूखे शलजम की तरह सिर लगा हुआ था। मन ही मन अत्यन्त मग्न होकर वह अपनी पीली आँखें मूँद लेता और कहता :

"हे भगवान, उनींदी रातों से हमें बचा!"

हम लोग अपने साथ चाय, चीनी और रोटी लेकर आते थे। याज के बाप के

लिए थोड़ी वोद्का भी होती थी। चूर्का डाँटकर कहता :

"गँवार कहीं का! जल्दी से समोवार गर्म कर।"

और गँवार हँसकर हुक़्म बजा लाता। जब तक समोवार गरम होता रहता, हम लोग अपने धन्धे के विषय में विचार-विमर्श किया करते और वह भी हमें अपनी सलाह देता जाता। मसलन :

"परमों त्रूसोव-परिवार में चालीसवाँ है। बहुत बड़ा मृतक भोज होगा, वहाँ मिलेंगी तुम्हें काफी हड्डियाँ।"

लेकिन चूर्का बोलता :

"त्रूसोव के यहाँ की बावर्चिन तो खुद ही हड्डियाँ जमा करती है।" चूर्का से कोई बात छिपी न थी।

व्याखिर खिड़की से क़ब्रिस्तान की ओर झाँककर कहता :

"बादल-बदली के दिन अब जल्द ही खत्म होने को हैं। फिर हम लोग जंगल जा सकेंगे।"

याज बहुत कम बोलता था। कूड़े-कबाड़ में मिले खिलौनों को हम लोगों के सामने करके वह अपनी उदास आँखों से हमारे चेहरे निहारा करता था। इन खिलौने में लकड़ी के सिपाही, बिना टाँग के घोड़े, कुछ बटन और कुछ पीतल के टुकड़े होते थे।

उसका बाप चाय की मेज ठीक करके उसपर समोवार रख देता। सभी प्याले भिन्न रंगों और आकार के थे। कोस्त्रोमा प्यालों में चाय उड़ेलता। याज का बाप अपनी वोद्का पीकर अलावघर पर चढ़ जाता। वहाँ से घुग्घू जैसी आँखों से हम लोगों की ओर देखकर वह आप ही आप बड़बड़ाने लगता :

"तुम लोगों की गिनती भी भला आदमियों में होगी? पूरे चोट्टों की जमात हो तुम लोग। फू! उनींदी रातों में भगवान ही हमें बचाता है!"

व्याखिर कहता :

"हम लोग चोर नहीं हैं।"

"चोर नहीं तो चोर-बच्चे ही सही..." वह जवाब देता।

उसकी बड़बड़हाट से हम लोग जब खीझ उठते, तो चूर्का डाँटकर कहता :

"चुप रह! गँवार कहीं का!"

वह बस्ती के सभी बीमार आदमियों के नाम गिनाना शुरू करता और हिसाब लगाता जाता कि पहले कौन मरेगा। कहता, अब की फ़लां आदमी क़ब्रिस्तान में गड़ने के लिए आयेगा। यह हिसाब लगाकर वह मन ही मन खुश होने लगता, मानो आदमी का मर जाना उसके लिए खेल हो। व्याखिर, चूर्का और मैं उसकी इस आदत को बर्दाश्त नहीं कर सकते थे। वह समझ जाता कि इस तरह की बातों से हम लोग घबरा रहे हैं। उस वक़्त हमें चिढ़ाने के लिए वह जान-बूझकर कहने लगता :

"डर लगता है, क्यों बच्चू? घबराओ मत, इस बार एक बहुत मोटा आदमी जल्द ही मरनेवाला है। कब्र में गाड़ने पर उसकी लाश बहुत दिन तक सड़ेगी।"

हम लोग उसे मना करते। पर उसकी जबान क्यों बन्द होती? कहता :

"तुम सबों की बारी भी जल्द ही आनेवाली है। कूड़ा कुरेदकर कब तक जियोगे बच्चू, तुम लोग?"

"मर ही जायेंगे, तो क्या होगा; बन जायेंगे फ़रिश्ते..." व्याखिर बोला।

"तुम लोग और फ़रिश्ते बन जाओगे?" याज का बाप मुँह चिढ़ाते हुए कहता और हो-हो हँसने लगता।

इसके बाद फिर मुर्दों का वीभत्स वर्णन शुरू कर देता।

लेकिन कभी-कभी अपनी धीमी, मक्खियों की भनभनाहट जैसी आवाज़ में वह अज़ीब-अज़ीब तरह की बातें कहने लगता। एक दिन बोला :

"एक बात सुनाऊँ? परसों एक औरत गाड़ी गयी, जिसकी अजीब कहानी है। मुझको उसका सारा किस्सा मालूम हो गया। जानते हो..."

औरतों का प्रसंग वह प्रायः ही छेड़ा करता था और बड़े कुरुचिपूर्ण ढँग से। उसकी बातों में एक उदासीभरी जिज्ञासा होती थी, मानो वह हमीं लोगों से अनुरोध कर रहा हो कि हम उसके साथ सोच-विचार करें। और हम लोग बहुत ध्यान से उसकी बातें सुनते थे। वह रुक-रुककर अपनी बात कहता और अक्सर अचानक कोई सवाल पूछ बैठता। उसकी बातें हमारे स्मृतिपटल पर सदा दर्द और जलन से भरे घाव कर जातीं।

तो वह बोलता गया :

"लोगों ने उससे पूछा कि आग किसने लगायी थी। वह बोली, 'मैंने'। सब कहने लगे, 'तू पागल है; उस रात को तो तू अस्पताल में थी!' पर वह रट लगाये रही, 'आग मैंने लगायी!' अजीब पहेली थी। किसी की समझ ही में नहीं आया कि वह ऐसी बातें क्यों कह रही थी... हे भगवान उनींदी रातों से हमें बचा!.."

हरियाली के बिना उस निर्जन क़ब्रिस्तान में गाड़े जानेवाले हर आदमी की जीवन-कहानी उसे मालूम थी। जब वह बोलने लगता, तो मानो उस बस्ती के सभी घरों के दरवाज़े हम लोगों के लिए खुल जाते और वहाँ रहनेवालों का सारा जीवन-चित्र हमारे सामने उभर आता। लगता कि वह तो रात भर अपनी बातों का सिलसिला जारी रख सकता था। पर अँधेरा होते ही चूर्का मेज से उठ खड़ा होता और कहता :

"मैं तो चला घर। माँ परेशान हो रही होगी। और कौन चलेगा?"

सभी चल देते। याज चारदीवारी तक हम लोगों के साथ आकर फाटक बन्द कर लेता और अपने साँवले हड़ीले चेहरे को लोहे की छड़ों से सटाकर हम लोगों को विदाई देता।

उसे कब्रगाह में छोड़ जाते हम लोग, पर चित्त में उद्विग्नता लिए हुए। एक

दिन कोस्त्रोमा ने पीछे मुड़कर कहा :

"जानते हो किसी दिन सवेरे ही उसके मरने की खबर सुन लोगे।"

चूर्का का कहना था कि याज की ज़िन्दगी हम लोगों से भी अधिक गयी-गुजरी है। पर व्याखिर ने उसकी उक्ति का प्रतिवाद किया। वह बोला :

"हम लोगों की ज़िन्दगी तो गयी-गुजरी नहीं है..."

मेरी भी यही राय थी। उस बाजारू ज़िन्दगी की स्वतंत्रता मुझे रुचती थी। मुझे अपने सभी साथी भी बहुत प्यारे थे। उस दोस्ती में अपार आनन्द और एक दूसरे के लिए त्याग करने की उच्च प्रेरणा थी।

स्कूल में मेरे लिए नयी समस्या पैदा हो गयी। लड़कों ने मुझे आवारा और कबाड़ी कहना शुरू किया। एक दिन खूब झगड़ा हो गया। इसके बाद उन्होंने मास्टर से जाकर शिकायत कर दी कि मेरे बदन से कूड़े की बदबू आती है, इसलिए क्लास में मेरे साथ बैठना असम्भव है। मुझे याद है कि इस चुगली से मेरे दिल को गहरी ठेस लगी थी। उसके बाद स्कूल में मुँह दिखाना असम्भव ज्ञात होने लगा था, क्योंकि शिकायत सरासर झूठी थी। मैं रोज़ सवेरे सावधानी से हाथ-मुँह धोता था और स्कूल जाते समय हमेशा वे कपड़े बदल लिया करता था, जो कबाड़ जमा करते वक़्त पहनता था।

आखिर मैंने तीसरे दर्जे का इम्तहान दिया और अच्छे नम्बर पाने के फलस्वरूप पुरस्कार में प्रशंसापत्र, बाइबिल, क्रिलोव की कहानियों की एक प्रति तथा बिना जिल्द की एक और क़िताब 'फाता मोर्गाना' मिली। पुरस्कार को देखकर नाना की खुशी का ठिकाना न रहा। उन्होंने कहा कि क़िताबों को अत्यंत सावधानी से रख देना चाहिए और बोले कि उन्हें अपने खास संदूक में बन्द कर दूँगा। उन दिनों नानी कई रोज़ से बीमार थी। उसके पास पैसा नहीं था। नाना रोज़ शिकायत करते थे :

"तुम्हारी वजह से मैं लुटा जा रहा हूँ। बिक नहीं गया मैं तो कहना!"

अतः मैंने क़िताबें ले जाकर बेच दीं। उनसे मुझे पचास कोपेक मिले, जो मैंने नानी के हवाले कर दिये। प्रशंसापत्र मैंने क़लम चलाकर खराब कर डाला। पर नाना ने उसे नहीं देखा और उसे हिफ़ाजत से अपने सन्दूक में बन्द कर दिया।

स्कूल की छुट्टी हो गयी और मैंने फिर अपना धन्धा आरम्भ कर दिया। वसन्त ऋतु आ जाने पर वह और भी रोचक हो गया था। अब हम लोग ज्यादा कमा लेते थे। रविवार के दिन हमारी पूरी मण्डली खेतों, सनोबर वनों में घूमने निकल जाती। अँधेरा होने पर हम लोग लौटते-थककर चूर, पर बेहद खुश। हमारी दोस्ती और भी पक्की होती जा रही थी।

लेकिन यह जीवन-क्रम अधिक दिन नहीं चला। सौतेले पिताजी की नौकरी फिर छूट गयी और वह कहीं बाहर चले गये। माँ और नन्हा निकोलाई नाना के घर आ गये। नानी इन दिनों एक धनी सेठ के घर रह रही थी। वहाँ उसे ताबूत में ईसा

मसीह की मूर्त्ति वाली चादर तैयार करने का काम मिला था। अतः मुझे बच्चा खिलाने का काम करना पड़ता था।

माँ क्षय से क्षीण हो गयी थी। दुनिया की हर चीज़ को भयानक आँखों से ताक़ती हुई वह अब बहुत कम बोलती थी। कमज़ोरी के कारण उसके लिए चलना-फिरना भी मुहाल था। भाई भी बच्चों की तपेदिक का रोगी था और उसके पैरों बहुत-से फोड़े निकल आये थे, जो अच्छा होने का नाम ही नहीं लेते थे। वह इतना कमज़ोर हो था कि रो भी नहीं सकता था। भूख लगने पर वह केवल कराहता था-बड़े दर्दनाक ढँग से कराहता और पेट भरा होने पर ऊँघता और निःश्वास छोड़ा करता था। उस वक़्त उसके मुँह से बिल्ली के सन्तुष्ट बच्चे जैसी आवाज़ निकलती थी।

नाना ने एक दिन बड़े ध्यान से उसे देखा। देखने के बाद बोले :

"इसे कुछ नहीं है। केवल पौष्टिक भोजन चाहिए। पर तुम सबों को खिलाने के लिए मेरे पास पैसा कहाँ है?"

माँ ने निःश्वास छोड़कर कहा :

"बेचारे का पेट ही कितना-सा है? मुट्ठी भर भी नहीं चाहिए..."

"यही तो बात है," नाना बोले, "मुट्ठी भर इसको, दो मुट्ठी भर उसको। लेकिन सब जोड़ जाओ, तो मेरा दिवाला..."

उन्होंने हाथ हिलाया और मुझसे बोले :

"निकोलाई को धूप में बालू में बिठाना चाहिए..."

मैं एक बोरा साफ सूखा हुआ बालू ले आया और खिड़की के नीचे, जहाँ धूप आती थी, रख दिया। नाना के कहे मुताबिक उसी में गर्दन तक बच्चे को गाड़ दिया। उसे यह अच्छा लगता था। वह खूब मगन होकर बैठा रहता था उसी में और मेरी ओर टुकुर-टुकुर ताका करता था। उसकी आँखें विलक्षण थीं-पुतली के चारों ओर नीले घेरे थे, जिनके चारों ओर हलके नीले वृत।

उसके प्रति मुझमें स्नेह जाग उठा। ऐसा लगता कि मेरे मन की उसे थाह है। खिड़की के नीचे मैं घण्टों उसकी बगल में लेटा रहता। उधर से नाना माँ को अपनी पतली आवाज़ में यह कहते सुनाई देते :

"मरने में भी कुछ लगता है? हाँ, जीना अलबत्ता हुनर का काम है!"

माँ की लम्बी खों-खों-खों सुनायी पड़ती...

निकोलाई अपने नन्हे सिर को हिलाता और हाथ नीचे से निकालकर मेरी ओर बढ़ा देता। उसके बाल विरले एवं रुपहले थे। चेहरा ऐसा लगता मानो बहुत दुनिया देख चुका हो।

कोई बिल्ली या मुर्गी पास आ जाती, तो वह उसे बड़े गौर से देखता। देख लेने के बाद हलकी मुसकराहट के साथ मेरी ओर ताकने लगता। उसकी वह मुस्कान मुझे विचलित कर देती। मैं सोचने लगता-शायद उसे पता है कि मैं घण्टों उसके

पास बैठा उकता जाता हूँ और चाहता हूँ कि उड़कर गली में अपने दोस्तों के पास पहुँच जाऊँ।

घर का आँगन बहुत छोटा था। उसमें कबाड़ का ढेर लगा हुआ था। पीछे की तरफ गुसलखाना था। फाटक से गुसलखाने तक छप्परदार ओसारों और छोटी-छोटी कोठरियों की कतार थी। छतों पर नावों के टुकड़ों, कुन्दों, तख्तों और भीगी लकड़ियों का अम्बार लगा था। बर्फ़ पिघलने के बाद छुटभैयों ने ये चीज़ें ओका नदी से हासिल की थीं। पूरे आँगन में नदी के पानी से फूली लकड़ियों का ढेर जमा था, जिनसे धूप निकलने पर सड़ान्ध आती रहती थी।

बगल में एक छोटा-सा बूचड़खाना था। हर रोज़ तड़के ही उसमें से बछड़ों और भेड़ों के मिमियाने की आवाज़ आया करती थी। और खून की तेज़ गन्ध उठकर धूलभरी हवा में बारीक लाल जाली की तरह छा जाती।

खोपड़ी पर कुल्हाड़ी के उल्टे भाग का वार पड़ते ही जानवरों की आवाज़ शान्त हो जाती। उस वक़्त निकोलाई के माथे पर बल पड़ जाता। वह होंठ भींच लेता, मानो जानवर की आवाज़ की नकल करना चाहता हो। पर मुँह से केवल "ऊँह-ऊँह" की आवाज़ मात्र ही निकलती।

दोपहर को नाना खिड़की से सिर निकालकर पुकारते :

"खाना तैयार है!"

छोटे बच्चे को वह अपनी गोद में बैठाकर खिलाते थे-अपने मुँह में रोटी और आलू चबाकर टेढ़ी उँगली से उसके छोटे-से मुँह में डालते थे। और ऐसा करते समय निकोलाई के होंठ और नुकीली ठुड्डी उनकी जूठन और लार से सन जाते थे। थोड़ा खिलाने के बाद कमीज़ उघाड़कर उसका फूला हुआ पेट टोहते और कहते :

"हो गया पूरा कि नहीं? लगता है अभी और खायेगा।"

माँ अँधेरे कोने में बिस्तर पर पड़ी हुई कहती :

"देख नहीं रहे हो, अभी हाथ बढ़ा रहा है।"

नाना जवाब देते :

"बच्चे को क्या मालूम? पेट भरने पर भी खाना माँगते रहते हैं..."

यह कहकर मुँह में चबाया एक कौर फिर बच्चे के मुँह में डाल देते थे। खिलाने का यह तरीका देखकर मुझे बेहद घिन और शर्म महसूस होती। दम घुटने लगता और मतली-सी होने लगती।

अन्त में नाना कहते :

"हो गया। अब इसे ले जाओ माँ के पास!"

गोद में उठाते वक़्त निकोलाई शिकायत के स्वर में कराहने और हाथ मेज की ओर बढ़ाने लगता। माँ उसे गोद में लेने के लिए बिस्तर से थोड़ा उठने की कोशिश करती और अपने हाथ, जिनमें हड्डी और चमड़ा मात्र रह गया था, बढ़ा देती। वह

सूखकर काँटा हो गयी थी-जैसे उतरी छाल का चीड़।

उसका बोलना-चालना भी लगभग बन्द हो गया था। अगर कभी दो-चार शब्द निकलते भी, तो मानो बोझ की तरह छाती फाड़कर। दिन भर कोने में पड़ी वह तिल-तिल कर मृत्यु की ओर बढ़ रही थी। मुझे मालूम हो गया था-वह चन्द ही दिनों की मेहमान है। और यदि कोई बात अस्पष्ट रह गयी थी, तो नाना की बातों ने उसे स्पष्ट कर दिया था। वह बार-बार मौत की ही बातें करते, खासकर शाम को जब कि सड़ी हुई चीज़ों से बोझिल और भेड़ की खाल की तरह गर्म हवा खिड़की में भर जाती थी।

नाना की चारपाई देव-प्रतिमाओं वाले कोने में बिछती थी-प्रतिमाओं के लगभग ठीक नीचे। वह खिड़की की ओर सिरहाना करके सोते थे और सोने से पहले आप ही आप बकने लगते थे :

"मरो, मरने का वक़्त आ गया है। यह काफिला प्रभु के घर पहुँचेगा, तो मजा आ जायेगा। वह पूछेगा तो जवाब नदारद! सारी ज़िन्दगी मैंने मेहनत करते बितायी-हमेशा किसी न किसी काम में लगा रहा। फिर भी यह अन्त-हे ईश्वर!"

मैं अलावघर और खिड़की के बीच फ़र्श पर सोता था। उतनी जगह में मेरे पाँव नहीं अँटते थे। अतः पैरों को अलावघर के नीचे फैलाना पड़ता था, जहाँ तिलचट्टे रात भर उनके ऊपर रेंगा करते थे। उनके रेंगने से गुदगुदी मालूम होती थी। वहाँ पड़े-पड़े मुझे नाना का सारा धन्धा दिखायी पड़ता था। जब वह कोई काम बिगाड़ देते, तो मुझे न जाने क्यों, द्वेषपूर्ण खुशी-सी होती थी। खाना बनाते वक़्त वह संड़सी या कुरेदनी से सिरे से अक्सर खिड़की का शीशा तोड़ डालते। मुझे हँसी आती कि इतने होशियार होते हुए भी नाना को संड़सी के डंडे का सिरा काट देने की क्यों नहीं सूझती।

एक दिन बर्तन में कुछ पक रहा था। वह यक़ायक़ उफनने लगा। नाना ने इतने ज़ोर से संड़सी को पीछे की ओर खींचा कि बर्तन तो टूट ही गया, खिड़की के दोनों शीशे भी चूर-चूर हो गये। इसे कहते हैं, गरीबी में आटा गीला। नाना फ़र्श पर बैठ गये और "हे भगवान! हे प्रभु!" कहकर रोने लगे।

जब वह बाहर चले गये, तो मैंने रोटी काटनेवाला चाकू लेकर डण्डे का सिरा काट डाला। नाना ने लौटकर यह देखा, तो लगे हाय-तोबा मचाने। कहने लगे :

"बेवकूफ़ कहीं का! उसे आरे से काटना चाहिए था! बर्बाद कर दी लकड़ी तूने। उसका बेलन बनाकर बेच देते, तो कुछ पैसे मिल जाते। तुम लोग मिलकर उजाड़ डालोगे मुझको!"

वह ड्योढ़ी में गये, तो माँ ने मुझसे कहा :

"तूने किसलिए टाँग अड़ायी..."

अगस्त में एक रविवार को दोपहर के वक़्त माँ चल बसी। मेरे सौतेले पिताजी

हाल ही में सफर से लौटे थे और उन्हें नौकरी भी मिल गयी थी। उन्हें स्टेशन के नजदीक एक साफ-सुथरा घर मिल गया था, जिसमें शीघ्र ही माँ को ले जाने वाले थे। नानी और निकोलाई पहले ही उसमें चले गये थे।

मरने के दिन सुबह ही वह शान्त, लेकिन अधिक स्पष्ट और हलके स्वर में मुझसे बोली :

"येव्गेनी वासील्येविच से जाकर कह कि माँ मिलने के लिए बुला रही है।"

वह दीवार का सहारा लेकर बैठ गयी और बोली :

"दौड़, जल्दी से।"

मुझे ऐसा लगा कि वह मुस्करा रही है। आँखों में आज अजीब ज्योति दिखायी पड़ी। सौतेले पिताजी सवेरे की प्रार्थना में गये हुए थे। नानी ने कहा कि यहूदिन के यहाँ से थोड़ी सुँघनी ला दे। पर दुकान में तैयार सुँघनी नहीं थी। यहूदिन ने जब तक पत्ती कूटकर सुँघनी तैयार की, मुझे वहाँ बैठे रहना पड़ा।

लौटकर नाना के घर पहुँचा, तो माँ मेज के पास बैठी हुई थी। उसने बनफशई रंग की साफ पोशाक पहन रखी थी, बाल सँवरे हुए थे। एक जमाने के बाद आज फिर उसका गर्वीला रूप निखर आया था।

मैंने पूछा :

"तबीयत कुछ अच्छी हो गयी है?" न जाने क्यों, मैंने बहुत झिझकते हुए यह प्रश्न किया।

मेरी ओर भयानक नज़र से ताक़ते हुए वह बोली :

"यहाँ आ। इतनी देर कहाँ रहा तू?"

इसके पहले कि मैं जवाब दे सकूँ उसने बाल पकड़कर मुझे खींच लिया और मेज से एक लम्बी छुरी लेकर उसका फल मारने लगी। छुरी हाथ से छूटकर नीचे गिर पड़ी। बोली :

"उठा उसे! दे मुझे!"

उठाकर मैंने उसे मेज पर रख दिया। माँ ने मुझे ढकेल दिया। मैं अलावघर की पैड़ी पर बैठ गया। वहाँ से आँखें फाड़कर उसकी ओर देखने लगा।

कुर्सी से उठकर वह धीरे-धीरे कोने की ओर बढ़ी और जाकर अपनी चारपाई पर पड़ गयी और लगी माथे का पसीना पोंछने। मट्ठी में रुमाल काँप रहा था और हाथ बड़ी कठिनाई से उठ रहा था; दो बार वह चेहरे के बजाय तकिये पर गिर गया और रुमाल तकिये पर ही रेंगता रहा।

धीमे स्वर में उसने पानी माँगा।

मैं बालटी में से एक प्याला पानी ले आया। कठिनाई से सिर उठाकर उसने एक घूँट मुँह में डाला और फिर अपने हाथ से, जो सर्द हो रहा था, मुझे ठेलकर गहरा निःश्वास छोड़ा। उसने कोने में देव-प्रतिमाओं की ओर तथा फिर मेरी ओर दृष्टि

डाली। इसके बाद होंठ हिले, मानो मुस्कुरा रही हो, और लम्बी बरौनियाँ शनैःशनैः आँखों पर बिछ गयीं। दोनों कोहनियाँ अगल-बगल टिकी हुई थीं और काँपती उँगलियों वाले हाथ धीरे-धीरे गले की ओर बढ़ रहे थे। चेहरे पर क्षण भर के लिए एक काली छाया नाचकर विलीन हो गयी-और छोड़ गयी तनी हुई रक्तहीन खाल तथा नुकीली नाक। मुँह विस्मय से खुल गया, पर साँस सुनाई नहीं दे रही थी।

मैं प्याला लिये खड़ा ऐसे महसूस कर रहा था, मानो कई युग बीत गये हों। माँ के चेहरे को निर्जीव और बेरंग होते देखता रहा।

नाना घर में आये। मैंने कहा :

"माँ मर गयी..."

चारपाई पर दृष्टि डालकर वह बोले :

"क्यों झूठ बोलता है?"

फिर अलावघर के पास जाकर पके केक निकालने लगे। बर्तन भयानक आवाज़ में ठनठना उठे। मैं उन्हें देख रहा था, निश्चयपूर्वक यह जानते हुए कि माँ मर चुकी है-इस प्रतीक्षा में कि नाना भी इसका एहसास करें।

मेरे सौतेले पिताजी आये, साफ-सफ़ेद पोशाक पहने हुए। धीरे-से कुर्सी खींचकर वह माँ की चारपाई के पास गये। यक़ायक़ कुर्सी हाथ से गिर पड़ी और वह पीतल की तुरही जैसे स्वर में चिल्ला उठे :

"यह क्या! यह तो चल बसी!!!"

अलावघर का हत्था लगा लौह-द्वार हाथ में लिए और आँखें फाड़े हुए नाना ऐसे डग रख रहे थे, मानो उन्हें कुछ नज़र न आ रहा हो।

क़ब्रगाह में जब ताबूत पर सूखा बालू डाला जाने लगा, तो नानी अन्धे की तरह दूसरी क़ब्रों की ओर चली गयी। वहाँ एक क्रास से टकराकर उसका मुँह कट गया। याज का बाप उसे अपनी कोठरी में ले गया। वह जब चेहरे से खून धो रही थी, तो उसने मुझे सांत्वना देने की कोशिश की। बोला :

"भगवान किसी की नींद न छीने! तुम ऐसा चेहरा क्यों बनाये हुए हो। इन बातों को ज्यादा सोचना बेकार है। क्यों न, नानी? अमीर हो या गरीब मौत से कोई नहीं बच सकता। क्यों न, नानी?"

उसने खिड़की से बाहर देखा और सहसा बाहर भागा। लौटा तो पीछे-पीछे व्याखिर को लिए हुए और बेतरह खुश।

किसी घुड़सवार की टूटी हुई एड़ उसके हाथ में थी, जिसे झुलाता हुआ वह बोला :

"देखा कैसी लाज़वाब चीज़ हाथ लगी है आज! व्याखिर ने और हमने तय किया है कि तुमको यह भेंट करेंगे। ज़रूर किसी कज्ज़ाक की गिर पड़ी है। दो कोपेक देकर मैं खुद ही व्याखिर से इसे खरीद लेना चाहता था..."

"क्यों बेकार झूठ बोल रहे हो?" बिगड़कर व्याखिर बोला। पर याज का बाप उसी तरह मेरे आगे उछलता और आँखें मटकाता रहा। बोला :

"देख न व्याखिर को? क्या मजाल कि इस बालू से तेल निकल आये। अच्छा भाई, मेरी तरफ से नहीं, व्याखिर की ही तरफ से तुम्हें यह भेंट है..."

नानी ने हाथ-मुँह धोकर अपने नीले सूजे चेहरे पर रुमाल बाँध लिया और मुझसे उसने घर चलने को कहा। पर मैंने इनकार कर दिया। मैं जानता था कि मरनी के भोज में शराब के साथ हुड़दंग भी मचेगा। गिरजाघर में ही मिख़ाईल मामा याकोव मामा से कह रहे थे :

"आज छककर पी जायेगी।"

व्याखिर ने मुझे हँसाने के लिए एड़ को अपनी ठुड्डी पर लटका लिया और उसे जीभ से पकड़ने की कोशिश करने लगा। याज के बाप ने भी बनावटी हँसी हँसकर कहा :

"देखो, देखो तो! यह क्या कर रहा है?"

लेकिन जब मेरी उदासी दूर होती नहीं नज़र आयी, तो वह गम्भीर होकर बोला :

"बस, काफी है। ज्यादा अफ़सोस करना अच्छा नहीं। मौत सभी को आती है। पंछी तक मरते हैं। एक काम करो-चलो तुम्हारी माँ की क़ब्र के चारों ओर घासवाली मिट्टी की तह लगा दें। हम, तुम, व्याखिर और मेरा याज मैदान से घासवाली मिट्टी ले आयेंगे और क़ब्र को ऐसा बना देंगे कि उसके जोड़ की दूसरी क़ब्र न मिलेगी।"

मुझे भी यह विचार पसन्द आया और हम मैदान की ओर चल दिये।

माँ को दफ़नाने के कुछ दिनों बाद एक दिन नाना ने मुझसे कहा :

"अलेक्सेई! तू मेरे गले का हार नहीं है। अब भाई, यहाँ जगह नहीं तेरे लिये। जा, अपनी रोज़ी-रोटी की फिक्र कर..."

और निकल पड़ा मैं रोज़ी-रोटी की फिक्र में-जीवन की राहों पर।

1913

परिकल्पना से प्रकाशित गोर्की की कृतियाँ

उपन्यास

1. माँ
2. फ़ोमा गोर्देयेव
3. वे तीन
4. बेकरी का मालिक
5. अभागा
6. मेरा बचपन
7. जीवन की राहों पर
8. मेरे विश्वविद्यालय

कहानियाँ

1. चुनी हुई कहानियाँ (खण्ड 1)
2. चुनी हुई कहानियाँ (खण्ड 2)
3. चुनी हुई कहानियाँ (खण्ड 3)
4. इटली की कहानियाँ

नाटक

1. तलछट
2. दुश्मन
3. करवट

साहित्य-चिन्तन

1. सृजन की प्रक्रिया और शिल्प के बारे में

संस्मरण

1. तोल्सतोय : एक शब्दचित्र

हमारी सम्पूर्ण पुस्तक सूची तथा पुस्तकें मँगाने के लिए
हमें इस पते पर लिखिये :

परिकल्पना प्रकाशन
द्वारा, जनचेतना
डी-68, निरालानगर
लखनऊ-226020
janchetna@rediffmail.com
('जनचेतना' हमारे सभी प्रकाशनों के वितरक हैं)

परिकल्पना प्रकाशन
लखनऊ
ISBN:81-87425-87-3

बेहतर ज़िन्दगी का रास्ता
बेहतर किताबों से होकर जाता है!

जनचेतना

सम्पूर्ण सूचीपत्र
2021

हम हैं सपनों के हरकारे
हम हैं विचारों के डाकिये

आम लोगों के लिए
ज़रूरी हैं वे किताबें
जो उनकी ज़िन्दगी की घुटन
और मुक्ति के स्वप्नों तक
पहुँचाती हैं विचार
जैसे कि बारूद की ढेरी तक
आग की चिंगारी।
घर-घर तक चिंगारी छिटकाने वाला
तेज़ हवा का झोंका बन जाना होगा
ज़िन्दगी और आने वाले दिनों का सच
बतलाने वाली किताबों को
जन-जन तक पहुँचाना होगा।

तीन दशक से भी पहले प्रगतिशील, जनपक्षधर साहित्य को जन-जन तक पहुँचाने की मुहिम की एक छोटी-सी शुरुआत हुई, बड़े मंसूबे के साथ। एक छोटी-सी दुकान और फुटपाथों पर, मुहल्लों में और दफ़्तरों के सामने छोटी-छोटी प्रदर्शनियाँ लगाने वाले तथा साइकिलों पर, ठेलों पर, झोलों में भरकर घर-घर किताबें पहुँचाने वाले समर्पित अवैतनिक वालण्टियरों की टीम – शुरुआत बस यहीं से हुई। आज यह वैचारिक अभियान उत्तर भारत के दर्जनों शहरों और गाँवों तक फैल चुका है। अपने प्रदर्शनी वाहनों के माध्यम से भी जनचेतना कई राज्यों के सुदूर कोनों तक हिन्दी, पंजाबी, मराठी और अंग्रेज़ी साहित्य एवं कला-सामग्री के साथ सपने और विचार लेकर जा रही है, जीवन-संघर्ष-सृजन-प्रगति का नारा लेकर जा रही है।

यह अपने ढंग का एक अनूठा प्रयास है। एक भी वैतनिक स्टाफ़ के बिना, समर्पित वालण्टियरों और विभिन्न सहयोगी जनसंगठनों के कार्यकर्ताओं के बूते पर यह प्रोजेक्ट आगे बढ़ रहा है।

आइए, आप सभी इस मुहिम में हमारे सहयात्री बनिए।

सम्पूर्ण सूचीपत्र

परिकल्पना प्रकाशन

उपन्यास

नवी

1. **पहला अध्यापक**/चिंगीज़ आइत्मातोव 50.00
2. **तरुणाई का तराना**/याङ मो ...
3. **तीन टके का उपन्यास**/बेर्टोल्ट ब्रेष्ट ...
4. **माँ**/मक्सिम गोर्की 275.00
5. **वे तीन**/मक्सिम गोर्की 75.00
6. **मेरा बचपन**/मक्सिम गोर्की ...
7. **जीवन की राहों पर**/मक्सिम गोर्की ...
8. **मेरे विश्वविद्यालय**/मक्सिम गोर्की ...
9. **फ़ोमा गोर्देयेव**/मक्सिम गोर्की 55.00
10. **अभागा**/मक्सिम गोर्की 40.00
11. **बेकरी का मालिक**/मक्सिम गोर्की 25.00
12. **असली इन्सान**/बोरिस पोलेवोई 260.00
13. **तरुण गार्ड**/अलेक्सान्द्र फ़देयेव (दो खण्डों में) 160.00
14. **गोदान**/प्रेमचन्द ...
15. **निर्मला**/प्रेमचन्द ...
16. **पथ के दावेदार**/शरत्चन्द्र ...
17. **चरित्रहीन**/शरत्चन्द्र ...
18. **गृहदाह**/शरत्चन्द्र ...
19. **शेषप्रश्न**/शरत्चन्द्र ...
20. **इन्द्रधनुष**/वान्दा वैसील्युस्का ...
21. **इकतालीसवाँ**/बोरीस लव्रेन्योव ...
22. **दास्तान चलती है** (एक नौजवान की डायरी से)/अनातोली कुज़्नेत्सोव 70.00
23. **वे सदा युवा रहेंगे**/ग्रीगोरी बकलानोव 60.00
24. **मुर्दों को क्या लाज-शर्म**/ ग्रीगोरी बकलानोव 40.00
25. **बख़्तरबन्द रेल 14-69**/ व्सेवोलोद इवानोव 30.00
26. **अश्वसेना**/इसाक बाबेल 40.00
27. **लाल झण्डे के नीचे**/लाओ श 50.00
28. **रिक्शावाला**/लाओ श 65.00
29. **चिरस्मरणीय** (प्रसिद्ध कन्नड़ उपन्यास)/निरंजन 55.00

30. **एक तयशुदा मौत** (एनजीओ की पृष्ठभूमि पर)/मोहित राय 70.00

31. **Mother**/*Maxim Gorky* 250.00

32. **The Song of Youth**/*Yang Mo* ...

कहानियाँ

1. **श्रेष्ठ सोवियत कहानियाँ** (3 खण्डों का सेट) 450.00
2. **वह शख़्स जिसने हैडलेबर्ग को भ्रष्ट कर दिया** (मार्क ट्वेन की दो कहानियाँ) 60.00

मक्सिम गोर्की

नयी

3. **इटली की कहानियाँ** 150.00
4. **चुनी हुई कहानियाँ** (खण्ड 1) 150.00
5. **चुनी हुई कहानियाँ** (खण्ड 2) 200.00
6. **चुनी हुई कहानियाँ** (खण्ड 3) 150.00
7. **हिम्मत न हारना मेरे बच्चो** 15.00
8. **कामो : एक जाँबाज़ इन्क़लाबी मज़दूर की कहानी** 10.00

अन्तोन चेख़व

9. **चुनी हुई कहानियाँ** (खण्ड 1) 150.00
10. **चुनी हुई कहानियाँ** (खण्ड 2) 150.00
11. **दो अमर कहानियाँ**/लू शुन ...
12. **श्रेष्ठ कहानियाँ**/प्रेमचन्द 80.00
13. **पाँच कहानियाँ**/पुश्किन ...
14. **तीन कहानियाँ**/गोगोल 30.00
15. **तूफ़ान**/अलेक्सान्द्र सेराफ़ीमोविच 60.00
16. **वसन्त**/सेर्गेई अन्तोनोव 60.00
17. **वसन्तागम**/रओ शि 50.00
18. **सूरज का ख़ज़ाना**/मिख़ाईल प्रीश्विन 40.00
19. **स्नेगोवेत्स का होटल**/मत्वेई तेवेल्योव 35.00
20. **वसन्त के रेशम के कीड़े**/माओ तुन 50.00
21. **क्रान्ति झंझा की अनुगूँजें** (अक्टूबर क्रान्ति की कहानियाँ) 75.00
22. **चुनी हुई कहानियाँ**/श्याओ हुङ 50.00
23. **समय के पंख**/ कोन्स्तान्तीन पाउस्तोव्सकी ...
24. **श्रेष्ठ रूसी कहानियाँ** (संकलन) ...
25. **अनजान फूल**/आन्द्रेई प्लातोनोव 40.00
26. **कुत्ते का दिल**/मिख़ाईल बुल्गाकोव 70.00
27. **दोन की कहानियाँ**/ मिख़ाईल शोलोख़ोव 35.00
28. **अब इन्साफ़ होने वाला है** (भारत और पाकिस्तान की प्रगतिशील उर्दू कहानियों का प्रतिनिधि संकलन) (ग्यारह नयी कहानियों सहित परिवर्द्धित संस्करण)/ स. **शकील सिद्दीक़ी** ...
29. **लाल कुरता**/हरिशंकर श्रीवास्तव ...
30. **चम्पा और अन्य कहानियाँ**/ मदन मोहन 35.00

कविताएँ

नयी 1. **कौन देखता है कौन दिखता**/लाल्टू 150.00

नयी 2. **अनिश्चय के गहरे धुएँ में**/
निर्मला गर्ग 100.00

3. **जब मैं जड़ों के बीच रहता हूँ**/
पाब्लो नेरूदा 60.00

4. **आँखें दुनिया की तरफ़ देखती हैं**/
लैंग्सटन ह्यूज़ 60.00

5. **इकहत्तर कविताएँ और तीस छोटी कहानियाँ - बेर्टोल्ट ब्रेष्ट** (मूल जर्मन से अनुवाद : मोहन थपलियाल) 130.00
(ब्रेष्ट के दुर्लभ चित्रों और स्केचों से सज्जित)

6. **उम्मीद-ए-सहर की बात सुनो**
(फ़ैज़ अहमद फ़ैज़ के संस्मरण और चुनिन्दा शायरी, सम्पादक: शकील सिद्दीक़ी) ...

7. **माओ त्से-तुङ की कविताएँ**
(राजनीतिक पृष्ठभूमि सहित विस्तृत टिप्पणियाँ एवं अनुवाद : सत्यव्रत) 20.00

8. **मध्यवर्ग का शोकगीत**/
हान्स माग्नुस एन्त्सेन्सबर्गर 30.00

9. **जेल डायरी**/हो ची मिन्ह 40.00

10. **ओस की बूँदें और लाल गुलाब**/
होसे मारिया सिसों 25.00

11. **इन्तिफ़ादा :** फ़िलस्तीनी कविताएँ/
स. रामकृष्ण पाण्डेय 100.00

12. **लोहू और इस्पात से फूटता गुलाब :**
फ़िलस्तीनी कविताएँ (द्विभाषी संकलन)
A Rose Breaking Out of Steel and Blood
(Palestinian Poems) ...

13. **लहू है कि तब भी गाता है**/पाश 125.00

14. **समर तो शेष है...**
(इप्टा के दौर से आज तक के प्रतिनिधि क्रान्तिकारी समूहगीतों का संकलन) 65.00

15. **पाठान्तर**/विष्णु खरे 50.00

16. **लालटेन जलाना** (चुनी हुई कविताएँ)/
विष्णु खरे 60.00

17. **वाचाल दायरों से दूर**/मलय 125.00

18. **दिन भौंहें चढ़ाता है**/मलय 120.00

19. **देखते न देखते**/मलय 65.00

20. **असम्भव की आँच**/मलय 100.00

21. **इच्छा की दूब**/मलय 90.00

22. **देश एक राग है**/भगवत रावत ...

23. **ईश्वर को मोक्ष**/नीलाभ 60.00

24. **बहनें और अन्य कविताएँ**/असद ज़ैदी 50.00

25. **कविता का जीवन**/असद ज़ैदी 75.00

26. **सामान की तलाश**/असद ज़ैदी 50.00

27. **कोहेकाफ़ पर संगीत-साधना**/
शशिप्रकाश 50.00

28. **पतझड़ का स्थापत्य**/शशिप्रकाश 75.00

29. **सात भाइयों के बीच चम्पा**/
कात्यायनी 120.00

30. **इस पौरुषपूर्ण समय में**/कात्यायनी 120.00

31. **जादू नहीं कविता**/कात्यायनी 150.00

32. **फ़ुटपाथ पर कुर्सी**/कात्यायनी 80.00

33. **राख-अँधेरे की बारिश में**/कात्यायनी 15.00

34. **नगर में बर्बर**/कविता कृष्णपल्लवी 100.00
(अँधेरे समय की कुछ कविताएँ और कुछ क़िस्से)

35. **यह मुखौटा किसका है**/विमल कुमार 50.00
36. **यह जो वक़्त है**/कपिलेश भोज 60.00
37. **बहुत नर्म चादर थी जल से बुनी**/ नरेश चन्द्रकर 60.00
38. **इस ढलान पर**/प्रमोद कुमार 90.00
39. **तो**/शैलेय 75.00
40. **पानी है तो फूटेगो**/ राजेश सकलानी 100.00
41. **सवालों का कारख़ाना**/सरिता तिवारी (नेपाली कविताएँ) 100.00

नाटक

1. **करवट**/मक्सिम गोर्की 40.00
2. **दुश्मन**/मक्सिम गोर्की 35.00
3. **तलछट**/मक्सिम गोर्की ...
4. **तीन बहनें** (दो नाटक)/ अन्तोन चेख़व 45.00
5. **चेरी की बग़िया** (दो नाटक)/अ. चेख़व 45.00
6. **बलिदान जो व्यर्थ न गया**/ व्सेवोलोद विश्नेव्स्की 30.00
7. **क्रेमलिन की घण्टियाँ**/ निकोलाई पोगोदिन 30.00

संस्मरण

1. **लेव तोल्स्तोय : शब्द-चित्र**/मक्सिम गोर्की 20.00

स्त्री – विमर्श

1. **दुर्ग द्वार पर दस्तक** (स्त्री प्रश्न पर लेख)/कात्यायनी 130.00

ज्वलन्त प्रश्न

1. **कुछ जीवन्त कुछ ज्वलन्त**/कात्यायनी 90.00
2. **षड्यंत्ररत मृतात्माओं के बीच** (साम्प्रदायिकता पर लेख)/कात्यायनी 25.00
3. **इस रात्रि श्यामला बेला में** (लेख और टिप्पणियाँ)/सत्यव्रत 30.00

व्यंग्य

1. **कहें मनबहकी खरी-खरी**/मनबहकी लाल 25.00

नौजवानों के लिए विशेष

1. **जय जीवन!** (लेख, भाषण और पत्र)/निकोलाई ओस्त्रोव्स्की 50.00

वैचारिकी

1. **माओवादी अर्थशास्त्र और समाजवाद का भविष्य**/रेमण्ड लोट्टा 25.00

साहित्य – विमर्श

1. **उपन्यास और जनसमुदाय**/रैल्फ़ फ़ॉक्स 75.00
2. **लेखनकला और रचनाकौशल**/गोर्की, फ़ेदिन, मयाकोव्स्की, अ. तोल्सतोय ...
3. **दर्शन, साहित्य और आलोचना**/बेलिंस्की, हर्ज़न, चेर्नीशेव्स्की, दोब्रोल्युबोव 65.00
4. **सृजन-प्रक्रिया और शिल्प के बारे में**/मक्सिम गोर्की 40.00
5. **मार्क्सवाद और भाषाविज्ञान की समस्याएँ**/स्तालिन 20.00

नयी पीढ़ी के निर्माण के लिए

1. **एक पुस्तक माता-पिता के लिए**/अन्तोन मकारेंको ...
2. **मेरा हृदय बच्चों के लिए**/वसीली सुख़ोम्लीन्स्की ...

सृजन परिप्रेक्ष्य पुस्तिका शृंखला

1. **एक नये सर्वहारा पुनर्जागरण और प्रबोधन के वैचारिक-सांस्कृतिक कार्यभार**
   कात्यायनी, सत्यम 25.00

आह्वान पुस्तिका शृंखला

1. **प्रेम, परम्परा और विद्रोह**/कात्यायनी 50.00

——::——

राहुल फाउण्डेशन

नौजवानों के लिए विशेष

1. **नौजवानों से दो बातें**/ पीटर क्रोपोटकिन 15.00
2. **क्रान्तिकारी कार्यक्रम का मसविदा**/ भगतसिंह 15.00
3. **मैं नास्तिक क्यों हूँ और 'ड्रीमलैण्ड' की भूमिका**/भगतसिंह 15.00
4. **बम का दर्शन और अदालत में बयान**/भगतसिंह 15.00
5. **जाति-धर्म के झगड़े छोड़ो, सही लड़ाई से नाता जोड़ो**/भगतसिंह 15.00
6. **भगतसिंह ने कहा...**(चुने हुए उद्धरण)/भगतसिंह 15.00

क्रान्तिकारियों के दस्तावेज़

1. **भगतसिंह और उनके साथियों के सम्पूर्ण उपलब्ध दस्तावेज़** स. सत्यम 350.00
2. **शहीदेआज़म की जेल नोटबुक** भगतसिंह 100.00
3. **विचारों की सान पर**/भगतसिंह 50.00

क्रान्तिकारियों के विचारों और जीवन पर

1. **बहरों को सुनाने के लिए** एस. इरफ़ान हबीब 160.00 (भगतसिंह और उनके साथियों की विचारधारा और कार्यक्रम)
2. **क्रान्तिकारी आन्दोलन का वैचारिक विकास**/शिव वर्मा 25.00
3. **भगतसिंह और उनके साथियों की विचारधारा और राजनीति**/बिपन चन्द्र 25.00
4. **यश की धरोहर**/भगवानदास माहौर, शिव वर्मा, सदाशिवराव मलकापुरकर 50.00
5. **संस्मृतियाँ**/शिव वर्मा 100.00
6. **शहीद सुखदेव : नौघरा से फाँसी तक**/ स. डॉ. हरदीप सिंह 40.00

महत्त्वपूर्ण और विचारोत्तेजक संकलन

1. **उम्मीद एक ज़िन्दा शब्द है** ('दायित्वबोध' के महत्त्वपूर्ण सम्पादकीय लेखों का संकलन) 75.00
2. **एनजीओ : एक ख़तरनाक साम्राज्यवादी कुचक्र** 80.00
3. **डब्ल्यूएसएफ़ : साम्राज्यवाद का नया ट्रोजन हॉर्स** 50.00

ज्वलन्त प्रश्न

1. **'जाति' प्रश्न के समाधान के लिए बुद्ध काफ़ी नहीं, अम्बेडकर भी काफ़ी नहीं, मार्क्स ज़रूरी हैं** / रंगनायकम्मा ...
2. **जाति और वर्ग : एक मार्क्सवादी दृष्टिकोण** / रंगनायकम्मा 100.00

दायित्वबोध पुस्तिका शृंखला

1. **अनश्वर हैं सर्वहारा संघर्षों की अग्निशिखाएँ**/दीपायन बोस 30.00
2. **समाजवाद की समस्याएँ, पूँजीवादी पुनर्स्थापना और महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति**/शशिप्रकाश 30.00
3. **क्यों माओवाद?**/शशिप्रकाश 20.00
4. **बुर्जुआ वर्ग के ऊपर सर्वतोमुखी अधिनायकत्व लागू करने के बारे में**/चाङ चुन-चियाओ 5.00
5. **भारतीय कृषि में पूँजीवादी विकास**/सुखविन्दर 35.00

आह्वान पुस्तिका शृंखला

1. **छात्र-नौजवान नयी शुरुआत कहाँ से करें?** 20.00
2. **आरक्षण : पक्ष, विपक्ष और तीसरा पक्ष** 20.00
3. **आतंकवाद के बारे में : विभ्रम और यथार्थ** 20.00
4. **क्रान्तिकारी छात्र-युवा आन्दोलन** 25.00
5. **भ्रष्टाचार और उसके समाधान का सवाल सोचने के लिए कुछ मुद्दे** 50.00
6. **मार्क्सवाद-लेनिनवाद और राष्ट्रीय प्रश्न** (एक बहस)/शिवानी, अभिनव 150.00

बिगुल पुस्तिका श्रृंखला

1. **कम्युनिस्ट पार्टी का संगठन और उसका ढाँचा**/लेनिन 20.00
2. **मकड़ा और मक्खी**/विल्हेल्म लीब्नेख़्त 5.00
3. **ट्रेडयूनियन काम के जनवादी तरीक़े**/सेर्गेई रोस्तोवस्की ...
4. **मई दिवस का इतिहास**/ अलेक्ज़ैण्डर ट्रैक्टनबर्ग 10.00
5. **पेरिस कम्यून की अमर कहानी** 20.00
6. **अक्टूबर क्रान्ति की मशाल** 15.00
7. **जंगलनामा : एक राजनीतिक समीक्षा**/डॉ. दर्शन खेड़ी 10.00
8. **लाभकारी मूल्य, लागत मूल्य, मध्यम किसान और छोटे पैमाने के माल उत्पादन के बारे में मार्क्सवादी दृष्टिकोण : एक बहस** ...
9. **संशोधनवाद के बारे में** 10.00
10. **शिकागो के शहीद मज़दूर नेताओं की कहानी**/हावर्ड फ़ास्ट 20.00
11. **मज़दूर आन्दोलन में नयी शुरुआत के लिए** 20.00
12. **मज़दूर नायक, क्रान्तिकारी योद्धा** 15.00
13. **चोर, भ्रष्ट और विलासी नेताशाही** ...
14. **बोलते आँकड़े, चीख़ती सच्चाइयाँ** ...
15. **राजधानी के मेहनतकश : एक अध्ययन**/अभिनव 30.00
16. **फ़ासीवाद क्या है और इससे कैसे लड़ें?**/अभिनव 120.00
17. **नेपाली क्रान्ति : इतिहास, वर्तमान परिस्थिति और आगे के रास्ते से जुड़ी कुछ बातें, कुछ विचार**/ आलोक रंजन 55.00
18. **कैसा है यह लोकतंत्र और यह संविधान किनकी सेवा करता है** आलोक रंजन/आनन्द सिंह 150.00
19. **तीन कृषि विधेयक और मज़दूर वर्ग का नज़रिया**/अभिनव 40.00

मज़दूरों का इन्क़लाबी मासिक अख़बार

एक प्रति : 5 रुपये

(डाक व्यय सहित)

सम्पादकीय कार्यालय

69 ए-1, बाबा का पुरवा, पेपर मिल रोड
निशातगंज, लखनऊ-226006
फ़ोन : 0522-4108495
ईमेल : bigulakhbar@gmail.com

मार्क्सवाद

1. **धर्म के बारे में**/मार्क्स, एंगेल्स ...
2. **कम्युनिस्ट पार्टी का घोषणापत्र** मार्क्स-एंगेल्स 50.00
3. **साहित्य और कला**/मार्क्स-एंगेल्स 150.00
4. **फ़्रांस में वर्ग-संघर्ष**/कार्ल मार्क्स 40.00
5. **फ़्रांस में गृहयुद्ध**/कार्ल मार्क्स 20.00
6. **लूई बोनापार्त की अठारहवीं ब्रूमेर**/कार्ल मार्क्स 35.00
7. **उज़रती श्रम और पूँजी**/कार्ल मार्क्स 15.00
8. **मज़दूरी, दाम और मुनाफ़ा**/ कार्ल मार्क्स 20.00
9. **गोथा कार्यक्रम की आलोचना**/ कार्ल मार्क्स 40.00
10. **लुडविग फ़ायरबाख़ और क्लासिकीय जर्मन दर्शन का अन्त**/ फ़्रेडरिक एंगेल्स 20.00
11. **जर्मनी में क्रान्ति तथा प्रतिक्रान्ति**/ फ़्रेडरिक एंगेल्स 30.00
12. **समाजवाद : काल्पनिक तथा वैज्ञानिक**/फ़्रेडरिक एंगेल्स ...
13. **पार्टी कार्य के बारे में**/लेनिन 15.00
14. **एक क़दम आगे, दो क़दम पीछे**/लेनिन ...
15. **जनवादी क्रान्ति में सामाजिक-जनवाद के दो रणकौशल**/लेनिन 25.00
16. **समाजवाद और युद्ध**/लेनिन 20.00
17. **साम्राज्यवाद : पूँजीवाद की चरम अवस्था**/लेनिन 30.00
18. **राज्य और क्रान्ति**/लेनिन ...
19. **सर्वहारा क्रान्ति और ग़द्दार काउत्स्की**/लेनिन ...
20. **दूसरे इण्टरनेशनल का पतन**/लेनिन 15.00
21. **गाँव के ग़रीबों से**/लेनिन 50.00
22. **मार्क्सवाद का विकृत रूप तथा साम्राज्यवादी अर्थवाद**/लेनिन 20.00
23. **कार्ल मार्क्स और उनकी शिक्षा**/लेनिन ...
24. **क्या करें?**/लेनिन ...
25. **"वामपन्थी" कम्युनिज़्म - एक बचकाना मर्ज़**/लेनिन ...
26. **पार्टी साहित्य और पार्टी संगठन**/लेनिन 15.00
27. **जनता के बीच पार्टी का काम**/लेनिन 70.00
28. **धर्म के बारे में**/लेनिन ...
29. **तोल्स्तोय के बारे में**/लेनिन 10.00
30. **मार्क्सवाद की मूल समस्याएँ** जी. प्लेख़ानोव 30.00
31. **जुझारू भौतिकवाद**/प्लेख़ानोव 35.00
32. **लेनिनवाद के मूल सिद्धान्त**/स्तालिन 50.00
33. **सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी (बोल्शेविक) का इतिहास** 90.00

34. **माओ त्से-तुङ की रचनाएँ : प्रतिनिधि चयन** (एक खण्ड में) ...

35. **कम्युनिस्ट जीवनशैली और कार्यशैली के बारे में**/माओ त्से-तुङ ...

36. **सोवियत अर्थशास्त्र की आलोचना**/ माओ त्से-तुङ ...

37. **दर्शन विषयक पाँच निबन्ध**/ माओ त्से-तुङ 70.00

38. **कला-साहित्य विषयक एक भाषण और पाँच दस्तावेज़**/माओ त्से-तुङ 15.00

39. **माओ त्से-तुङ की रचनाओं के उद्धरण** 50.00

अन्य मार्क्सवादी साहित्य

नयी

1. **दर्शन कोई रहस्य नहीं** 50.00
(जब किसानों ने अपने अध्ययन को व्यवहार में उतारा)

2. **राजनीतिक अर्थशास्त्र, मार्क्सवादी अध्ययन पाठ्यक्रम** 300.00

3. **खुश्चेव झूठा था**/ग्रोवर फ़र 300.00

4. **राजनीतिक अर्थशास्त्र के मूलभूत सिद्धान्त** (दो खण्डों में) (दि शंघाई टेक्स्टबुक ऑफ़ पोलिटिकल इकोनॉमी) 160.00

5. **पेरिस कम्यून की शिक्षाएँ** (सचित्र) एलेक्ज़ेण्डर ट्रैक्टनबर्ग 10.00

6. **कम्युनिस्ट पार्टी का घोषणापत्र**/ डी. रियाज़ानोव ...
(विस्तृत व्याख्यात्मक टिप्पणियों सहित)

7. **द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद**/ डेविड गेस्ट ...

8. **इतिहास ने जब करवट बदली**/ विलियम हिण्टन 25.00

9. **द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद**/ वी. अदोरात्स्की 50.00

10. **अक्टूबर क्रान्ति और लेनिन** अल्बर्ट रीस विलियम्स 90.00
(महत्त्वपूर्ण नयी सामग्री और अनेक नये दुर्लभ चित्रों से सज्जित परिवर्द्धित संस्करण)

11. **सोवियत संघ में पूँजीवाद की पुनर्स्थापना**/मार्टिन निकोलस 50.00

राहुल साहित्य

1. **तुम्हारी क्षय**/राहुल सांकृत्यायन 40.00

2. **दिमाग़ी ग़ुलामी**/राहुल सांकृत्यायन 40.00

3. **वैज्ञानिक भौतिकवाद**/ राहुल सांकृत्यायन 65.00

4. **राहुल निबन्धावली**/ राहुल सांकृत्यायन 50.00

5. **स्तालिन : एक जीवनी**/ राहुल सांकृत्यायन 150.00

परम्परा का स्मरण

1. **चुनी हुई रचनाएँ**/ गणेशशंकर विद्यार्थी 100.00
2. **सलाखों के पीछे से**/ गणेशशंकर विद्यार्थी ...
3. **ईश्वर का बहिष्कार**/ राधामोहन गोकुलजी 40.00
4. **लौकिक मार्ग**/राधामोहन गोकुलजी 20.00
5. **धर्म का ढकोसला**/ राधामोहन गोकुलजी 40.00
6. **स्त्रियों की स्वाधीनता** राधामोहन गोकुलजी 30.00

जीवनी और संस्मरण

1. **कार्ल मार्क्स : जीवन और शिक्षाएँ**/ ज़ेल्डा कोट्स 25.00
2. **फ़्रेडरिक एंगेल्स : जीवन और शिक्षाएँ**/ज़ेल्डा कोट्स 80.00
3. **कार्ल मार्क्स : संस्मरण और लेख** 35.00
4. **अदम्य बोल्शेविक नताशा** (एक स्त्री मज़दूर संगठनकर्ता की संक्षिप्त जीवनी)/ एल. काताशेवा 30.00
5. **लेनिन कथा**/मरीया प्रिलेज़ायेवा 70.00
6. **लेनिन विषयक कहानियाँ** 75.00
7. **लेनिन के जीवन के चन्द पन्ने**/ लीदिया फ़ोतियेवा ...
8. **स्तालिन : एक जीवनी**/ राहुल सांकृत्यायन 150.00

विविध

1. **फाँसी के तख़्ते से**/जूलियस फ़्यूचिक ...
2. **पाप और विज्ञान**/डायसन कार्टर 100.00
3. **सापेक्षिकता सिद्धान्त क्या है?**/लेव लन्दाऊ, यूरी रूमेर ...

——::——

Rahul Foundation

MARXIST CLASSICS

KARL MARX

1. **A Contribution to the Critique of Political Economy** …
2. **The Civil War in France** …
3. **The Eighteenth Brumaire of Louis Bonaparte** 80.00
4. **Critique of the Gotha Programme** 50.00
5. **Preface and Introduction to A Contribution to the Critique of Political Economy** 25.00
6. **The Poverty of Philosophy** 80.00
7. **Wages, Price and Profit** 50.00
8. **Class Struggles in France** 50.00

FREDERICK ENGELS

9. **The Peasant War in Germany** 70.00
10. **Ludwig Feuerbach and the End of Classical German Philosophy** 65.00
11. **On Capital** 80.00
12. **The Origin of the Family, Private Property and the State** 100.00
13. **Socialism: Utopian and Scientific** 60.00
14. **On Marx** 30.00
15. **Principles of Communism** 5.00

MARX and ENGELS

16. **Historical Writings** (Set of 2 Vols.) 700.00
17. **Manifesto of the Communist Party** 50.00
18. **Selected Letters** 75.00

V. I. LENIN

19. **Theory of Agrarian Question** 160.00
20. **The Collapse of the Second International** 25.00
21. **Imperialism, the Highest Stage of Capitalism** 80.00
22. **Materialism and Empirio-Criticism** 150.00
23. **Two Tactics of Social-Democracy in the Democratic Revolution** 55.00
24. **Capitalism and Agriculture** 50.00
25. **A Characterisation of Economic Romanticism** …
26. **On Marx and Engels** 35.00
27. **"Left-Wing" Communism, An Infantile Disorder** 75.00
28. **Party Work in the Masses** 55.00
29. **The Proletarian Revolution and the Renegade Kautsky** 75.00

30. **One Step Forward, Two Steps Back** …
31. **The State and Revolution** 80.00

MARX, ENGELS and LENIN

32. **On the Dictatorship of Proletariat, *Questions and Answers*** 50.00
33. **On the Dictatorship of the Proletariat: *Selected Expositions*** 10.00

PLEKHANOV

34. **Fundamental Problems of Marxism** …

J. STALIN

35. **Marxism and Problems of Linguistics** 25.00
36. **Anarchism or Socialism?** 60.00
37. **Economic Problems of Socialism in the USSR** …
38. **On Organisation** 15.00
39. **The Foundations of Leninism** 70.00
40. **The Essential Stalin** …
    Major Theoretical Writings 1905–52 (Edited and with an Introduction by Bruce Franklin)

LENIN and STALIN

41. **On the Party** 30.00

MAO TSE-TUNG

42. **Five Essays on Philosophy** 80.00
43. **A Critique of Soviet Economics** 70.00
44. **On Literature and Art** 80.00
45. **Selected Readings from the Works of Mao Tse-tung** …
46. **Quotations from the Writings of Mao Tse-tung** …

OTHER MARXISM

1. **Political Economy, *Marxist Study Courses*** (Prepared by the British Communist Party in the 1930s) 375.00
2. **Fundamentals of Political Economy** (The Shanghai Textbook) 150.00
3. **Reader in Marxist Philosophy**/ *Howard Selsam & Harry Martel* …
4. **Socialism and Ethics**/ *Howard Selsam* …
5. **What Is Philosophy?** (A Marxist Introduction)/*Howard Selsam* 100.00
6. **Reader's Guide to Marxist Classics**/*Maurice Cornforth* 70.00

George Thomson

7. **From Marx to Mao Tse-tung** 120.00
8. **Capitalism and After** 100.00
9. **The Human Essence** 80.00
10. **Mao Tse-tung's Immortal Contributions**/*Bob Avakian* …
11. **A Basic Understanding of the Communist Party** (Written during the GPCR in China) 150.00

12. **The Lessons of the Paris Commune**/*Alexander Trachtenberg (Illustrated)* 15.00

13. **Subversive Interventions** (An Anthology) *Abhinav Sinha* 500.00

BIOGRAPHIES & REMINISCENCES

1. **Reminiscences of Marx and Engels** (Collection) …
2. **Karl Marx And Frederick Engels:** An Introduction to their Lives and Work/David Riazanov 150.00
3. **Joseph Stalin: A Political Biography** *by The Marx-Engels-Lenin Institute* 80.00

PROBLEMS OF SOCIALISM

1. **How Capitalism was Restored in the Soviet Union, And What This Means for the World Struggle Red Papers 7** 175.00
2. **Preface of Class Struggles in the USSR**/*Charles Bettelheim* 30.00
3. **Nepalese Revolution: History, Present Situation and Some Points, Some Thoughts on the Road Ahead** Alok Ranjan 75.00
4. **Problems of Socialism, Capitalist Restoration and the Great Proletarian Cultural Revolution** *Shashi Prakash* 40.00

ON THE CULTURAL REVOLUTION

1. **Hundred Day War:** The Cultural Revolution At Tsinghua University *William Hinton* …
2. **The Cultural Revolution at Peking University**/*Victor Nee* with *Don Layman* 30.00
3. **Mao Tse-tung's Last Great Battle** *Raymond Lotta* 25.00
4. **Turning Point in China** *William Hinton* 50.00
5. **Cultural Revolution and Industrial Organization in China** *Charles Bettelheim* 55.00
6. **They Made Revolution Within the Revolution** / *Iris Hunter* 50.00

ON SOCIALIST CONSTRUCTION

1. **Away With All Pests:** An English Surgeon in People's China: 1954–1969
   Joshua S. Horn 125.00
2. **Serve The People:** Observations on Medicine in the People's Republic of China / *Victor W. Sidel* and *Ruth Sidel* …
3. **Philosophy is No Mystery** (Peasants Put Their Study to Work) …

ON THE CASTE QUESTION

1. **On the Caste Question:**
   Towards a Marxist Understanding
   Abhinav Sinha 200.00
2. **Caste and Class:**
   A Marxist Viewpoint / Ranganayakamma 60.00

DAYITVABODH REPRINT SERIES

1. **Immortal are the Flames of Proletarian Struggles /** *Deepayan Bose* 30.00
2. **Problems of Socialism, Capitalist Restoration and the Great Proletarian Cultural Revolution** / *Shashi Prakash* 40.00
3. **Why Maoism? /** *Shashi Prakash* 25.00

AHWAN REPRINT SERIES

1. **Where Should Students and Youth Make a New Beginning?** 20.00
2. **Reservation: Support, Opposition and Our Position** 20.00
3. **On Terrorism : Illusion and Reality /** *Alok Ranjan* 20.00

"The books that help you most are those which make you think the most. The hardest way of learning is that of easy reading; but a great book that comes from a great thinker is a ship of thought, deep freighted with truth and beauty."

– Pablo Neruda

BIGUL REPRINT SERIES

1. **Still Ablaze is the Torch of October Revolution** 30.00
2. **Nepalese Revolution History, Present Situation and Some Points, Some Thoughts on the Road Ahead** / Alok Ranjan 75.00

WOMEN QUESTION

1. **The Emancipation of Women** / *V. I. Lenin* 100.00
2. **Breaking All Tradition's Chains: Revolutionary Communism and Women's Liberation** / *Mary Lou Greenberg* 50.00

MISCELLANEOUS

1. **Probabilities of the Quantum World** / *Daniel Danin* …
2. **An Appeal to the Young** / *Peter Kropotkin* 20.00

The Anvil

A Journal of Marxist Theory

Editor: Shashi Prakash

Editorial Office

69 A-1, Baba ka Purwa
Paper Mill Road, Nishatgunj, Lucknow 226 006, India
Phone: 9560130890, Email: editor.anvil@gmail.com

Website: http://anvilmag.in

FB: facebook.com/anvilmag

अरविन्द स्मृति न्यास के प्रकाशन

1. **इक्कीसवीं सदी में भारत का मज़दूर आन्दोलन: निरन्तरता और परिवर्तन, दिशा और सम्भावनाएँ, समस्याएँ और चुनौतियाँ** (द्वितीय अरविन्द स्मृति संगोष्ठी के आलेख) 40.00
2. **भारत में जनवादी अधिकार आन्दोलन: दिशा, समस्याएँ और चुनौतियाँ** (तृतीय अरविन्द स्मृति संगोष्ठी के आलेख) 80.00
3. **जाति प्रश्न और मार्क्सवाद** (चतुर्थ अरविन्द स्मृति संगोष्ठी के आलेख) 150.00

PUBLICATIONS FROM ARVIND MEMORIAL TRUST

1. **Working Class Movement in the Twenty-First Century: Continuity and Change, Orientation and Possibilities, Problems and Challenges** (Papers presented in the Second Arvind Memorial Seminar) 40.00
2. **Democratic Rights Movement in India: Orientation, Problems and Challenges** (Papers presented in the Third Arvind Memorial Seminar) 80.00
3. **Caste Question and Marxism** (Papers presented in the Fourth Arvind Memorial Seminar) 200.00

जनचेतना इन पुस्तकों की भी मुख्य वितरक है

1. **बच्चों के लिए अर्थशास्त्र (मार्क्स की 'पूँजी' पर आधारित पाठ)**/रंगनायकम्मा 120.00
2. **घरेलू काम और बाहरी काम**/रंगनायकम्मा 40.00
3. **For the Solution of the 'Caste' Question, Buddha is not enough, Ambedkar is not enough either, Marx is a must**/Ranganayakamma 100.00
4. **Economics for Children [Lessons based on Marx's 'Capital']**/Ranganayakamma 150.00
5. **Household Work and Outside Work** 60.00

अनुराग ट्रस्ट

1. **बच्चों के लेनिन** 35.00
2. **Stories About Lenin** 35.00
3. **सच से बड़ा सच**/रवीन्द्रनाथ ठाकुर 25.00
4. **औज़ारों की कहानियाँ** 20.00
5. **गुड़ की डली** /कात्यायनी 20.00
6. **फूल कुण्डलाकार क्यों होते हैं**/सनी 20.00
7. **धरती और आकाश**/अ. वोल्कोव ...
8. **कज़ाकी**/प्रेमचन्द 35.00
9. **नीला प्याला**/अरकादी गैदार 40.00
10. **गड़रिये की कहानियाँ**/ क़्यूम तंगरीकुलीयेव 35.00
11. **चींटी और अन्तरिक्ष यात्री**/ अ. मित्यायेव 35.00
12. **अन्धविश्वासी शेकी टेल**/ सेर्गेई मिखाल्कोव 20.00
13. **चलता-फिरता हैट**/ एन. नोसोव, होल्कर पुक्क 20.00
14. **चालाक लोमड़ी** (लोककथा) 20.00
15. **दियांका-टॉमचिक** 20.00
16. **गधा और ऊदबिलाव**/मक्सिम गोर्की, सेर्गेई मिखाल्कोव 20.00
17. **गुफ़ा मानवों की कहानियाँ**/ मैरी मार्स 20.00
18. **हम सूरज को देख सकते हैं**/ मिकोला गिल, दायर स्लावकोविच 20.00
19. **मुसीबत का साथी**/सेर्गेई मिखाल्कोव 20.00
20. **नन्हे आर्थर का सूरज**/ हद्याक ग्युलनज़रयान, गेलीना लेबेदेवा 20.00
21. **आकाश में मौज-मस्ती**/ चिनुआ अचेबे 20.00
22. **ज़िन्दगी से प्यार** (दो रोमांचक कहानियाँ)/जैक लण्डन 40.00
23. **एक छोटे लड़के और एक छोटी लड़की की कहानी**/मक्सिम गोर्की 20.00
24. **बहादुर**/अमरकान्त 15.00
25. **बुन्नू की परीक्षा** (सचित्र रंगीन)/ शस्या हर्ष ...
26. **दान्को का जलता हुआ हृदय**/ मक्सिम गोर्की 10.00
27. **नन्हा राजकुमार**/ आतुआन द सैंतेक्ज़ूपेरी 40.00
28. **दादा आर्खिप और ल्योंका**/ मक्सिम गोर्की 30.00
29. **सेमागा कैसे पकड़ा गया**/ मक्सिम गोर्की 15.00
30. **बाज़ का गीत**/मक्सिम गोर्की 15.00
31. **वांका**/अन्तोन चेख़व 15.00
32. **तोता**/रवीन्द्रनाथ टैगोर 15.00
33. **पोस्टमास्टर**/रवीन्द्रनाथ टैगोर ...
34. **काबुलीवाला**/रवीन्द्रनाथ टैगोर 20.00

35. **अपना-अपना भाग्य**/जैनेन्द्र 15.00
36. **दिमाग़ कैसे काम करता है**/किशोर 25.00
37. **रामलीला**/प्रेमचन्द 15.00
38. **दो बैलों की कथा**/प्रेमचन्द 25.00
39. **ईदगाह**/प्रेमचन्द ...
40. **लॉटरी**/प्रेमचन्द 20.00
41. **गुल्ली-डण्डा**/प्रेमचन्द ...
42. **बड़े भाई साहब**/प्रेमचन्द 20.00
43. **मोटेराम शास्त्री**/प्रेमचन्द ...
44. **हार की जीत**/सुदर्शन ...
45. **इवान**/व्लादीमिर बोगोमोलोव 40.00
46. **चमकता लाल सितारा**/ली शिन-थ्येन 55.00
47. **उल्टा दरख़्त**/कृशनचन्दर 35.00
48. **हरामी**/मिखाईल शोलोख़ोव 25.00
49. **दोन किहोते** /सर्वान्तेस (नाट्य रूपान्तर - नीलेश रघुवंशी) ...
50. **आश्चर्यलोक में एलिस** /लुइस कैरोल (नाट्य रूपान्तर - नीलेश रघुवंशी 30.00
51. **झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई**/वृन्दावनलाल वर्मा (नाट्य रूपान्तर - नीलेश रघुवंशी) 35.00
52. **नन्हे गुदड़ीलाल के साहसिक कारनामे**/सुन यओच्युन ...
53. **लाखी**/अन्तोन चेखव 25.00
54. **बेझिन चरागाह**/इवान तुर्गनेव 12.00
55. **हिरनौटा**/द्मीत्री मामिन सिबिर्याक 25.00
56. **घर की ललक**/निकोलाई तेलेशोव 10.00
57. **बस एक याद**/लेओनीद अन्द्रेयेव 20.00
58. **मदारी**/अलेक्सान्द्र कुप्रिन 35.00
59. **पराये घोंसले में**/फ़्योदोर दोस्तोयेव्स्की 20.00
60. **कोहकाफ़ का बन्दी**/तोल्सतोय 30.00
61. **मनमानी के मज़े**/सेर्गेई मिखाल्कोव 30.00
62. **सदानन्द की छोटी दुनिया**/ सत्यजीत राय 15.00
63. **छत पर फँस गया बिल्ला**/ विताउते जिलिन्सकाइते 35.00
64. **गोलू के कारनामे**/रामबाबू 25.00
65. **दो साहसिक कहानियाँ**/ होल्गर पुक्क 15.00
66. **आम ज़िन्दगी की मज़ेदार कहानियाँ**/होल्गर पुक्क 20.00
67. **कंगूरे वाले मकान का रहस्यमय मामला**/होल्गर पुक्क 20.00
68. **रोज़मर्रे की कहानियाँ**/होल्गर पुक्क 20.00
69. **अजीबोग़रीब क़िस्से**/होल्गर पुक्क ...
70. **नये ज़माने की परीकथाएँ**/ होल्गर पुक्क 25.00
71. **किस्सा यह कि एक देहाती ने दो अफ़सरों का कैसे पेट भरा**/ मिखाइल सल्तिकोव-श्चेद्रिन 15.00
72. **पश्चदृष्टि-भविष्यदृष्टि** (लेख संकलन) / कमला पाण्डेय 30.00
73. **यादों के घेरे में अतीत** (संस्मरण) / कमला पाण्डेय 100.00
74. **हमारे आसपास का अँधेरा** (कहानियाँ) / कमला पाण्डेय 60.00
75. **कालमन्थन** (उपन्यास) / कमला पाण्डेय 60.00

दो महत्वपूर्ण पत्रिकाएँ

दिशा सन्धान

मार्क्सवादी सैद्धान्तिक शोध और विमर्श का मंच

सम्पादक: कात्यायनी / सत्यम

एक प्रति : 100 रुपये, आजीवन: 5000 रुपये

वार्षिक (4 अंक) : 400 रुपये (100 रु. रजि. बुकपोस्ट व्यय अतिरिक्त)

नान्दीपाठ

मीडिया, संस्कृति और समाज पर केन्द्रित

सम्पादक: कात्यायनी / सत्यम

एक प्रति : 40 रुपये आजीवन: 3000 रुपये

वार्षिक (4 अंक) : 160 रुपये (100 रु. रजि. बुक पोस्ट व्यय अतिरिक्त)

सम्पादकीय कार्यालय :

69 ए-1, बाबा का पुरवा, पेपर मिल रोड, निशातगंज, लखनऊ-226006

फ़ोन: 9936650658, 8853093555

वेबसाइट : http://dishasandhaan.in ईमेल: dishasandhaan@gmail.com

वेबसाइट : http://naandipath.in ईमेल: naandipath@gmail.com

मुक्तिकामी छात्रों-युवाओं का

आह्वान

सम्पादकीय कार्यालय

बी-100, मुकुन्द विहार, करावल नगर, दिल्ली-110094

ईमेल : ahwan@ahwanmag.com, ahwan.editor@gmail.com

वेबसाइट : ahwanmag.com

फ़ेसबुक : facebook.com/muktikamiahwan

एक प्रति : 20 रुपये • वार्षिक : 160 रुपये (डाकव्यय सहित)

हमारे पास आपको मिलेंगे

- विश्व क्लासिक्स
- स्तरीय प्रगतिशील साहित्य
- भगतसिंह और उनके साथियों का सम्पूर्ण उपलब्ध साहित्य
- मक्सिम गोर्की की पुस्तकों का सबसे बड़ा संग्रह
- भारतीय इतिहास के अत्यन्त महत्त्वपूर्ण क्रान्तिकारी दस्तावेज़
- मार्क्सवादी साहित्य
- जीवन और समाज की समझ तथा विचारोत्तेजना देने वाला साहित्य
- दिमाग़ की खिड़कियाँ खोलने और कल्पना की उड़ानों को पंख देने वाला बाल-साहित्य
- प्रगतिशील क्रान्तिकारी पत्र-पत्रिकाएँ
- सुन्दर, सुरुचिपूर्ण, प्रेरक पोस्टर और कार्ड
- क्रान्तिकारी गीतों के कैसेट
- साहित्यिक व क्रान्तिकारी उद्धरणों-चित्रों वाली टीशर्ट, कैलेण्डर, बुकमार्क, डायरी आदि...

ऐसा साहित्य जो सपने देखने और भविष्य-निर्माण के लिए प्रेरित करता है!

(हिन्दी, अंग्रेज़ी, पंजाबी और मराठी में)

किताबें नहीं,
हम आने वाले कल के सपने लेकर आये हैं
किताबें नहीं,
हम असली इन्सान की तरह
जीने का संकल्प लेकर आये हैं

परिकल्पना प्रकाशन, राहुल फाउण्डेशन, अनुराग ट्रस्ट, अरविन्द स्मृति न्यास और **ऐरण प्रकाशन** की पुस्तकों की 'जनचेतना' मुख्य वितरक है। ये प्रकाशन पाँच स्रोतों - सरकार, राजनीतिक पार्टियों, कॉरपोरेट घरानों, बहुराष्ट्रीय निगमों और देशी-विदेशी फ़ण्डिंग एजेंसियों से किसी भी प्रकार का अनुदान या वित्तीय सहायता लिये बिना जनता से जुटाये गये संसाधनों के आधार पर आज के दौर के लिए ज़रूरी व महत्त्वपूर्ण साहित्य बेहद सस्ती दरों पर उपलब्ध कराने के लिए प्रतिबद्ध हैं।

हमसे पुस्तकें मँगाने के लिए इन बातों का ध्यान रखें

- प्रत्येक पत्र तथा आदेश-पत्र पर अपना पूरा नाम-पता (पिनकोड सहित) और फ़ोन नम्बर साफ़-साफ़ लिखें।
- मनीऑर्डर के पीछे सन्देश वाले स्थान पर अपना पूरा नाम-पता (पिनकोड सहित) साफ़-साफ़ ज़रूर लिखें।
- चेक/ड्राफ़्ट 'जनचेतना पुस्तक प्रतिष्ठान समिति' (JANCHETNA PUSTAK PRATISHTHAN SAMITI) के नाम से लखनऊ में देय भेजें। बैंक खाते की जानकारी :
  खाता सं. 0762002109003796
  पंजाब नेशनल बैंक, निशातगंज, लखनऊ
  IFSC: PUNB0076200
- पुस्तकों पर डाक-व्यय तथा रेल या ट्रांसपोर्ट का भाड़ा अलग से देय होगा।
- पुस्तक विक्रेताओं तथा वितरकों द्वारा पुस्तकें मँगाने की शर्तों के लिए हमसे पत्र, ईमेल अथवा फ़ोन से सम्पर्क करें।

जनचेतना पुस्तक प्रतिष्ठान समिति द्वारा संचालित